अतंर की खोज

अंतर की खोज

पहला प्रवचन

एक छोटी सी घटना से मैं आज की चर्चा शुरू करूंगा।

एक गांव में एक अपरिचित फकीर का आगमन हुआ था। उस गांव के लोगों ने शुक्रवार के दिन, जो उनके धर्म का दिन था, उस फकीर को मस्जिद में बोलने के लिए आमंत्रित किया। वह फकीर बड़ी खुशी से राजी हो गया। लेकिन मस्जिद में जाने के बाद, जहां कि गांव के बहुत से लोग इकट्ठा हुए थे, उस फकीर ने मंच पर बैठ कर कहाः मेरे मित्रो, मैं जो बोलने को हूं, जिस संबंध में मैं बोलने वाला हूं, क्या तुम्हें पता है वह क्या है? बहुत से लोगों ने एक साथ कहाः नहीं, हमें कुछ भी पता नहीं है। वह फकीर मंच से नीचे उतर आया और उसने कहाः ऐसे अज्ञानियों के बीच बोलना मैं पसंद न करूंगा, जो कुछ भी नहीं जानते। जो कुछ भी नहीं जानते हैं उस विषय के संबंध में जिस पर मुझे बोलना है, उनके साथ कहां से बात शुरू की जाए? इसलिए मैं बात शुरू ही नहीं करूंगा। वह उतरा और वापस चला गया।

वह सभा, वे लोग बड़े हैरान रह गए। ऐसा बोलने वाला उन्होंने कभी देखा न था। लेकिन फिर दूसरा शुक्रवार आया और उन्होंने जाकर उस फकीर से फिर से प्रार्थना की कि आप चलिए बोलने। वह फकीर फिर से राजी हो गया और मंच पर बैठ कर उसने फिर पूछा, मेरे मित्रो, मैं जिस संबंध में बोलने को हूं, क्या तुम्हें पता है वह क्या है? उन सारे लोगों ने कहाः हां, हमें पता है। क्योंकि नहीं कह कर वे पिछली दफा भूल कर चुके थे। उस फकीर ने कहाः तब फिर मैं नहीं बोलूंगा, क्योंकि जब तुम्हें पता है तो मेरे बोलने का कोई प्रयोजन नहीं। जब तुम्हें ज्ञात ही है तो ज्ञानियों के बीच बोलना फिजूल है। वह उतरा और वापस चला गया।

उन गांव के लोगों ने बहुत सोच-विचार कर यह तय किया था कि अब कि बार "नहीं' कोई भी नहीं कहेगा, लेकिन हां भी फिजूल चली गई।

तीसरा शुक्रवार आया। वे सारे लोग फिर उस फकीर के पास गए और उन्होंने कहा कि चलें और हमें उपदेश दें, वह फकीर फिर राजी हो गया। वह मंच पर आकर बैठा और उसने पूछा, मेरे मित्रो, क्या तुम्हें पता है मैं क्या बोलने वाला हूं? उन लोगों ने कहाः कुछ को पता है और कुछ को पता नहीं है। उस फकीर ने कहाः तब जिनको पता है वे उनको बता दें जिनको पता नहीं है। मेरा क्या काम है। वह उतरा और वापस चला गया।

चौथे शुक्रवार को उस गांव के लोगों ने हिम्मत नहीं की कि उस फकीर को फिर से आमंत्रण दें। क्योंकि उनके पास चौथा कोई उत्तर ही न था। तीन उत्तर थे और तीनों समाप्त हो गए थे और तीनों व्यर्थ हो गए थे।

अगर आज मैं भी आपसे यह कहूं, तो आपके पास चौथा उत्तर है? चौथा उत्तर क्या हो सकता है? और अगर चौथा उत्तर न हो, तो एक रास्ता तो यह है कि उस फकीर की भांति मैं भी उठूं और चला जाऊं और आपसे कहूं कि बोलने का कोई मतलब नहीं है और या फिर चौथा उत्तर मैं आपको बताऊं?

मैं उस फकीर जैसा कठोर नहीं हूं, इसलिए नहीं जाऊंगा। उस संबंध में निश्चिंत रहें। और चौथा उत्तर क्या हो सकता है, उस संबंध में आज आपसे मैं बात करूंगा। यह चौथा उत्तर न केवल जो मैं कहूंगा उसे समझने के लिए जरूरी है, बल्कि जीवन को, सत्य को जानने के लिए भी वही चौथा उत्तर जरूरी है। परमात्मा की खोज में भी वही चौथा उत्तर जरूरी है। आनंद की तलाश में भी वही चौथा उत्तर जरूरी है।

काश, उस मस्जिद के लोगों ने वह चौथा उत्तर दिया होता। लेकिन जमीन पर कोई ऐसी मस्जिद और मंदिर नहीं है जहां वह चौथा उत्तर मिल सके। इसलिए वहां भी नहीं मिला।

वह चौथा उत्तर क्या है? जो कि यदि दिया गया होता, तो वह फकीर उस दिन वहां बोलता और लोगों से अपने हृदय की बातें कहता। क्या ये तीन ही उत्तर हो सकते थे? क्या यह नहीं हो सकता था कि वे सारे लोग कोई भी उत्तर न देते और चुप रह जाते? वह चौथा उत्तर होता। वे कोई भी उत्तर न देते और चुप रह जाते। वह चुप रह जाना चौथा उत्तर होता। और जो चुप रह जाने में समर्थ है, वह उस बात को भी समझ सकेगा, जो कही जा रही है। और उस जीवन को भी समझ सकेगा, जो हमारे चारों ओर मौजूद है। लेकिन हममें से चुप रहने में कोई भी समर्थ नहीं है। हम बोलने में समर्थ हैं लेकिन चुप रहने में समर्थ नहीं। हम शब्दों के साथ खेलने में समर्थ हैं लेकिन मौन रह जाने में नहीं। और इसीलिए शायद हम जीवन को गंवा देते हैं।

जो जीवन हमारे चारों तरफ मौजूद है, चाहे उसे कोई परमात्मा कहे और जो जीवन हमारे भीतर मौजूद है, चाहे कोई उसे आत्मा कहे। हम उस जीवन को जानने से वंचित रह जाते हैं क्योंकि हम चुप होने में समर्थ नहीं। जानने के लिए चाहिए साइलेंट माइंड, जानने के लिए चाहिए मौन, जानने के लिए चाहिए एक ऐसा मन जो बिलकुल चुप हो सके। लेकिन हम बोलते हैं, बोलते हैं। जागते हैं तब भी और सोते हैं तब भी। किसी से बात करते हैं तब भी और नहीं बात करते हैं तब भी हमारे भीतर बोलना चल रहा है। यह जो चैटरिंग है, यह जो निरंतर बोलना है, ये जो निरंतर शब्द ही शब्द हैं, इन शब्दों और शब्दों में हमारा मन उस सामर्थ्य को खो देता है, उस शक्ति को खो देता है, उस शांति को खो देता है, उस दर्पण

को खो देता है, जिसमें कि जीवन को जाना और जीया जा सकता है। लेकिन शायद हमें इसका कोई स्मरण भी नहीं है।
क्या कभी हमें यह खयाल आया कि जैसे समुद्र लहरों से भरा हो, तूफान में हो; झील लहरों से भरी हो, आंधी आ गई हो, तो उस झील में फिर चांद दिखाई पड़ना बंद हो जाता है। क्या हमारे मन भी निरंतर आंधियों से भरे हुए नहीं हैं? क्या निरंतर उनमें भी शब्दों की हवाएं और शब्दों के तूफान नहीं उठ आते? क्या कभी एक क्षण को भी वहां शांति होती है? सब मौन होता है? नहीं होता है। और इसके कारण कुछ, कुछ बात घटित हो जाती है, जो हमारे और जीवन के बीच एक दीवाल बन जाती है और हम जीवन को नहीं जान पाते। और फिर इसी मन को लेकर हम खोजने निकलते हैं। शास्त्रों में खोजते हैं। इसी मन को लेकर हम पहाड़ों पर जाते हैं। इसी मन को लेकर हम मंदिरों में जाते हैं। लेकिन मन हमारा यही है जो शब्दों से भरा हुआ है। और कभी हमें यह खयाल भी पैदा नहीं होता कि यह मन जो इतना ज्यादा भरा हुआ है, इतना ज्यादा व्यस्त, इतना आक्युपाइड है, इतना-इतना शब्दों से दबा है, इतने शोरगुल से भरा है, यह क्या जानने में समर्थ हो सकता है? जानने के लिए इसके भीतर अवकाश कहां? स्पेस कहां? जगह कहां? स्थान कहां? जहां कोई नया सत्य प्रवेश कर सके, कोई नई बात सुनी जा सके, कोई नया तथ्य देखा जा सके। जगह कहां है? मन खाली कहां है? मन है भरा हुआ।

उस फकीर ने यही उन लोगों से पूछा था और उनमें से एक भी व्यक्ति इस बात की गवाही न दे सका कि वह चुप होने में समर्थ है, मौन रह जाने में समर्थ है। और तब उस फकीर ने ठीक ही किया कि उनसे वह कुछ कहने को राजी न हुआ। उसका कहा हुआ व्यर्थ होता। वहां सुनने वाला कोई मौजूद ही नहीं था। आप यहां मौजूद हैं, लेकिन केवल वही सुन पाएगा, जो चुप होगा, मौन होगा। और जो अपने भीतर बोल रहा है, वह कैसे सुन सकेगा? और जो अपने भीतर बातें कर रहा है, उसके भीतर कोई दूसरे शब्द कैसे पहुंच पाएंगे?

साइलेंस, एक शांति, चौथा उत्तर है। वह कैसे हमारे भीतर पैदा हो सकता है, उसकी मैं आज आपसे बात करूंगा।

इसके पहले कि मैं इस संबंध में कुछ कहूं कि हमारे भीतर मौन कैसे पैदा हो सकता है, जो कि सत्य को जानने का द्वार है और मार्ग है, यह जान लेना जरूरी होगा कि हमारे भीतर इतने शब्द कैसे इकट्ठे हो गए? शायद इस बात को जानने से ही, कितने शब्द हमारे भीतर कैसे इकट्ठे हो गए हों, हम उन्हें निकालने में भी समर्थ हो जाएं।

पहली बात, शब्द इकट्ठे हुए नहीं हैं, हमने उन्हें इकट्ठा किया है। क्योंकि अगर वे इकट्ठे हुए होते, तो हम उन्हें दूर भी नहीं कर सकते थे। हमने उन्हें इकट्ठा किया है। हम चौबीस घंटे उन्हें इकट्ठा कर रहे हैं। हम चौबीस घंटे सब तरफ से उनको ढूंढ कर ला रहे हैं। शायद

हमें यह खयाल है कि जितने ज्यादा शब्द होंगे हमारे पास, उतना ही बड़ा हमारा ज्ञान हो जाएगा। शायद हमें खयाल है कि बहुत शब्दों का जो मालिक है, वह ज्ञान का भी मालिक हो जाता है। शायद हमें खयाल है कि शब्द जिसके पास हैं, उसके पास कोई आंतरिक संपदा हो गई है। इन्हीं शब्दों, इन्हीं शब्दों के संग्रह को हमें बताया गया है कि ज्ञान है और हमने इन्हीं शब्दों को इकट्ठा करके अपने को भी विश्वास दिला लिया है कि हम कुछ जानते हैं।
लेकिन अगर हम कुछ भी शब्दों को उठा कर देखें और खोज करें, तो हमें भ्रम दिखाई पड़ जाएगा। ईश्वर, आत्मा, मोक्ष, प्रेम, सत्य, अहिंसा, इन शब्दों में हम सभी शब्दों से परिचित हैं। लेकिन इनमें से एक भी शब्द को उठा कर उसे थोड़ा खोजें, तो हमें पता चलेगा कि उस शब्द के भीतर हमारे पास कोई अनुभव नहीं है।

ईश्वर, इस शब्द को थोड़ा सोचें। इस शब्द के साथ आपकी कौनसी अनुभूति जुड़ी है? यह कोरा शब्द है या कोई अनुभव भी पीछे है? आत्मा, इसके साथ कौनसा अनुभव है हमारा? कौनसी हमारी अपनी प्रतीति है? कौन सा एक्सपीरिएंस है? या कि एक कोरा शब्द है? जब मैं कहता हूं, मकान; जब मैं कहता हूं, वृक्ष, तब शब्द नहीं होता हमारे पास, पीछे एक अनुभूति भी होती है। जब मैं कहता हूं, घोड़ा, तो शब्द ही नहीं होता, घोड़े का एक अनुभव भी होता है। लेकिन जब मैं कहता हूं, आत्मा; जब मैं कहता हूं, ईश्वर, तब हमारे पास क्या है? हमारे पास केवल एक शब्द है थोथा और खाली, जिसमें कोई हमारा अनुभव नहीं है, जिसमें हमारा कोई जानना नहीं है।

मनुष्य के पास दो तरह के शब्द हैं। एक तो वे शब्द हैं, जो उसके अनुभव से निर्मित हुए हैं और एक वे शब्द हैं, जिनके साथ उसका कोई अनुभव नहीं है। धर्म और दर्शन और फिलासफी के संबंध में हम जो कुछ जानते हैं, वे दूसरे तरह के शब्द हैं, जिनके साथ हमारा कोई अनुभव नहीं है। और उन शब्दों के आधार पर, जो बिलकुल निष्प्राण, जो बिलकुल डेड और मुर्दा हैं--जो वैसे ही हैं, जैसे एक कवि एक समुद्र के किनारे था। वहां बड़ी सुखद हवाएं थीं, बड़ी शीतल हवाएं थीं, और वहां उसने सोचा कि उन हवाओं को वह अपनी प्रेयसी के पास भी पहुंचा दे। लेकिन उसकी प्रेयसी तो हजारों मील दूर एक अस्पताल में बीमार थी। तो उसने एक बहुत सुंदर संदूक में उस समुद्र की हवाओं को बंद किया और उस संदूक को अपनी प्रेयसी के पास पहुंचा दिया। और एक पत्र लिखा कि समुद्र के किनारे इतनी सुंदर हवाएं हैं, इतनी शीतल, इतनी आनंददायी कि मेरा मन होता है कि उन्हें तुम्हें मैं भेंट भेजूं। तो इस छोटी सी पेटी में थोड़ी सी हवाएं बंद करके भेज रहा हूं। तुम उन हवाओं को पाकर प्रसन्न हो जाओगी। लिखना मुझे, हवाएं तुम्हें कैसी लगीं? वह पेटी पहुंची। उसकी प्रेयसी ने वह पत्र पढ़ा और उस पेटी को खोला, लेकिन उसके भीतर तो कुछ भी नहीं था।

समुद्र की हवाओं को पेटियों में नहीं भरा जा सकता है। समुद्र की हवाओं को जानना हो, तो उन्हें अपने घर तक लाने का कोई उपाय नहीं है। खुद हमें ही समुद्र के किनारे जाना पड़ेगा।

यह नहीं हो सकता है कि मेरा कोई मित्र पेटियों में भर कर उन्हें मेरे पास भेज दे। हां, यह हो सकता है कि मैं खुद समुद्र के किनारे जाऊं और जानूं। ताजी हवाओं को पेटियों में भरते से ही वे मुर्दा हो जाएंगी। उनकी सारी ताजगी चली जाएगी। उसके पास पेटी तो पहुंची लेकिन हवाएं नहीं पहुंचीं। उसने बहुत खोजा उस पेटी में, लेकिन वहां कोई हवाएं नहीं थीं।

हमारे पास भी शब्द पहुंच जाते हैं, अनुभूतियां नहीं पहुंचतीं। सत्य के किनारे पर जो अनुभव किया जाता है, उसे सत्य के किनारे पर ही जाकर अनुभव किया जा सकता है। कोई अनुभव करे और शब्द हमारे पास पहुंचा दे, वे शब्द हमारे पास खाली पेटियों की भांति पहुंचते हैं, उनमें कोई हवाएं नहीं होतीं। और उन्हीं शब्दों को हम इकट्ठा कर लेते हैं; और उन्हीं शब्दों के हम मालिक बन जाते हैं; और उन्हीं शब्दों के आधार पर हम जीना शुरू कर देते हैं। वे शब्द ही झूठे हो चुके हैं। हमारा जीवन भी उनके साथ झूठा हो जाता है। और उन्हीं शब्दों के आधार पर हम जीवन के प्रश्नों के उत्तर देने लगते हैं।

अगर कोई पूछे, ईश्वर है? तो हम कोई उत्तर जरूर देंगे। जैसा उस मस्जिद के लोगों ने उत्तर दिया। अगर कोई पूछे, आत्मा है? तो हम उत्तर जरूर देंगे। अगर कोई पूछे, सत्य क्या है? तो हम उत्तर जरूर देंगे। और हममें से इतना समर्थ कोई भी नहीं होगा, जो चुप रह जाए और इस बात को अनुभव करे कि मेरे पास थोथे शब्दों के सिवाय और क्या है? तो मैं कैसे उत्तर दूं? लेकिन जो आदमी चुप रह जाएगा, उसने सत्य की तरफ, जानने की तरफ, पहला कदम उठा लिया। उसने सत्य की तरफ यात्रा का पहला कदम उठा लिया, क्योंकि वह शब्दों की व्यर्थता को जान गया है। और जो शब्दों की व्यर्थता को जान जाता है, वही सत्य तक जाने की खोज कर सकता है। लेकिन जो शब्दों से तृप्त हो जाता है, उसकी तो खोज बंद हो जाती है। और हम सारे लोगों की खोज बंद है।

कोई एक तरह के शब्दों से तृप्त हो गया है; कोई दूसरे तरह के शब्दों से तृप्त हो गया है। कोई हिंदू होने से; कोई मुसलमान होने से; कोई जैन होने से। यह सब होना क्या है? यह शब्दों से तृप्त हो जाने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। हमने कुछ उत्तर स्वीकार कर लिए हैं। और जो आदमी कुछ उत्तर स्वीकार कर लेता है, उसका मन मुर्दा हो जाता है, उसकी खोज बंद हो जाती है। मुर्दा मन शब्दों से भरा हुआ होता है। ताजा मन शब्दों से नहीं; जिज्ञासा से, इंक्वायरी से। मुर्दा मन का लक्षण है: उसके पास सब उत्तर बंधे हुए तैयार होते हैं। जीवित मन का लक्षण है: उसके पास प्रश्न तो होते हैं लेकिन उत्तर नहीं होते। उसके पास जिज्ञासा तो होती है, खोज की आकांक्षा और प्यास तो होती है लेकिन उत्तर नहीं होते। और जिसके पास उत्तर नहीं हैं और प्रश्न हैं, उसका मन अचानक चुप हो जाता है, मौन हो जाता है।

मौन हो जाने का पहला सूत्र है: उत्तरों से मुक्त हो जाइए। लेकिन हमारी हालत बिलकुल उलटी है। हमारे पास प्रश्न कम हैं, उत्तर ज्यादा हैं। जिसके पास प्रश्न नहीं हैं और उत्तर हैं, उस आदमी ने खोज बंद कर दी। वह तृप्त हो गया, वह रुक गया। और जीवन सतत मांग करता है आगे बढ़ो; और जीवन पुकारता है आगे आओ; और जीवन कहता है कहीं रुक मत जाना क्योंकि रुकने के सिवाय मृत्यु और कुछ भी नहीं। लेकिन जो सतत बढ़ता है और कहीं रुकता नहीं--उस सातत्य में, उस निरंतर बढ़ते जाने में ही, जीवन और उसके कदम एक साथ बढ़ने लगते हैं। और एक दिन आता है कि जीवन की जो सतत प्रवाहमान धारा है, वह जो जीवन की गंगा है, वह उसके साथ एक हो जाता है। जीवन ठहरा हुआ नहीं है, लेकिन हमारे मन ठहरे हुए हैं। जीवन तो निरंतर, सतत आगे जा रहा है, प्रतिक्षण बहा जा रहा है हेराक्लतु ने कोई दो हजार वर्ष पहले यूनान में कहा था: नदी में दुबारा नहीं उतर सकते। एक ही नदी में दुबारा नहीं उतर सकते। उसने जीवन की नदी के बाबत कहा था। नदी तो बही जाती है। आज उतरे हैं उसमें, कल उसी नदी में नहीं उतर सकेंगे। वह नदी आगे चली गई, दूसरे पानी ने जगह ले ली होगी। मैं तो कहता हूं, एक ही नदी में एक बार भी उतरना बहुत कठिन है। क्योंकि जब तक पैर नदी के पानी को छुएगा, नीचे का पानी बह गया। जब पानी में पैर नीचे जाएगा, तब तक ऊपर का पानी बह गया। जीवन तो बहाव है, लेकिन मनुष्य का मन ठहराव बन जाता है। और जो मन ठहर जाता है, वह जीवन से उसका संपर्क टूट जाता है, संबंध टूट जाता है। फिर वह कितना ही राम-नाम जपे और शास्त्र पढ़े, उसे कहीं परमात्मा की कोई झलक उपलब्ध न हो सकेगी, क्योंकि परमात्मा तो जीवन में व्याप्त है, जीवन का ही दूसरा नाम परमात्मा है।

जीवन से संबंध जोड़ना है, तो मुर्दा मन से संबंध तोड़ना पड़ेगा। और शब्दों से भरा हुआ मन डेड हो जाता है, मुर्दा हो जाता है। हम सबके मन मरे हुए मन हैं, जीवित मन नहीं हैं। जीवित मन के लिए चाहिए, जहां-जहां मन ठहर गया हो, वहां-वहां से हम मन को मुक्त कर लें। जहां-जहां मन रुक गया हो, वहां-वहां से हम उसे छोड़ दें। जिन-जिन किनारों को उसने जोर से पकड़ लिया हो, उन-उन किनारों को हम छोड़ दें, ताकि बहाव पैदा हो सके, ताकि मन भी एक गति पा सके, डाइनैमिक हो सके, डेड न रह जाए, परिवर्तन पा सके, प्रवाह पा सके। जितना प्रवाह मन में आएगा, उतना ही मन शांत होता जाएगा। मन की यह जो अशांति है, यह इसीलिए है कि मन को हम रोक कर बंद किए हुए हैं और सारा जीवन बहा जा रहा है। मन तड़प रहा है मुक्त होने को, लेकिन हम उसे बांधे हुए हैं। मन स्वतंत्र होने को पीड़ित है और हम उसे बांधे हुए हैं। और बांधे हुए हम किस चीज से? कोई लोहे की जंजीरें नहीं हैं, शब्दों की जंजीरें हैं। और शब्द इतनी अदभुत जंजीर बन जाते हैं कि आंखें बंद हो जाती हैं, कान बंद हो जाते हैं, हृदय बंद हो जाता है। एक शब्द सब कुछ बंद कर सकता है।

हिंदुस्तान में चार हजार, पांच हजार वर्षों से हम करोड़ों शूद्रों को सता रहे हैं, परेशान कर रहे हैं। क्यों? एक शब्द हमने ईजाद कर लिया, शूद्र। बस एक शब्द ईजाद कर लिया "शूद्र' और कुछ लोगों पर हमने चिपका दिया कि ये शूद्र हैं। फिर हमारी आंखें बंद हो गईं; फिर हम उनके कष्ट नहीं देख सके। क्योंकि शूद्र, दरवाजा बंद हो गया। फिर हम उनकी पीड़ाएं अनुभव नहीं कर सके, फिर हमारा हृदय उनके प्रति प्रेम से प्रवाहित नहीं हो सका। एक शब्द हमने चिपका दिया, शूद्र। एक ईजाद कर लिया शब्द। और उस शब्द के आधार पर हम पांच हजार साल से करोड़-करोड़ लोगों को परेशान कर रहे हैं। और हमें यह खयाल भी पैदा नहीं हुआ कि हम यह क्या कर रहे हैं? इसलिए खयाल पैदा नहीं हुआ क्योंकि जिसे हमने शूद्र कह दिया, वह हमारे लिए मनुष्य ही नहीं रह गया। उसका मनुष्यों से कोई संबंध नहीं रह गया। एक शब्द खड़ा हो गया शूद्र और मनुष्य और मनुष्य अलग हो गए। वह ठीक हमारे जैसा व्यक्ति दूसरी तरफ मनुष्यों के बाहर हो गया।

अगर उसने वेद की ऋचाएं सुन लीं, तो हमने उसके कान में शीशा पिघलवा कर भरवा दिया; क्योंकि वह सुनने का हकदार न था, वह शूद्र था। हमें यह खयाल भी न आया, उसके भीतर भी हमारे जैसी एक आत्मा है, जो सत्य की खोज करना चाहती है। और अगर उसने वेद को सुनने की हिम्मत की है, आकांक्षा की है, तो यह स्वागत के योग्य बात है। नहीं, यह हमें खयाल नहीं आया। एक शब्द काफी था कि वह शूद्र है और बात खत्म हो गई। हमारे कान बंद हो गए, हमारे प्राण बंद हो गए, हमारे हृदय बंद हो गए। हमने हजारों शब्द ईजाद कर लिए हैं और वे दीवाल की तरह खड़े हुए हैं।

मैं एक घर में मेहमान था। उस घर के लोगों ने मेरे साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया। वे मुझे बड़े प्रेम से दो दिन अपने घर में रखे। चलने के कोई दो घंटे पहले उस घर के मालिक ने मुझसे पूछा, आपकी जाति क्या है? उन्हें मेरी जाति का कोई पता नहीं था। और मेरी कोई जाति है भी नहीं, पता हो तो कैसे हो? तो मैंने उनसे मजाक में ही कहा कि आप खुद ही सोचें कि मेरी जाति क्या हो सकती है? उनके घर में एक छोटा सा बच्चा था, उसने मेरी दाढ़ी वगैरह देख कर कहा कि कहीं आप मुसलमान तो नहीं? मैंने कहा कि अगर तुम कहते हो तो यही सही, मुसलमान ही सही। उस घर में बड़ी चिंता फैल गई। उन सबका मेरे प्रति रुख बदल गया। वह दो घंटे में दूसरा आदमी हो गया। उसके पहले मैं दूसरा आदमी था। एक शब्द बीच में आ गया "मुसलमान' और मैं दूसरा आदमी हो गया। मैं वही था, जो दो दिन से था, लेकिन वे बीते दो घंटे भिन्न हो गए। आते वक्त उन्होंने मेरे पैर पड़े थे, जाते वक्त उस घर में किसी ने मेरे पैर नहीं पड़े। एक शब्द बीच में आ गया। आते वक्त वे खुशी से भरे थे, जाने के बाद शायद उन्होंने अपना घर साफ किया हो। किया जरूर होगा, सफाई की होगी--एक मुसलमान घर में आ गया। मैं वही था, लेकिन एक शब्द बीच में आ गया और सारी बात बदल गई।

हमने न मालूम कितने शब्द खड़े किए हुए हैं जो दीवाल की तरह एक-दूसरे मनुष्य को अलग कर रहे हैं। और मनुष्य को ही अलग नहीं कर रहे हैं, हमारी आंखों को भी अंधा कर रहे हैं, हमारे प्राणों को भी बहरा कर रहे हैं, हमारी संवेदनशीलता को तोड़ रहे हैं।

जर्मनी में हिटलर ने कोई बीस लाख यहूदियों की हत्या करवाई। कौन लोगों ने हत्या की? वे लोग कोई बहुत बुरे लोग हैं? वे हम जैसे ही लोग हैं। पांच सौ यहूदी रोज नियमित हत्या किए जाते रहे। कौन लोग हत्या कर रहे थे उनकी? वे कोई पागल हैं? उनके दिमाग खराब हैं? या कि वे कोई दैत्य हैं, राक्षस हैं? नहीं, हमारे जैसे लोग हैं। सब बातें हमारे जैसी हैं। लेकिन एक शब्द यहूदी, और उस शब्द के साथ उनके प्राण पागल हो गए और उन्होंने वह किया जो आदमी को करने में जरा भी शोभा नहीं देता।

हमने अपने मुल्क में क्या किया? हिंदुओं ने मुसलमानों के साथ क्या किया? मुसलमानों ने हिंदुओं के साथ क्या किया? छोड़ दें हिंदू-मुसलमान की बात, महाराष्ट्रियन गुजराती के साथ क्या कर सकता है? गुजराती महाराष्ट्रियन के साथ क्या कर सकता है? हिंदी बोलने वाला गैर-हिंदी बोलने वाले के साथ क्या कर सकता है? गैर-हिंदी बोलने वाला हिंदी बोलने वाले के साथ क्या कर सकता है? कुछ शब्द और उन शब्दों में जहर भरा जा सकता है और हमारे प्राण बिलकुल ही पागल हो सकते हैं। ऐसे बहुत से शब्दों की दीवाल हमने खड़ी कर ली है। इन शब्दों की दीवालों में जो घिरा है, वह आदमी कभी भी धार्मिक नहीं हो सकता।

शब्दों से मुक्त होना चाहिए। तो एक तो शब्द हैं, दीवाल की तरह मनुष्य-मनुष्य को तोड़ रहे हैं और साथ ही ये शब्द जीवन के प्रति भी हमारी आंखों को नहीं खुलने देते, वहां भी आंखों को बंद रखते हैं। हम शायद सब तरफ शब्दों को खड़ा कर लेते हैं। अपने चारों तरफ एक किला बना लेते हैं शब्दों का और उसके भीतर छिप जाते हैं। और जब भी जीवन में कोई अनहोनी और नई घटना घटती है, तो हम पुराने शब्दों से उसकी व्याख्या कर लेते हैं, और उसका नयापन समाप्त हो जाता है और खत्म हो जाता है।

यह जो हमारी स्थिति है यह हमें चुप नहीं होने देती, मौन नहीं होने देती, ताजा नहीं होने देती। वह जो मस्तिष्क है, उसको फ्रेश और नया नहीं होने देती। और नया मस्तिष्क न हो, तो कैसे जीवन से हम जुड़ सकें? कैसे जीवन को जान सकें? और शांत मन न हो, तो कैसे हम सत्य को जान सकें? और दीवालें न टूटें, तो हम कैसे मनुष्य से जुड सकें? दूर हैं पशु और पक्षी तो, दूर हैं पौधे, दूर है आकाश, दूर हैं आकाश के तारे, आदमी से ही हम नहीं जुड़ पा रहे हैं, तो हम परमात्मा से जुड़ने की बात कैसे करें?

यहां इतने लोग बैठे हैं। हम सबके बीच में दीवालें खड़ी होंगी, न मालूम किस-किस किस्म की। और उन सब दीवालों की ईंटें शब्दों से बनी हुई हैं, कोई लोहे से नहीं बनी हुई। उन्हें तोड़ देने में जरा भी कठिनाई नहीं है। एक हाथ का धक्का, एक हवा का झोंका काफी होगा

और वे गिर जाएंगी और आप एक नये मनुष्य होकर खड़े हो जाएंगे। अपने चारों तरफ से शब्दों की दीवाल हटा देनी जरूरी है। तो शायद हमारे भीतर जानने की क्षमता पैदा हो सके, सुनने की क्षमता पैदा हो सके, और शायद हमारे द्वार खुल सकें, और हमारे जो भीतर चारों तरफ जीवन है, वह प्रवेश कर सके। अभी तो वह कहीं से भी प्रवेश नहीं कर पाता है।

ऐसे ही शब्द--सत्य और आत्मा और ईश्वर और मोक्ष हमने सीख रखे हैं और उन्हें हम तोतों की भांति रटते रहते हैं और सोचते हैं कि शायद उन्हीं के द्वारा हमारे जीवन में आनंद आ जाएगा, शायद मुक्ति आ जाएगी, शायद अमृत की उपलब्धि हो जाएगी। नहीं होगी। रटते रहें तोतों की भांति हम जीवन भर। जीवन रटने से उपलब्ध नहीं होता। बल्कि रटने वाला, रिपीट करने वाला जो मन है, वह धीरे-धीरे जड़ हो जाता है, धीरे-धीरे और ज्यादा डलनेस पैदा हो जाती है, और ज्यादा मुर्दा हो जाता है और मर जाता है।

क्या करें? कैसे यह दीवाल टूट जाए? पहली बात, इस बात का हमें स्पष्ट बोध हो जाना चाहिए कि ये शब्द दीवाल बना रहे हैं। क्योंकि अगर कोई आदमी कारागृह में बंद हो, जेल में बंद हो और उसे यह भी पता न हो कि वह जेल में बंद है, तो वह छूटने का उपाय ही नहीं करेगा। अगर उसे यह भी पता न हो कि मैं जेल के भीतर बंद हूं, तो छूटने का सवाल ही नहीं है, मुक्ति के प्रयास का प्रयत्न भी नहीं होगा, प्रश्न भी नहीं होगा। कारागृह से छूटने के लिए पहली बात तो जरूरी है कि वह जान ले कि मैं कारागृह में बंद हूं। अगर यह अनुभव में आ जाए कि मैं कारागृह में बंद हूं, तो जिन दीवालों को उसने कल तक सजाया था और चित्र लगाए थे और फूल लगाए थे, वे दीवालें उसे शत्रु की भांति मालूम होने लगेंगी। वह उनकी सजावट बंद कर देगा और उनको तोड़ने का उपाय करेगा।

हम शब्दों की दीवालों को कारागृह अगर न मानते हों, तो हम शब्दों की दीवालों को और सजावट करते हैं और उस पर फूल लगाते हैं, इत्र छिड?कते हैं। उन शब्दों की हम पूजा करते हैं और उन शब्दों का हम और स्वागत करते हैं, तो दीवाल और बड़ी होती चली जाती है। हम सब अपने-अपने कारागृह को सजाने में लगे हुए हैं, तो उससे मुक्त होने का तो सवाल ही नहीं। हिंदू या मुसलमान शब्द कारागृह हैं। लेकिन हम तो हिंदू, जैन, मुसलमान, इन शब्दों को ऊंचा उठाने में लगे हैं। हम तो इस बात में लगे हुए हैं कि दुनिया में हिंदू धर्म का झंडा गड़ जाए, या ईसाई धर्म का झंडा गड़ जाए, या जैन धर्म का झंडा गड़ जाए। और हम तो जयजयकार करने की कोशिश में लगे हैं कि हिंदू धर्म की जय हो, मुसलमान धर्म की जय हो। हमारा झंडा गड़ जाए। और हम तो इसकी घोषणा करने में लगे हैं कि हिंदू धर्म महान धर्म है और बाकी सब छोटे धर्म हैं। और इस्लाम ही असली धर्म है, बाकी सब झूठे हैं। और क्राइस्ट के सिवाय और कोई मुक्तिदाता नहीं है। इस तरह की बातें जो लोग कह रहे हैं, इस तरह की घोषणाएं जो लोग कर रहे हैं, वे तो अपने कारागृह को सजा रहे हैं, वे उसे तोड़ेंगे कैसे?

हम तो सारे लोग अपने-अपने शब्दों की पूजा करने में लगे हैं और हमने तो शब्दों के लिए मंदिर बना रखे हैं और हम लोगों को इकट्ठा कर रहे हैं उन शब्दों की रक्षा के लिए, संगठन बना रहे हैं। उन शब्दों की रक्षा के लिए हत्या करने के लिए हम तैयार हैं, उन शब्दों की रक्षा के लिए चाहे आदमी को मारना पड़े, हम मारने को राजी हैं। हमारी किताबें यह कर रही हैं। हमारे ग्रंथ यह कर रहे हैं। हमारा प्रचार यह कर रहा है। सारी दुनिया में धर्म के नाम पर शब्दों के झंडे गड़ाने की कोशिश की जा रही है, चाहे उनके आस-पास कितने ही आदमियों की हत्या हो जाए। और आज तक हत्या होती रही है, और आज भी हत्या हो रही है, और कल के लिए भी कुछ नहीं कहा जा सकता। अगर आदमी ऐसा ही रहा, तो कुछ भी हो सकता है।

पुराने शब्द फीके पड़ जाते हैं तो हम नये शब्द पकड़ लेते हैं। महावीर पर आज लड़ाई होनी बंद हो गई, शायद मोहम्मद पर भी लड़ाई होनी करीब-करीब बंद हो गई, तो नये नाम आ गए हैं। माक्र्स नया नाम है। इस पर लड़ाई शुरू हो गई। कम्युनिज्म नया शब्द है, इस्लाम-हिंदू पुराने पड़ गए, अब इस पर लड़ाई शुरू हो गई। अब सारी दुनिया में कम्युनिज्म एक शब्द है, जिस पर लड़ाई खड़ी हुई है। नई आइडियालॉजी खड़ी हो गईं, जिन पर हम लड़ेंगे और हत्या करेंगे। अमरीका नये शब्दों को पकड़े हुए बैठा है, रूस नये शब्दों को पकड़े हुए बैठा है। नये शब्दों पर लड़ाई हो रही है। और लड़ाई यहां तक पहुंच सकती है कि शायद सारी मनुष्य-जाति को समाप्त हो जाना पड़े। किस बात पर? इस बात पर कि कुछ शब्द हमको प्रिय थे, और कुछ शब्द आपको प्रिय थे और हम अपने शब्दों को छोड़ने को राजी नहीं थे और आप अपने शब्दों को छोड़ने को राजी नहीं थे।

क्या आदमी अपने इस बचकानेपन से मुक्त नहीं होगा? क्या ये बच्चों जैसी बातें और शब्दों की लड़ाइयां बंद नहीं होंगी? ये तब तक बंद नहीं होंगी, जब तक हम शब्दों को आदर और पूजा देते रहेंगे। क्योंकि जिसको हम पूजा देते हैं, उससे हम छुटकारा कैसे पा सकते हैं? छुटकारा पाने के लिए पहली बात जरूरी है, शब्द कारागृह हैं और उनका ज्ञान हमें मुक्त नहीं करता बल्कि बांधता है, यह जान लेना जरूरी है। इसको जानते ही आपके भीतर से दीवाल गिरनी शुरू हो जाएगी। वह जो शब्दों का भवन है, वह खिसकना शुरू हो जाएगा। उसकी आधारशिला खींच ली गई। वह आधारशिला हमने अपने प्रेम से रखी है, पूजा से रखी है। अगर हम अपने पूजा और प्रेम को अलग कर लेते हैं, वह गिर जाएगी। एक ऐसी दुनिया चाहिए जिसमें आदमी तो हों लेकिन हिंदू और मुसलमान न हों। ये बहुत कलंक के दाग हैं। एक ऐसी दुनिया तो चाहिए, जिसमें सोच-विचारशील लोग हों लेकिन शब्दों को पकड़ने वाले पागल नहीं। एक ऐसी दुनिया चाहिए, जहां आदमी-आदमी के बीच शब्दों की कोई दीवाल न रह जाए, तो शायद धर्म का राज्य शुरू हो सकता है। तो शायद व्यक्ति के जीवन में और समूह के जीवन में भी धर्म का अवतरण हो सकता है। उसके पहले नहीं हो सकता। उसके

पहले कोई रास्ता नहीं है। इधर पांच हजार वर्षों में हमने शब्दों के जाल खड़े किए हैं और खुद उसमें फंस गए हैं। अब कौन इसको तोड़े? कुछ लोग अगर हिम्मत नहीं करेंगे, तो शायद यह शब्दों का जाल हमारी फांसी बन जाएगा और हमारा बचना मुश्किल हो जाएगा। और कितने आश्चर्य की बात है कि पांच हजार साल का इतिहास देखने के बाद भी हम शब्दों के प्रति जागरूक नहीं हो रहे हैं कि हमने क्या किया? हमें खयाल में भी नहीं आ रहा है कि इन शब्दों ने हमारे साथ क्या किया? और हमें किस स्थिति में पहुंचा दिया? एक-एक व्यक्ति के भीतर भी यह जाल है और सबके बाहर भी यह जाल है। हरेक को अपने भीतर इस जाल को तोड़ने में लगना होगा। तो ही उसके भीतर वह साइलेंस पैदा हो सकती है, जिसकी मैं आपसे बात कर रहा हूं।

क्या करें? कैसे तोड़ें? लोग मुझसे निरंतर पूछते हैं, कैसे तोड़ें?

मैं उनसे कहता हूं, पहली बात, शब्दों के प्रति सारा आदर, सारी पूजा, शब्दों के प्रति सारा भक्ति-भाव छोड़ दें। शब्दों में कुछ भी नहीं है। शब्दों में कोई सत्य नहीं है। सत्य तो वहीं अनुभव होता है, जहां सारे शब्द छूट जाते हैं। इसलिए शब्दों के प्रति सारी भक्ति, सारी पूजा जानी चाहिए। यह सारा शब्दों के प्रति जितना आदर है, सम्मान है, यह जाना चाहिए। सम्मान पैदा होना चाहिए सत्य के प्रति, शब्द के प्रति नहीं। और जिसको सत्य के प्रति सम्मान पैदा होगा, वह न तो हिंदू रह जाएगा, न मुसलमान, न जैन, न बौद्ध, न ईसाई, न पारसी। और जिसे सत्य के प्रति सम्मान पैदा होगा, वह न तो भारतीय रह जाएगा, न पाकिस्तानी, न चीनी। जिसे सत्य के प्रति सम्मान पैदा होगा, उसके जीवन से सारी सीमाएं गिर जाएंगी। क्योंकि सब सीमाएं शब्दों ने पैदा की हैं। सत्य की कोई सीमा नहीं है। सत्य असीम है। सत्य की कोई सीमा नहीं है। सत्य का कोई देश, कोई जाति, कोई धर्म नहीं। सत्य का कोई मंदिर, कोई मस्जिद नहीं। सत्य तो है पूरा जीवन, विराट जीवन। सभी कुछ जो चारों तरफ मौजूद है, वह सभी सत्य है। उस विराट और असीम से मिलने के लिए भीतर भी असीम मन चाहिए। सीमित और क्षुद्र मन, यह जो नैरो-माइंड है, यह जो छोटा सा मन है, यह काम नहीं कर सकेगा। विराट को पाने के लिए इसे भी विराट होना पड़ेगा। लेकिन हम ईश्वर को खोजने निकल पड़ते हैं। इसकी बिलकुल भी खोज नहीं करते कि हमारा यह मन कितना क्षुद्र है।

एक फकीर के पास एक युवक गया और उस युवक ने कहा: मैं ईश्वर को, मैं सत्य को खोजने आया हूं, क्या आप मुझे कोई मार्ग बता सकेंगे? वह फकीर बोला, इसके पहले कि मैं तुम्हें कुछ कहूं, मेरे साथ कुएं पर आओ--वह कुएं पर पानी भरने जा रहा था। उसने हाथ में एक बाल्टी ली और एक बड़ा ढोल लिया और वह कुएं पर गया। उसने बाल्टी कुएं में डाली, खींची। और वह युवक खड़ा हुआ देखता रहा। बाल्टी खींच कर उसने उस बड़े ड्रम में जिसे वह अपने साथ लाया था, उसमें पानी डाला। लेकिन ड्रम के नीचे कोई बाट्म नहीं था,

उसके नीचे कोई पेंदी नहीं थी। पानी जमीन पर बह गया। उसने दूसरी बाल्टी खींची, वह भी डाली। वह लड़के का संयम टूट गया। उसने एक, दो, तीन बाल्टियां बहते देखीं, चौथी बाल्टी पर उसने कहा: महानुभाव! आप भी आश्चर्यजनक मालूम पड़ते हैं। जिस ढोल में आप पानी भर रहे हैं, उसमें नीचे कोई पेंदी नहीं है, और पानी बहा जा रहा है। जिंदगी भर भी पानी भरते रहिए, तो भी पानी भरेगा नहीं।

उस फकीर ने कहा: मेरे मित्र! मुझे ढोल की पेंदी से क्या मतलब? मुझे पानी भरना है, तो मैं ढोल के गले पर आंखें गड़ाए हुए हूं। जब गले तक पानी आ जाएगा, तो मैं समझ लूंगा, पानी भर गया। पेंदी से मुझे क्या लेना-देना?

युवक बहुत हैरान हुआ इस उत्तर से। उस दिन चला गया। लेकिन रात उसने सोचा कि जो बात मुझे दिखाई पड़ रही थी, सीधी और साफ बात थी। अंधे आदमी को भी पता चल जाती कि उस ढोल में पेंदी नहीं थी। वह उस फकीर को नहीं दिखाई पड़ी, यह बड़े आश्चर्य की बात है। इसमें जरूर कुछ न कुछ रहस्य होना चाहिए। जो मुझे दिखाई पड़ रहा था, उसे क्यों दिखाई नहीं पड़ेगा?

वह वापस गया दूसरे दिन और उसने कहा कि मुझे माफ करें, मैंने अशिष्टता की कि मैंने आपसे कहा कि जिस ढोल में पेंदी नहीं है उसमें पानी मत भरिए। लेकिन रात मैंने सोचा तो मुझे दिखाई पड़ा कि जो बात मुझे दिखाई पड़ रही थी, मैं जो कि बिलकुल अज्ञानी हूं, तो क्या आपको दिखाई नहीं पड़ रही होगी? आपको भी दिखाई पड़ रही होगी। तब जरूर बात कुछ और है। तो मुझे कृपा करके समझाएं कि उस पेंदी से रहित ढोल में पानी भरने का क्या आशय था?

उस फकीर ने कहा: ठीक हुआ कि तुम लौट आए, क्योंकि अक्सर जो लोग सत्य खोजने आते हैं, उनके साथ पहला काम मैं यही करता हूं, पेंदी रहित ढोल में पानी भरता हूं। वे मुझे पागल समझ कर वापस लौट जाते हैं और फिर कभी नहीं आते। लेकिन तुम लौट आए। तुम पहले आदमी हो लौटने वाले। तुमसे मैं कुछ कहूंगा।

तुम्हें यह तो दिखाई पड़ गया कि जिस ढोल में पेंदी नहीं है, उसमें पानी नहीं भरा जा सकता। लेकिन तुम्हें यह दिखाई क्यों नहीं पड़ता कि तुम्हारा मन, जो इतना क्षुद्र है, उसमें आकाश जैसे विराट सत्य को नहीं भरा जा सकता? तुम्हें यह तो दिखाई पड़ गया कि जो बर्तन पानी भरने में समर्थ नहीं है, उसमें पानी नहीं भरा जा सकता? लेकिन तुम्हें यह दिखाई क्यों नहीं पड़ता कि जो मन अभी सत्य को भरने में समर्थ नहीं है, उसमें सत्य नहीं भरा जा सकता। लेकिन तुम वापस लौट आए हो, तुमसे कुछ बात हो सकती है। सत्य की खोज तो छोड़ दो। जैसा कि तुमने मुझसे कहा था कि पानी भरना बंद करो, पहले इसके

भीतर पेंदी होनी चाहिए। वही मैं तुमसे कहता हूं, ईश्वर और सत्य की खोज तो छोड़ दो, पहले उस मन की फिक्र करो, जो तुम्हारे भीतर है और जो सत्य की खोज करने जा रहा है। हम सारे लोग खोज करने निकल पड़ते हैं बिना इस बात को देखे हुए कि जो मन खोज करने जा रहा है वह कैसा है। पहली बात तो यह है कि वह मन बहुत सीमित, बहुत क्षुद्र है, शब्दों की दीवाल में बंद है, और इसलिए सत्य को नहीं पा सकेगा। दीवाल तोड़नी जरूरी है। और कोई दूसरी दीवाल नहीं है। स्मरण रखिए! मन के ऊपर शब्दों के अतिरिक्त और कोई दीवाल नहीं है। अगर शब्द अलग हो जाएं, तो मन एकदम निराकार हो जाएगा। कभी आपने सोचा, कभी अपने मन के भीतर खोजी यह बात कि अगर शब्द न हों तो वहां क्या होगा? अगर कोई भी शब्द न हो, तो भीतर क्या होगा? कोई दीवाल न होगी, कोई सीमा न होगी, मन निराकार हो जाएगा। कहीं किसी किनारे पर भी फिर मन को बांधने वाली कोई चीज न होगी। शब्द बांध रहे हैं। जितना ज्यादा शब्द बांध लेते हैं, उतना ही मन छोटा हो जाता है। जितने शब्द छूट जाते हैं, उतना ही मन बड़ा हो जाता है।

शब्दों को विदा करना है। पहली बात जो मैंने कही वह यह कि शब्द दीवाल हैं, कारागृह हैं, यह बोध होना चाहिए। दूसरी बात, इन शब्दों को विदा करना है, तो संग्रह करना बंद कर देना चाहिए। लेकिन हम तो सुबह से सांझ तक शब्दों का संग्रह करते हैं। सुबह उठते से ही हम अखबार की खोज करते हैं। फिर रेडियो को सुनते हैं। फिर मित्रों से बात करते हैं। फिर दिन भर है, फिर सांझ है और शब्द इकट्ठे हो रहे हैं। और कभी हम इस बात का खयाल नहीं रखते कि ये शब्द इकट्ठे करके आखिर में हम क्या करेंगे? ये सारे शब्द इकट्ठे हो जाएंगे। काम के, बेकाम; अर्थ के, अनर्थ, सब इकट्ठे हो जाएंगे। फिर मन उनसे क्या करेगा? लेकिन शब्दों को जितना हम इकट्ठा कर लेते हैं, एक तरह का पावर, एक तरह की ताकत हमको मिलती हुई मालूम पड़ती है। क्योंकि जो आदमी शब्दों के साथ खेलने में जितना कुशल हो जाता है, वह आदमी उतना ही लोगों पर प्रभावी हो जाता है। लोगों के ऊपर प्रभाव हो जाता है उसका। जितना शब्दों के साथ खेलने में उसकी कुशलता बढ़ जाती है, वह लोगों के साथ उतना ही कुशल हो जाता है। जितना शब्दों में कमजोर होता है, उतनी उसकी लोगों के साथ जीवन-कुशलता कम हो जाती है। शब्द कुशलता बढ़ाते हुए मालूम पड़ते हैं।

यह बात सच है। शब्द निश्चित ही कुशलता बढ़ाते हैं। जीवन के व्यवहार में एक इफिशिएंसी, एक कुशलता पैदा करते हैं। लेकिन शब्द भीतर इकट्ठे होते जाते हैं, और विचार इकट्ठे होते जाते हैं, और भीतर धूल इकट्ठी होती जाती है, कचरा इकट्ठा होता जाता है। और वे सब इतने ज्यादा भीतर इकट्ठे हो जाते हैं कि उनमें बंद मन फिर किसी तरह की उड़ान लेने में समर्थ नहीं रह जाता।

शब्दों का व्यवहार करें। शब्दों की कुशलता उपयोगी है, लेकिन शब्दों के गुलाम न बन जाएं। कोई शब्द आपको पकड़ने वाला न हो जाए। शब्द आपके हाथ के साधन हों, शब्द जीवन के साध्य न बन जाएं। इसका स्मरण रहे निरंतर, शब्द जीवन के लिए, बोलने के लिए, संबंधित होने के लिए जरूरी हैं लेकिन शब्द भीतर जंजीरें नहीं बन जाने चाहिए।

यह अगर निरंतर स्मरण हो, तो हम व्यर्थ के शब्द भी इकट्ठे नहीं करेंगे और जिन शब्दों को इकट्ठा करेंगे, उनको भी हम अपनी जंजीरें न बनने देंगे। वे हमारे प्राणों के ऊपर पत्थर बन कर नहीं बैठ जाएंगे। हम उन्हें किन्हीं भी क्षण हटा दे सकते हैं। उनके साथ हमारा कोई मोह, कोई लगाव पैदा नहीं हो जाएगा। लेकिन अभी तो अगर हम एक शब्द भी आपको हटाने को कहें, तो इतना मोह और इतना लगाव मालूम होगा कि उसे कैसे हटा सकते हैं? अगर मैं आपसे कहूं कि आप इतनी हिम्मत करें कि मैं हिंदू शब्द को हटा दूं अपने मन से, तो आप कहेंगे, यह कैसे हो सकता है? क्योंकि इस शब्द को हटाऊंगा, तो फिर मैं, मैं क्या रह जाऊंगा? वह हिंदू होना जैसे हमारी संपत्ति और हमारी आत्मा है, जैसे उसे हम हटा नहीं सकते। यहूदी होने को नहीं हटा सकते हैं। मुसलमान होने को नहीं हटा सकते हैं। वह शब्द हमारे प्राणों पर बैठा है।

अभी एक गांव में मैं था। उस गांव के मुसलमान नवाब की पत्नी मुझसे मिलने आई और उसने मुझसे कहा: आपकी बातें तो मुझे ठीक मालूम पड़ीं, लेकिन तीन रात मैं सो नहीं सकी। मैंने बहुत कोशिश की कि इस मुसलमान होने की बात को हटा दूं, लेकिन इसे हटाना ऐसा लगता है जैसे कोई अपने प्राणों को अलग कर रहा हो।

शब्द अगर इस भांति मन को पकड़ते हों, तो गुलामी पैदा होती है, तो एक स्लेवरी पैदा होती है। तो शब्दों के साथ मोह नहीं होना चाहिए। उनका उपयोग होना चाहिए, जैसे आदमी वस्त्रों का उपयोग करता है। शब्द वस्त्र से ज्यादा नहीं होने चाहिए। उनके साथ कोई मोह, कोई लगाव, कोई आसक्ति, उनके साथ प्राणों का कोई गहरा संबंध बनाना एक गुलामी को निर्मित करना है। और जब यह गुलामी निर्मित हो जाए, तो फिर हम अपने ही हाथ से पैदा किए हुए जाल में फंस जाते हैं, जिसके बाहर निकलना कठिन हो जाता है। मैंने उस महिला को कहा कि अगर तुम्हारी इतनी भी सामर्थ्य नहीं है कि तुम एक शब्द को अपने से मुक्त कर सको, तो फिर क्या तुम सोचती हो कि यह मन जो इतना कमजोर और गुलाम है, क्या यह मन ईश्वर को जान सकेगा? जिसकी इतनी साहस और इतनी हिम्मत और इतना सा साहस नहीं है कि एक शब्द से छुटकारा पा सके। यह और किस चीज से छुटकारा पा सकेगा?

यह स्मरण रखना जरूरी है कि ये शब्द आते हैं, जाते हैं। इनके साथ कोई प्राणों का संबंध बांध लेना ठीक नहीं। तब चित्त एक निरंतर सतत मुक्ति की अवस्था में, सतत प्रवाह की

अवस्था में हो सकता है। उत्तर पकड़ लिए जाते हैं। फिर उन उत्तरों के लिए हम मोहाविष्ट हो जाते हैं कि यही सत्य होना चाहिए। सत्य को बिना जाने मोहाविष्ट हो जाना कि यही सत्य होना चाहिए, बहुत खतरनाक है, गुलामी है। स्वतंत्रता चाहिए चित्त की। तभी तो चित्त शांत भी हो सकेगा, नहीं तो नहीं हो सकेगा। गुलाम चित्त कैसे शांत हो सकता है? गुलाम चित्त कमजोर चित्त है। यह स्मरण, यह प्रतीति, यह बोध कि शब्द जो मैं इकट्ठे कर रहा हूं वे मेरी गुलामी तो नहीं बन रहे हैं? यह निरंतर अगर खयाल हो, तो कोई कारण नहीं है कि कोई शब्द हमारी गुलामी बन जाए और कोई शब्द बाधा बन जाए।

निरंतर आपने देखा होगा। अगर हम किसी से कुछ बात करते हैं और विवाद करते हैं, तो विवाद सत्य के लिए नहीं होता, निरंतर शब्दों के लिए होता है। हम एक शब्द पकड़ लेते हैं, दूसरा आदमी दूसरा शब्द पकड़ लेता है और हम विवाद में पड़ जाते हैं। इसीलिए तो किसी विवाद, किसी आर्ग्युमेंट से कभी कोई निष्पत्ति नहीं निकलती, कोई कनक्लूजन नहीं निकलता। अगर शब्दों की पकड़ न हो, तो दो आदमी जो विवाद करेंगे और विचार करेंगे, वह विचार उन्हें कहीं ले जाएगा। किसी निष्पत्ति पर, किसी निष्कर्ष पर, किसी समाधान पर। लेकिन हम सब शब्दों को पकड़ लेते हैं। मेरा शब्द महत्वपूर्ण हो जाता है आपके शब्द से, क्योंकि वह मेरा है। और जो आपका है, वह आपका है। और जब हम विवाद करते हैं, तो यह सवाल नहीं होता कि सत्य क्या है, सवाल यह होता है कि मेरा क्या है? जो शब्द मेरा है वह जीतना चाहिए, क्योंकि उसकी जीत में मेरे अहंकार की जीत है।

शब्दों की जो गुलामी है, वह मेरे शब्दों के कारण पैदा होती है। जो शब्द मेरे हैं, उनका मैं गुलाम हो जाता हूं। कोई शब्द किसी का नहीं है। अगर गुलामी से मुक्त होना है, तो यह जानना चाहिए, शब्द कोई भी मेरा नहीं है। और तब चित्त अनप्रिज्युडिस्ड, निष्पक्ष हो जाएगा। तब किसी शब्द के लिए कोई लड़ाई नहीं है। तब हम किसी भी शब्द के लिए निष्पक्ष विचार करने को तत्पर हैं, उत्सुक हैं, खोज के लिए तैयार हैं। तो शायद इस दुनिया में फिर कोई विवाद न हो, अगर लोग शब्दों के साथ मेरे होने का मोह छोड़ें।

कौनसा शब्द आपका है? सिवाय इसके कि एक शब्द बचपन से आपके कान में बार-बार दोहराया गया है, और आपका उसमें क्या है? कौनसा शब्द आपका है? कौनसा सिद्धांत आपका है? कौनसा विचार आपका है? कोई भी तो आपका नहीं है। कोई भी विचार बार-बार दोहरा दिया जाए आपके मन में, वह आपको लगने लगेगा मेरा है। जो लोग बहुत कुशल होते हैं दूसरे लोगों को समझाने में, जीतने में, वे हमेशा एक तरकीब का उपयोग करते रहे हैं।

अब्राहिम लिंकन से एक बार उसके किसी मित्र ने पूछा कि आप हमेशा विवाद करने में विजयी क्यों हो जाते हैं? उसने कहा: मैं दूसरे आदमी को इस भांति का विश्वास दिलाने की

कोशिश करता हूं कि जो मेरी मर्जी है, वह उसकी ही मर्जी है। जो बात मुझे उसे मनवानी होती है, जिस बात के लिए मुझे उसे कनविंस करवाना होता है, मैं इस भांति की कोशिश करता हूं जैसे कि वह उसकी ही मर्जी है। और जैसे ही उसे यह खयाल पकड़ जाता है कि यह उसकी मर्जी है, मैं जीत जाता हूं, वह हार जाता है। हालांकि उसे लगता है कि वह जीता।
अब्राहिम लिंकन ने कहा कि मेरा एक मित्र एक मामले में बिलकुल जिद्द पकड़े हुए था। मैंने आठ-दस दिन के लिए बात उस संबंध में करनी बंद कर ली। एक दिन रास्ते में चलते हुए मैंने उससे कहा कि मुझे ऐसा खयाल आता है, एक दिन तुमने ऐसी कोई बात कही थी--वह बात वही थी जो मुझे मनवानी थी, और यह बात बिलकुल झूठ थी कि उसने कभी मुझसे उस बात को कहा हो--लेकिन मैंने उससे कहा कि मुझे खयाल आता है कि कभी तुमने ऐसी कोई बात मुझसे कही थी। उसने कहाः मुझे तो खयाल नहीं आता। लेकिन मैंने उसे खयाल दिलाने की कोशिश की कि एक दिन बातचीत के दौर में तुमने ऐसा कुछ कहा था। और वह धीरे-धीरे सहमत हुआ और राजी हो गया। उस बात पर राजी हो गया जिस पर आठ दिन पहले वह विवाद करने को तैयार था। कौनसी कमजोरी इस लिंकन ने उस आदमी की पकड़ ली? एक कमजोरी पकड़ ली, उसे यह खयाल आ जाए कि यह बात मेरी है, तो बात पूरी हो गई।

दुनिया में जो बड़े नेता हैं, वे जनता को यह विश्वास दिलाया करते हैं कि आप जो कहते हो वही हम कह रहे हैं। जो आपकी मर्जी, वही हमारा विचार है। और लोग ऐसी मूर्खतापूर्ण बातों के लिए भी राजी हो जाते हैं जिनका कोई हिसाब नहीं। एक दफा उन्हें विश्वास आ जाए कि वह विचार उनका है, मेरा है। बस फिर, फिर कुछ भी करवाया जा सकता है। हिंदू धर्म मेरा है, तो फिर मेरी हत्या करवाई जा सकती है। मुसलमान धर्म मेरा है, तो फिर मैं अपनी गर्दन कटवा सकता हूं। वह जो मेरा है, वह बहुत बलवान है और वह मेरे मन को पकड़ लेता है।

यह जो शब्द और विचारों की सारी गुलामी है, यह मेरे की वजह से पैदा हुई है। इसको अगर तोड़ना है, तो एक बात जान लेनी है, कोई शब्द मेरा नहीं है, कोई विचार मेरा नहीं है। सब विचार उधार हैं और सब विचार किसी खास तरह के प्रोपेगेंडा का परिणाम हैं। मैं हिंदू घर में पैदा हुआ हूं, तो हिंदू प्रोपेगेंडा के भीतर पला हूं। बचपन से मुझे कहा गया है कि कृष्ण जो हैं भगवान हैं, और गीता जो है भगवान की किताब है। मुझे बचपन से यह बात कही गई है। मैंने बार-बार इसे सुना है। धीरे-धीरे मुझे यह अहसास आ गया है कि यह मेरा खयाल है कि कृष्ण जो हैं भगवान हैं, गीता जो है भगवान की किताब है। यह मेरा खयाल है। यह बीस-पच्चीस वर्ष, पचास वर्ष तक निरंतर दोहराने का परिणाम है कि मुझे लगता है यह मेरा खयाल है। इसमें मेरा क्या है? अगर मुझे मुसलमान घर में रखा गया होता, तो मेरा खयाल यह होता कि कुरान जो है वह भगवान की किताब है। और अगर मुझे ईसाई घर में रखा गया होता, तो मेरा खयाल यह होता कि बाइबिल जो है वह ईश्वर की किताब है।

बचपन से जो प्रोपेगेंडा है, प्रचार है, उसका परिणाम है कि लगता है कि ये मेरे शब्द, यह मेरा धर्म है, यह मेरा देश, यह मेरी जाति, ये शब्द मेरे हैं और वे शब्द मेरे नहीं हैं। फिर गुलामी खड़ी हो जाती है। आज तक हम बच्चों के मन गुलाम बनाते रहे हैं। एक अच्छी दुनिया पैदा नहीं हो सकी, क्योंकि मां-बाप ने निरंतर यह कोशिश की है कि जिस गुलामी में वे कैद हैं, उनका बच्चा उस गुलामी के बाहर न हो जाए, वह भी उसी कारागृह में बड़ा हो। हर बाप, हर मां की यह कोशिश रही है आज तक कि जिस गुलामी में वे हैं, बच्चा उस गुलामी के बाहर न हो जाए।

शायद एक डर था इसमें और वह केवल यह था कि अगर वह मेरी गुलामी से बाहर हुआ, तो वह किसी दूसरे की गुलामी में पड़ जाएगा। अगर वह हिंदू घेरे के बाहर हुआ तो पता नहीं मुसलमान हो जाए, ईसाई हो जाए। इसके पहले कि वह ईसाई या मुसलमान हो, उसे हिंदू बना देना जरूरी है। और दुनिया में जितने धर्म हैं, वे चूंकि सभी एक न एक तरह की गुलामियां हैं। इसलिए हर बाप परेशान है और डरा हुआ है कि मेरा बच्चा कहीं इस गुलामी को छोड़ कर उस गुलामी में न चला जाए। क्योंकि अपनी गुलामी फिर भी अपनी है, पराई तो नहीं है। अपनी अकेली नहीं है, बाप-दादाओं से, हजारों वर्षों से है, परंपरागत है। जो अपनी है, वह गुलामी हो, तो भी अच्छी मालूम पड़ती है। इस वजह से आज तक दुनिया में स्वतंत्र मन पैदा नहीं हो सका। इस वजह से अब तक हम स्वतंत्र मनुष्य को जन्म नहीं दे पाए। और गुलाम मनुष्य की जो तकलीफें हैं वे हम सबको झेलनी पड़ रही हैं और हम झेलते रहेंगे। लेकिन क्या यह हमेशा ही चलाए जाइएगा? क्या कोई रास्ता नहीं खोजना है कि बदलाहट हो सके? क्या कोई फिक्र नहीं करनी है कि क्रांति आ सके और हम स्वतंत्र मनुष्य को जन्म दे सकें?

लेकिन आप अपने बच्चों के लिए स्वतंत्रता के मार्गद्रष्टा तभी हो सकेंगे, जब आप स्वतंत्र हो जाएं। और स्वतंत्र होने के लिए जरूरी है पहली बात, अपने मन से यह खयाल अलग कर दें कि कोई विचार मेरा है। यह मेरे का खयाल टूट जाए और आप पाएंगे, आप एकदम निष्पक्ष हो गए, एकदम मुक्त हो गए, सारी जंजीरें जैसे टूट गईं, सारी प्रिज्युडिस, सारे पक्ष गिर गए। और अगर आप अपने बच्चों को भी इस निष्पक्ष चित्तता में विकसित कर सकें और उन्हें समझा सकें कि जो तुमने नहीं जाना है, वह तुम्हारा नहीं है। चाहे मैं कहूं, चाहे कोई भी कहे, चाहे हजारों साल की परंपरा कहे, लेकिन तुम किसी शब्द के और सिद्धांत के गुलाम मत हो जाना। तुम खोजना, तुम खुद खोज करना, तुम इंक्वायरी करना, अपने मन को ताजा रखना हमेशा खोजने के लिए। तो शायद बच्चे आने वाली दुनिया में एक स्वतंत्र मनुष्य की जाति को जन्म देने में समर्थ हो जाएं।

लेकिन उसके पहले उन सारे लोगों को स्वतंत्र होना होगा--हम सारे लोगों को, मुझे, आपको। दूसरी बात है, मेरे का खयाल छोड़ देना आवश्यक है। और तीसरी बात, पहली बात तो यह बोध कि शब्द कारागृह हैं, दूसरी बात कि शब्द मेरे नहीं हैं और तीसरी बात, शब्द के साक्षी होने की सामर्थ्य पैदा करनी चाहिए, विटनेस होने की सामर्थ्य पैदा करनी चाहिए। मन में शब्द घूम रहे हैं, घूम रहे हैं। थोड़ी देर को कभी एकांत में बैठ कर केवल उनके साक्षी हो जाना चाहिए। जैसे रास्ता चल रहा हो और लोग निकल रहे हों और कोई बैठ जाए और सिर्फ साक्षी हो जाए और लोगों को निकलने दे। ऐसे ही विचार को भी निकलने देना चाहिए, शब्द को भी निकलने देना चाहिए और दूर खड़े होकर देखना चाहिए।

क्या होगा दूर खड़े होकर देखने से? जैसे ही दूर खड़े होकर कोई शब्दों के जुलूस को देखेगा, एक प्रोसेशन है जो चल रहा है पूरे वक्त मन में, दूर खड़े होकर जो भी शब्दों के इस प्रोसेशन को, इस जुलूस को देखेगा, उसे एक बात तो यह पता चलेगी कि मैं अलग हूं और शब्द अलग हैं। और दूसरी बात उसे यह पता चलेगी एक शब्द के जाने और दूसरे के आने के बीच में इंटरवल है, अंतराल है, खाली जगह है। हर दो शब्दों के बीच में थोड़ा गैप है। जो व्यक्ति अपने भीतर थोड़ा दूर खड़े होकर शब्दों की चलती हुई धारा को देखेगा, उसे दो बातें दिखाई पड़ेंगी। पहली, शब्द अलग हैं, मैं अलग हूं। दूसरी बात, हर शब्द के जाने और दूसरे के आने के बीच में गैप है, खाली जगह है। उसी खाली जगह में साइलेंस का अनुभव होगा। शब्दों के बीच खाली जगह है।

हम यहां इतने लोग बैठे हैं, अगर कोई हवाई जहाज से देखे, तो उसे हमारे बीच में खाली जगह दिखाई नहीं पड़ेगी। लेकिन वह धीरे-धीरे करीब आए। एक जंगल को आप हवाई जहाज से देखें तो दरख्तों के बीच खाली जगह दिखाई नहीं पड़ेगी। नीचे आएं, तो धीरे-धीरे एक दरख्त और दूसरे दरख्त के बीच में खाली जगह का पता चलेगा।

अभी आप यहां बैठे हैं, मैं इतने दूर से देखता हूं, आपके बीच की खाली जगह मुझे पता नहीं चलती। लेकिन आपके करीब आऊं, तो आपके पास खाली जगह है। अगर खाली जगह न हो, तो आप बैठ ही नहीं सकते थे। दो आदमियों के बीच खाली जगह जरूरी है। दो शब्दों के बीच भी खाली जगह है। नहीं तो एक शब्द दूसरे शब्द के ऊपर चढ़ जाएगा। मैं अभी बोल रहा हूं, कितने हजारों शब्द बोले। हर शब्द और दूसरे शब्द के बीच में खाली जगह है, नहीं तो आप कुछ समझ नहीं सकेंगे।

हमारे मन के भीतर भी जो विचार चल रहे हैं, शब्द और शब्द के बीच में खाली जगह है। लेकिन हमने कभी ठहर कर इसे देखा नहीं। हम इसे ठहर कर देखेंगे निकट जाकर, तो ये इंटरवल्स हमें दिखाई पड़ेंगे। और ये जो इंटरवल्स हैं, ये जो शब्दों के बीच में खाली जगह हैं, वहीं से आपको पहली दफे साइलेंस का अनुभव होगा, शांति का अनुभव होगा, मौन का

अनुभव होगा। और जैसे ही आपको शांति का अनुभव होगा, वैसे ही आपको पता चलेगा, शब्दों में कारागृह था, शांति में मुक्ति है। शब्दों में जेल थी, शांति में स्वतंत्रता है। यह आपको पता चलेगा। यह मेरे कहने से पता नहीं चल सकता। यह किसी और के कहने से पता नहीं चल सकता। यह तो उस शांति का जैसे ही अनुभव होगा, जैसे शब्दों के बीच में खाली जगह मिलेगी और आप उसमें डूब जाएंगे तो आप पाएंगे, शब्द बंधन हैं, शून्य स्वतंत्रता है; शब्द कारागृह हैं, शून्य मोक्ष है। और एक बार भी इस साइलेंस का अहसास शुरू हो जाए, तो कोई भी आदमी शब्दों से भरा न रहना चाहेगा।

एक बच्चा पत्थर बीन रहा हो नदी के किनारे और उसे कोई हीरे-जवाहरात देने वाला मिल जाए, तो वह पत्थर फेंक देगा और हीरे-जवाहरात पकड़ लेगा। आपको पता ही नहीं है कि साइलेंस क्या है, इसीलिए शब्दों से उलझे हुए हैं और परेशान हैं। एक बार पता चल जाए, एक बार यह पता चल जाए कि क्या है शांति? क्या है मौन? तो फिर आप शब्दों को पकड़ने वाले न रह जाएंगे। उसी दिन से आपकी जिंदगी में क्रांति हो जाएगी। आप दूसरे आदमी हो जाएंगे। लेकिन पता ही नहीं है। और कठिनाई यह है कि कोई दूसरा आपको बता नहीं सकता। खुद ही जानना होगा, खुद ही पहुंचना होगा।

तीन सूत्र मैंने आपसे कहे। पहली बात, शब्द कारागृह हैं, इसका अनुभव। दूसरी बात, शब्द मेरे नहीं हैं, इसका अनुभव। तीसरी बात, शब्दों के बीच में खाली जगह है, इसका अनुभव। यह तीसरी बात सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। पहली दो बातें उसकी भूमिका है, तीसरी बात महत्वपूर्ण है।

थोड़ी देर कभी रात बिस्तर पर पड़े हुए शब्दों के साक्षी मात्र रह जाएं। मन में चल रही हैं उनकी धाराएं, चुपचाप आंख बंद करके अंधेरे में उनको देखते रहें--क्या हो रहा है? कौन से विचार चल रहे हैं? उन्हें जाने दें, रोकना नहीं है, छेड़ना नहीं है, चलने दें, सिर्फ देखें। दूर जैसे खड़े हैं और देख रहे हैं। अपने आप बीच की खाली जगह दिखाई पड़नी शुरू हो जाएगी। और रोज-रोज जितना यह साक्षी होने का क्रम गहरा होगा, खाली जगह बड़ी होती जाएगी। जैसे-जैसे आप देखने में समर्थ हो जाएंगे अपने भीतर, उतने-उतने बड़े गैप्स, उतनी-उतनी खाली जगह पैदा हो जाएगी। एक क्षण आएगा शब्द नहीं होगा, फिर शब्द आएगा, धीरे-धीरे कई क्षण बीत जाएंगे शब्द नहीं होंगे। धीरे-धीरे वक्त आएगा, घड़ियां बीत जाएंगी और शब्द नहीं होंगे। और जब शब्द नहीं होंगे तो कौन होगा? क्या होगा? जब शब्द नहीं होंगे तो मन की सारी क्षुद्रता टूट जाएगी, सारी दीवालें टूट जाएंगी। रह जाएगा मन, जिसकी कोई सीमा नहीं है। उसी मन का नाम आत्मा है जिसकी कोई सीमा नहीं है। रह जाएगा मन, जिस पर कोई दीवाल नहीं है। उसी मन का नाम परमात्मा है जिसकी कोई दीवाल नहीं है। रह जाएगा एक विराट चैतन्य, जो मुझमें सीमित नहीं है, जो सबमें व्याप्त है और सबमें फैला हुआ है। उसकी जो प्रतीति है वही आनंद है, वही सत्य है, वही अमृत है।

अतंर की खोज

एक छोटी सी कहानी और मैं अपनी चर्चा को पूरा करूंगा।

एक बहुत पुराने देश में और बहुत पुराने दिनों में एक राजा ने एक अदभुत दान उस देश के सौ ब्राह्मणों को दिया था। उसने कहा था कि मेरे पास एक बड़ी भूमि है, तुम इस भूमि में से जितनी घेर लोगे तुम्हारी हो जाएगी। बहुमूल्य भूमि थी, राजा ने अपने जन्म-दिन के उत्सव में देश के सौ बड़े ब्राह्मणों को बांट देनी चाही थी। वे ब्राह्मण तो खुशी से नाच उठे। एक ही शर्त थी, जो जितनी उस जमीन को घेर लेगा, जितनी बड़ी दीवाल बना लेगा जमीन पर, वह जमीन उसकी हो जाएगी। अब सवाल यही था कि कौन कितनी बड़ी बना ले? ब्राह्मणों ने अपने घर-द्वार बेच दिए, अपने कपड़े भी बेच दिए, एक-एक लंगोटियां भर बचा लीं, क्योंकि सस्ते में बहुत बहुमूल्य जमीन मिलती थी। और उन्होंने दीवालें बनाईं। और जितनी जो जमीन घेर सकता था उसने घेर ली। इस घेरने में एक और आकर्षण था, राजा ने यह भी कहा था कि जो सबसे ज्यादा जमीन घेरेगा उसे मैं राजगुरु बना दूंगा।

तो एक तो जमीन घेरने का फायदा था, बहुमूल्य जमीन मुफ्त, सिर्फ घेरने के मूल्य पर मिलती थी। और दूसरा, सबसे ज्यादा घिर जाए तो राजा के राजगुरु होने का भी सौभाग्य मिलता था।

छह महीने का वक्त दिया था। फिर छह महीने के बाद राजा गया और उन ब्राह्मणों से कहा: मैं खुश हूं कि तुमने काफी जमीनें घेरी हैं, अब मैं पूछने आया हूं कि सबसे ज्यादा जमीन का घेरा किसका है?

एक ब्राह्मण खड़ा हुआ और उसने कहा कि इसके पहले कि कोई कुछ कहे, मैं दावा करता हूं कि मेरा ही घेरा सबसे बड़ा है।

सारे ब्राह्मण हंसने लगे, राजा भी हंसा, क्योंकि वह गांव का दरिद्रतम ब्राह्मण था और किसी को भी यह आशा नहीं थी कि उसने बड़ा घेरा बनाया होगा। और ब्राह्मणों को तो भलीभांति पता था कि उसने छोटा सा घेरा बनाया है, कुछ थोड़ी सी लकड़ी-वगैरह लगा कर, थोड़ी सी जमीन घेरी है। लेकिन जब दावा किया गया था तो निरीक्षण के लिए राजा को जाना पड़ा। वे सौ ब्राह्मण भी गए। वहां जाकर, पहले ही सबको शक हुआ था कि मालूम होता है उसका दिमाग खराब हो गया है। क्योंकि लोगों ने तो मीलों लंबे जमीन के टुकड़े घेर लिए थे। वहां जाकर तो निश्चय हो गया कि वह पागल हो गया है। उसने थोड़ा सा जमीन का टुकड़ा घेरा था, कुछ लकड़ियां बांधी थीं, लेकिन रात, मालूम होता था उसमें भी उसने आग लगा दी थी। अब वहां कोई घेरा नहीं था। सारी लकड़ियां जली हुई पड़ी थीं। राजा ने कहा: मैं समझ नहीं पा रहा, आपकी दीवाल कहां है?

उस ब्राह्मण ने कहा: मैंने दीवाल बनाई थी, मैंने लकड़ियां लगाई थीं, लेकिन फिर रात मुझे खयाल आया कि चाहे मैं कितनी ही बड़ी जमीन घेर लूं, जो जमीन घिरी हुई है वह छोटी ही होगी, बड़ी नहीं हो सकती। आखिर जो चीज घिरी है वह छोटी ही होगी, बड़ी नहीं हो सकती। तो रात मैंने अपने घेरे में आग लगा दी। अब मेरी जमीन पर कोई घेरा नहीं है। इसलिए मैं दावा करता हूं कि मैंने सर्वाधिक जमीन घेरी है। कोई घेरा नहीं मेरी जमीन पर।
राजा उसके पैरों पर गिर पड़ा और उसने कहा: तुम अकेले ही ब्राह्मण हो, बाकी सभी वैश्य हैं। वे निन्यानबे लोगों ने जमीन घेरी है, गणित का हिसाब रखा है, नाप-जोख की है। तुम अकेले आदमी ब्राह्मण हो। तुम्हारा जो घेरा था वह भी तुमने तोड़ दिया। जिसका कोई घेरा नहीं है वही तो ब्रह्म को जान पाता है, वही तो ब्राह्मण हो जाता है।

वह ब्राह्मण राजगुरु बना दिया गया। उसने एक अदभुत साहस किया, घेरा तोड़ देने का साहस। और घेरा तोड़ते ही सब कुछ उसका हो गया।

यह कहानी अंत में इसलिए कह रहा हूं, मन पर घेरे हैं और मन के घेरे को जो तोड़ देगा वह ब्रह्म को जान लेता है। मन के नाप-जोख हैं, इंच-इंच, फीट-फीट बना कर हमने दीवाल खड़ी की है, उसी दीवाल में हम जिंदा रहने के आदी हो गए हैं, उसी से हम पीड़ित और परेशान हैं, और उसी के कारण हम क्षुद्र हो गए हैं। और विराट, जो कि निरंतर मौजूद है परमात्मा, उससे हमारा कोई संबंध नहीं रह गया है। उससे संबंध हो सकता है। लेकिन जो उस ब्राह्मण ने किया था उस रात, किसी रात आपको भी वही करना पड़ेगा। उसने जो घेरा बनाया था, आग लगा दी थी। जिस दिन, जिस रात आप भी अपने घेरे में आग लगाने को राजी हो जाएंगे, उस दिन परमात्मा और आपके बीच फिर कोई दीवाल नहीं और कोई रोकने वाला नहीं। और उस सत्य को जान कर ही--जो ऐसा घेरे से मुक्त मन जान पाता है--जान सकेंगे जीवन के आनंद को, जीवन के सौंदर्य को, जीवन के प्रेम को, उसके पहले सब दुख है और सब नरक है। उसके पहले सब अंधकार है। उसके पहले सब पीड़ा और मृत्यु है। उसके बाद न पीड़ा है, न मृत्यु; उसके बाद न दुख है, न दैन्य; उसके बाद जो भी है वह परम आनंद है और परम शांति है। उसे जान लेना ही, उसे पा लेना ही जीवन का लक्ष्य है। और जो उसे पाने से वंचित रह जाता है उसका जीवन व्यर्थ ही चला जाता है। वह कंकड़-पत्थर बीनने में गंवा देता है और हीरे-जवाहरातों के ढेर उसके निकट थे उनको नहीं देख पाता। वह मिट्टी को बांधने में गंवा देता है, सोने की खदानें उसके पास थीं, उनको नहीं देख पाता। वह क्षुद्र को कमाने में विराट की संपदा को पाने से वंचित रह जाता है।

आज की संध्या थोड़ी सी बात मैंने आपसे कही, शब्द के घेरों और दीवाल से मुक्त हो जाने की। इस संदर्भ में बहुत प्रश्न उठे होंगे, क्योंकि जिसको प्रश्न न उठे हों, वह तो आज की रात ही अपने घेरे में आग लगाने में समर्थ हो सकता है। लेकिन नहीं, प्रश्न उठे होंगे। मैं जब बोलता था तब आपके भीतर बहुत से शब्द चल रहे होंगे। तो उन प्रश्नों के, उन प्रश्नों की

हत्या के लिए कल का समय निश्चित है। तो जो-जो प्रश्न उठे हों, वे कल पूछे जा सकते हैं। इस खयाल से नहीं कि मैं उनके उत्तर दूंगा, बल्कि इस खयाल से कि उनकी हत्या में आपका सहयोगी हो सकूं। उत्तर देने वाला मैं कौन हूं? और मेरा तो कहना ही यह है कि उत्तर इकट्ठे मत करना। फिर भी कल इस संबंध में जो भी पूछने का खयाल आया हो उसकी बात करूंगा।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना। तो यह आशा करता हूं कि किसी न किसी दिन वह अदभुत क्षण आपके जीवन में उतरेगा, जब आप अपनी क्षुद्रता को तोड़ने में समर्थ हो जाएंगे। जिस दिन अपनी क्षुद्रता को तोड़ लेंगे मन की, उसी दिन परमात्मा आपका है। वह परमात्मा तो भीतर मौजूद है, लेकिन हम उसे अपनी दीवाल के कारण अनुभव नहीं कर पाते। वह परमात्मा जो आपके भीतर कैद है उसके प्रति मैं प्रणाम करता हूं, अंत में मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

अंतर की खोजे

दूसरा प्रवचन

मनुष्य के मन पर शब्दों का भार है; और शब्दों का भार ही उसकी मानसिक गुलामी भी है। और जब तक शब्दों की दीवालों को तोड़ने में कोई समर्थ न हो, तब तक वह सत्य को भी न जान सकेगा, न आनंद को, न आत्मा को। इस संबंध में थोड़ी सी बातें कल मैंने आपसे कहीं।

सत्य की खोज में--और सत्य की खोज ही जीवन की खोज है--स्वतंत्रता सबसे पहली शर्त है। जिसका मन गुलाम है, वह और कहीं भला पहुंच जाए, परमात्मा तक पहुंचने की उसकी कोई संभावना नहीं है। जिन्होंने अपने चित्त को सारे बंधनों से स्वतंत्र किया है, केवल वे ही आत्माएं स्वयं को, सत्य को और सर्वात्मा को जानने में समर्थ हो पाती हैं।

ये थोड़ी सी बातें कल मैंने आपसे कहीं। उस संबंध में बहुत से प्रश्न मेरे पास आए हैं।

सबसे पहले एक मित्र ने पूछा है कि यदि हम शब्दों से मौन हो जाएं, मन हमारा शून्य हो जाए, तो फिर जीवन का, संसार का व्यवहार कैसे चलेगा?

हम सभी को यही भ्रांति है कि मन हमारे जितने बेचैन और अशांत हों, संसार का व्यवहार उतना ही अच्छा चलता है। यह हमारा पूछना वैसे ही है, जैसे बीमार लोग पूछें कि यदि हम स्वस्थ हो जाएं, तो संसार का व्यवहार कैसे चलेगा? पागल लोग पूछें कि हम यदि ठीक हो जाएं और हमारा पागलपन समाप्त हो जाए, तो संसार का व्यवहार कैसे चलेगा? बड़े मजे की बात यह है, अशांत चित्त के कारण संसार का व्यवहार नहीं चल रहा है, बल्कि संसार के चलने में जितनी बाधाएं हैं, जितने कष्ट हैं, संसार का जीवन जितना नरक है, वह अशांत चित्त के कारण है। यह जो संसार का व्यवहार चलता हुआ मालूम पड़ता है, इतने अशांत लोगों के साथ भी, यह बहुत आश्चर्यजनक है। शांत मन संसार के व्यवहार में बाधा नहीं है, बल्कि शांत मन इस संसार को ही स्वर्ग के व्यवहार में बदल लेने में समर्थ है। जितना शब्दों से मन शांत हो जाता है, उतनी ही जीवन में दृष्टि, अंतर्दृष्टि मिलनी शुरू हो जाती है। फिर भी हम चलेंगे, लेकिन वह चलना और तरह का होगा; फिर भी हम बोलेंगे, लेकिन वह बोलना और तरह का होगा; फिर भी हम उठेंगे, फिर भी जीवन का जो सामान्य क्रम है वह चलेगा, लेकिन उसमें एक क्रांति हो गई होगी।
भीतर मन यदि शांत हो गया हो, तो दो परिमाण होंगे। ऐसे मन से जो चर्या निकलेगी, जो जीवन निकलेगा, वह दूसरों में अशांति पैदा नहीं करेगा। और दूसरे लोगों के अशांत व्यवहार की प्रतिक्रिया में ऐसे चित्त में कोई अशांति पैदा नहीं होगी, बल्कि उस पर फेंके गए अंगारे भी उसके लिए फूल जैसे मालूम होंगे और वह खुद तो अंगारे फेंकने में असमर्थ हो जाएगा। संसार में इससे बाधा नहीं पड़ेगी, बल्कि संसार को हमने अपनी अशांति के द्वारा करीब-करीब नरक के जैसा बना लिया है, उसे स्वर्ग जैसा बनाने में जरूर सहायता मिल जाएगी। और चूंकि हम आज तक मनुष्य के मन को बहुत बड़े सामूहिक पैमाने पर शांति के मार्ग पर ले जाने में असमर्थ रहे हैं, इसीलिए हमें अपना स्वर्ग आकाश में बनाना पड़ा। यह जमीन पर हमारे अशांत मन के कारण हमें स्वर्ग आसमान में बनाना पड़ा। अगर मन शांत हो तो स्वर्ग को आकाश में बनाने की कोई जरूरत नहीं है, वह जमीन पर बन सकता है। स्वर्ग जब तक आकाश में रहेगा, तब तक इस बात को भलीभांति जानना चाहिए कि आदमी ठीक अर्थों में आदमी होने में समर्थ नहीं हो पाया। यदि वह ठीक अर्थों में आदमी हो जाए तो जमीन बुरी नहीं है और उस पर स्वर्ग बन सकता है। स्वर्ग का और क्या अर्थ है? जहां शांत लोग हों, वहां स्वर्ग है; जहां भले लोग हों, वहां स्वर्ग है।
सुकरात को उसके मरने के पहले कुछ मित्रों ने पूछा कि क्या तुम स्वर्ग जाना पसंद करोगे या नरक? तो सुकरात ने कहा: इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि मैं कहां भेजा जाता हूं, मैं जहां जाऊंगा वहां मैं स्वर्ग का अनुभव करने में समर्थ हूं। इससे कोई भेद नहीं पड़ता कि मैं कहां जाता हूं, मैं जहां जाऊंगा अपना स्वर्ग अपने साथ ले जाऊंगा। हर आदमी अपना स्वर्ग

या अपना नरक अपने साथ लिए हुए है। और वह उसी मात्रा में अपने साथ लिए हुए है, जिस मात्रा में उसका मन शांत हो जाता है, शब्दों की भीड़ से मुक्त हो जाता है, मौन हो जाता है। जितनी गहरी साइलेंस होती है, उतना ही उसके बाहर एक स्वर्ग का घेरा, एक स्वर्ग का वायुमंडल उसके आस-पास चलने लगता है। इसलिए यह हो सकता है कि एक ही साथ बैठे हुए लोग, एक ही जगह पर न हों; यह हो सकता है कि आपके पड़ोस में जो बैठा है व्यक्ति, वह स्वर्ग में हो और आप नरक में। यह इस बात पर निर्भर करेगा कि उसका मन कैसा है? उसके मन की आंतरिक दशा कैसी है? उस आंतरिक दशा पर ही बाहर का सारा जीवन, देखने का ढंग, अनुभूतियां सभी परिवर्तित हो जाती हैं।

हमारे ही बीच महावीर या बुद्ध या क्राइस्ट जैसे लोग हुए हैं, जो हमारे ही बीच थे, हमारी ही जमीन पर थे, लेकिन इसी जमीन पर उन्होंने उस आनंद को जाना जिसकी हमें कोई भी खबर नहीं है। कैसे? कौन से रास्ते से? कौन से मार्ग से? उनके पास शरीर हमारे जैसा ही था, उस शरीर पर बीमारियां भी होती थीं और उस शरीर को एक दिन मर भी जाना पड़ा। उनके पैर में भी कांटा चुभ जाता, तो खून बहता। और उनको भी गोली मार दी जाती, तो उनका शरीर समाप्त हो जाता। हड्डी और मांस हमारे ही जैसा था, भूख और प्यास हमारे ही जैसी थी, जिंदगी और मरण हमारे ही जैसा था। लेकिन फिर फर्क क्या था? फर्क था तो भीतर कोई फर्क था। भीतर मन और तरह का था। हमारा मन और तरह का है। मन शांत था, मन मौन था। इस मौन और शांति से भी उन्होंने जीवन को जीया और उस जीवन में से बहुत सी सुगंध पाई, बहुत सा संगीत पाया।

हम अशांति के द्वारा जीवन को जीते हैं और हम यह भी सोचते रहते हैं कि अगर हम शांत हो गए तो फिर जीवन कैसे चलेगा? जैसे जीवन अशांति से चल रहा हो। जीवन अशांति से चल नहीं रहा है, घिसट रहा है। जीवन अशांति से विकसित नहीं होता, केवल तड़पता है और परेशान होता है। और जीवन के व्यवहार का शांत हो जाने से कोई विरोध नहीं है। लेकिन शायद सैकड़ों वर्षों की शिक्षाओं ने हमारे मन में एक तरह का द्वंद्व, एक तरह का द्वैत पैदा कर दिया। सैकड़ों वर्षों से यह कहा जाता रहा है कि जिस व्यक्ति को शांत होना है उसे संसार छोड़ देना पड़ेगा। सैकड़ों वर्षों से यह बात समझाई गई है कि शांत होना, सत्य के मार्ग पर होना और संसार का व्यवहार, ये दोनों विरोधी बातें हैं।

मैं आपसे निवेदन करता हूं, यह बड़ी खतरनाक शिक्षा थी और इस शिक्षा के कारण ही जीवन धार्मिक नहीं हो पाया। इस शिक्षा के कारण ही जमीन आज भी अधार्मिक है। क्योंकि यह शिक्षा हमारे लिए एक एस्केप बन गई, एक पलायन बन गई, एक बचाव का रास्ता बन गई। हमने सोचा कि यदि संसार को चलाना है तो धर्म हमारे लिए नहीं है; और धर्म हमारे लिए उस दिन होगा जिस दिन हम संसार को छोड़ने को राजी होंगे। न हम संसार को छोड़ने को राजी होंगे और न धर्म से हमारा कोई संबंध होगा। धर्म से बचने के लिए हमने एक तरकीब खोज ली। यह शिक्षा, हमारे धर्म और हमारे बीच दूरी और फासला बन गई।

मैं आपसे निवेदन करता हूं, मन जितना स्वस्थ और शांत होगा, वह संसार का विरोधी नहीं होगा बल्कि संसार को ट्रांसफार्म करने में, संसार को नया जीवन देने में सहयोगी बनेगा। शांत आदमी संसार का शत्रु नहीं है बल्कि वही मित्र है। और जीवन का धर्म से कोई विरोध नहीं है और परमात्मा और संसार के बीच कोई दुश्मनी नहीं है। जीवन को ठीक से जीना ही परमात्मा को पाने का मार्ग है और धर्म या आंतरिक जीवन और शांति की खोज ठीक-ठीक अर्थों में हम कैसे जीएं, इस दिशा में हमारे पैरों को बढ़ाने की तरकीब और माध्यम और मार्ग है। इसलिए यह न सोचें कि मैंने कहाः मन शांत हो जाए, शब्दों से मुक्त हो जाए, तो आपका संसार और व्यवहार बिगड़ जाएगा। नहीं; वह अभी बिगड़ा हुआ है। अगर, अगर मन शांत हो सके, तो संसार में ही, इस सामान्य जीवनचर्या में ही, इस दैनंदिन जीवन में ही परमात्मा के दर्शन शुरू हो जाएंगे।

एक रात एक साध्वी एक गांव में मेहमान होना चाहती थी। लेकिन उस गांव के लोगों ने उसे ठहरने के लिए अपने दरवाजे न खोले। हर दरवाजे पर उसने प्रार्थना की कि आज की रात मैं यहां ठहर जाऊं, लेकिन द्वार बंद कर लिए गए--जैसा कि मैंने कल कहा--वह साध्वी, वह अकेली महिला उस रात उस गांव में शरण मांगती थी, लेकिन उस गांव के लोगों का धर्म दूसरा था और साध्वी का धर्म दूसरा। इसलिए शरण देना संभव नहीं हुआ। एक शब्द बाधा बन गया। साध्वी किन्हीं और विचारों को मानती थी और गांव के लोग किन्हीं और विचारों को मानते थे। उस साध्वी को ठहरने की जगह नहीं मिली। आखिर उस सर्द रात में उसे गांव के बाहर एक वृक्ष के नीचे ही सो जाना पड़ा। रात कोई बारह बजे होंगे, तब ठंडी हवाओं में उसकी नींद खुल गई। उसने आंखें खोलीं, तो ऊपर पूर्णिमा का चांद वृक्ष के ऊपर खड़ा है और वृक्ष में रात के फूल चटक-चटक कर खिल रहे हैं। और उसने पहली बार आकाश में इतने सुंदर चांद को देखा, इतने एकांत में, इतने अकेलेपन में। और उसने पहली बार जीवन में उस वृक्ष पर रात के फूलों को खिलते हुए सुना। छोटी-छोटी बदलियां आकाश में तैरती थीं। वह उठी और मौन उस रात के सौंदर्य को उसने जाना और पीया। और फिर आधी रात को ही वह गांव में वापस पहुंच गई और उसने उन लोगों के द्वार खटखटाए जिन्होंने सांझ उसे शरण देने से इनकार कर दिया था। अंधेरी रात, आधी रात में वे घर के लोग उठे और उन्होंने पूछा, कैसे आई हो? हम तो सांझ को तुम्हें इनकार कर चुके। उस साध्वी ने कहाः मैं धन्यवाद देने आई हूं। काश, तुमने मुझे अपने घर में ठहरा लिया होता तो आज रात मैंने जो सौंदर्य जाना है वह मैं कभी भी न जान पाती। तो मैं तुम्हें धन्यवाद देने आई हूं कि तुमने मुझ पर कृपा की कि रात अपने घर में मुझे न ठहरने दिया। अन्यथा तुम्हारी दीवालें बहुत छोटी थीं और मैं उसमें मेहमान भी हो जाती, तो आकाश को न देख पाती और उस चांद को न देख पाती और उन फूलों को न सुन पाती जो खिल रहे हैं। तो मैं धन्यवाद देने आई हूं तुम्हारे पूरे गांव को, तुमने मुझ पर जो कृपा की है वह बहुत बड़ी है।

यह साध्वी के, यह प्रतिक्रिया, आपमें होती? किसी दूसरे व्यक्ति में होती? असंभव है। दूसरा व्यक्ति तो इतने क्रोध से भर जाता, इतने वैमनस्य से, इतनी घृणा से, इतने अपशब्दों से

कि शायद उसे नींद भी न आती। और इतने अपशब्दों और क्रोध से भरे होने के कारण उसे चांद भी दिखाई न पड़ता। और अपने भीतर इतने शोरगुल की वजह से, उसे फूलों के खिलने की खबर भी न मिलती। वह रात तो वैसी ही आती, चांद भी निकलता, फूल भी खिलते, लेकिन वह क्रोध से भरा हुआ मन, वह अशांत मन उस सबको न देख पाता और उस गांव के प्रति सदा के लिए एक शत्रुता का भाव उसके मन में पैदा हो जाता।

हम सारे लोगों का मन भी संसार के प्रति जो इतनी शत्रुता से भर गया है, उसका कारण यह नहीं है कि संसार में चांद नहीं उगता और फूल नहीं खिलते; उसका यह कारण नहीं है कि संसार में सौंदर्य की कोई कमी है; उसका यह कारण नहीं है कि संसार में सत्य का कोई अभाव है; उसका यह भी कारण नहीं है कि संसार में चारों तरफ से परमात्मा की वर्षा नहीं हो रही है; या कि प्रकाश की किरणों ने आना बंद कर दिया है; या कि जीवन मृत हो गया है। नहीं; आज भी फूल खिलते हैं; आज भी चांद निकलता है; आज भी परमात्मा की रोशनी चौबीस घंटे वर्षा करती है; आज भी चारों तरफ उसकी ध्वनि उठती है। लेकिन हमारे पास वह मन नहीं है, जो उसे जान सके, देख सके और पहचान सके। उसे जानने और पहचानने के लिए चाहिए एक शांत, एक साइलेंट माइंड; तो चारों तरफ संसार दिखाई पड़ना बंद हो जाएगा।

मैं आपसे निवेदन करूं, संसार कहीं भी नहीं है, सिवाय हमारे अशांत मन के। संसार हमारे अशांत मन का प्रोजेक्शन है, हमारे अशांत मन की प्रतिछाया है। और अगर हमारा मन शांत हो जाए, तो संसार कहीं भी नहीं है। फिर जो शेष रह जाता है, वह परमात्मा है, संसार नहीं। दो चीजें नहीं हैं, संसार और परमात्मा, ऐसी दो चीजें कहीं भी नहीं है। ऐसी दो चीजें कभी भी नहीं रहीं। या तो संसार है या परमात्मा है। हम अशांत होते हैं, तो हमें जो अनुभव में आता है, वह संसार है और हम शांत हो जाते हैं, तो हमें जो अनुभव में आता है, वह परमात्मा है। परमात्मा और संसार जैसी दो चीजें नहीं हैं। दो तरह के मन हैं, शांत मन और अशांत मन। शांत मन न तो व्यवहार में बाधा है, न संसार में, बल्कि जैसे-जैसे भीतर शांति गहरी होती चली जाती है, बाहर सब कुछ परिवर्तित होने लगता है। एक दूसरे ही जगत का, एक दूसरे ही सत्य का आविर्भाव होने लगता है। कुछ और ही दिखाई पड़ने लगता है वहीं, जहां हमें पदार्थ के अतिरिक्त और कुछ भी कभी दिखाई नहीं पड़ा। कुछ और ही दिखाई पड़ने लगता है वहीं, जहां हमें शरीरों के अतिरिक्त और कभी कोई स्पर्श न हुआ। अपार्थिव का प्रारंभ हो जाता है, अशरीरी का बोध शुरू हो जाता है।

हमारे देखने और हमारे मन की गहरी क्षमता पर, हमारी रिसेप्टिविटी पर, हमारी ग्राहकता पर निर्भर करता है कि क्या हमें अनुभव हो...हम अशांत होंगे, तो निश्चय मानिए, बाहर जहां-जहां अशांति है उसके अतिरिक्त आपको और कुछ भी अनुभव नहीं होगा। आपका अशांत मन केवल अशांति को जानने में ही समर्थ है। समान के पास समान खिंचा हुआ चला आता है। जब भीतर अशांति होती है, तो चारों तरफ से अशांति हमारी तरफ चुंबक की तरह खिंचने लगती है। इसमें उस अशांति का कोई कसूर नहीं है। हमने जो अशांति का गड्ढा

बनाया हुआ है, वह अशांति को खींचने लगता है। और जब हमारे भीतर शांति होती है, तो चारों तरफ से शांति के झरने हमारी तरफ बहने शुरू हो जाते हैं। इसलिए इस जमीन पर जो आदमी जैसा होता है वैसा ही अनुभव कर लेता है। यह जमीन न तो बुरी है और न भली। यहां न स्वर्ग है और न नरक। न यहां अंधकार है और न प्रकाश। यहां तो हम जैसे होते हैं वैसे का ही हमें अनुभव हो जाता है, वैसे का ही हमें साक्षात हो जाता है। हम उसी से टकरा जाते हैं, जो हम हैं। प्रत्येक व्यक्ति केवल अपने को ही सुनता और अहसास करता है।

इसलिए यह न सोचें कि मन शांत हो जाएगा, तो सब बंद हो जाएगा। नहीं; मन शांत होगा, तो ही सबकी शुरुआत होगी। अभी तो करीब-करीब सब बंद है। अभी तो हमारे जानने की न कोई क्षमता है और न कोई विराट शक्ति है। अभी तो जानने वाला मन ही नहीं है। क्योंकि जानने की पहली शर्त है: शांत हो जाना। अनुभव करने की पहली शर्त है: शांत हो जाना। प्रेम को पाने की पहली शर्त है: शांत हो जाना। कोई अपने घर में द्वारों को बंद किए बैठा हो, तो सूरज बाहर खड़ा रहेगा; द्वारों पर आवाज नहीं करेगा, थपकी नहीं देगा, द्वार पर दस्तक नहीं देगा कि द्वार खोलो, सूरज बाहर प्रतीक्षा करेगा। और अगर हम द्वार बंद किए ही बैठे रहें, तो हम अपने हाथों अपने लिए अंधकार पैदा कर लेते हैं। परमात्मा भी निरंतर सबके द्वार पर खड़ा है, लेकिन हम मन के द्वार बंद किए बैठे हैं। तो परमात्मा प्रतीक्षा करेगा और हम अपने अंधकार में बैठे रहेंगे। मन को शांत करने, मन को शब्दों से मुक्त करने का अर्थ है, मन के सारे द्वार और दीवालों को गिरा देना, ताकि मन के ऊपर कोई आवरण न रह जाए, मन के ऊपर कोई बंधन न रह जाए, मन के ऊपर कोई दीवाल न रह जाए, कोई कारागृह न रह जाए, तो फिर आ जाएगा वह प्रकाश जो चारों तरफ मौजूद है और हमारी प्रतीक्षा कर रहा है।

परमात्मा हमारे ऊपर हिंसा नहीं करना चाहता है, इसलिए बाहर दरवाजे पर प्रतीक्षा करता है कि हम अपने द्वार खोलें। लेकिन हम अपने द्वार ही न खोलें, तो अंधकार में हम अपने हाथ से जीते हैं।

शांत मन का अर्थ है: द्वार खोलना। शांत मन का अर्थ है: दीवाल को तोड़ना। शांत मन का अर्थ है: असीम के साथ तालमेल, असीम के साथ संबंध को स्थापित करना। उससे संसार मिटेगा नहीं, बल्कि संसार ही स्वर्ग बन जाएगा। उससे जीवन के संबंध नष्ट नहीं होंगे, जैसा कि हमें सिखाया गया है। हमें सिखाया गया है कि जो परमात्मा का हो जाएगा, वह पत्नी का नहीं रह जाएगा, वह व्यक्ति वह अपने बच्चों का नहीं रह जाएगा, वह अपने घर का नहीं रह जाएगा, वह अपने संबंधियों का नहीं रह जाएगा। यह झूठ है बात, एकदम झूठ। इससे ज्यादा झूठी बात कभी नहीं कही गई। सच्चाई उलटी है। सच्चाई यह है कि उसके घर के लोग तो उसके होंगे ही, इस जमीन पर कोई न रह जाएगा जो उसके घर का बाहर का हो। सच्चाई यह है कि उसके संबंध तो जिनसे हैं उनसे होंगे ही, इस जगत में कोई न रह जाएगा जिससे उसके संबंध न रह जाएं। उसका परिवार मिटेगा नहीं, बड़ा हो जाएगा; उसका प्रेम समाप्त नहीं होगा, विराट हो जाएगा। उसका छोटा सा घर नष्ट नहीं होगा, बल्कि

उसके घर की सीमाएं बड़ी होती चली जाएंगी और जमीन पर कोई कोना ऐसा न होगा जो उसे अपना घर जैसा मालूम न पड़े। यह बात झूठी है कि वह अपने घर से छोड़ देगा। सच बात यह है कि पूरी जमीन उसका घर हो जाएगी। यह बात गलत है कि वह अपने परिवार का शत्रु हो जाएगा। सच्ची बात यह है कि इस जमीन पर सब कुछ उसका परिवार हो जाएगा। उसका प्रेम विराट होगा, क्षुद्र नहीं।

और निश्चित ही जब इतने विराट प्रेम का जन्म होगा, तो जिस प्रेम को हम जानते हैं उसमें एक क्रांति हो जाएगी, उसमें एक परिवर्तन हो जाएगा। हमारे प्रेम में तो घृणा भी मौजूद होती है। जिस पत्नी को हम प्रेम करते हैं, उसकी हम हत्या भी कर सकते हैं। जिस मित्र को हम कहते हैं कि मैं तुम्हारे लिए प्राण दे दूंगा, जरा सी बात बिगड़ जाए और हम उसके प्राण लेने को तैयार हो सकते हैं। हमारा प्रेम अपने भीतर घृणा को छिपाए हुए है। यह प्रेम झूठा है। क्योंकि जिस प्रेम के भीतर घृणा बैठी हो, उस प्रेम का मूल्य कितना? हम जिसे प्रेम करते हैं उसी को घृणा भी करते हैं। जरा सी बात बिगड़ जाए, हमारी इच्छाओं के विपरीत हो जाए बात, हमारी आकांक्षा से भिन्न हो जाए, हमारा प्रेम समाप्त और हमारी घृणा बाहर निकल आएगी। जब दो मित्र शत्रु हो जाते हैं, तो उन जैसा शत्रु और कोई भी नहीं होता। और जब दो भाई लड़ने लगते हैं, तो उन जैसा लड़ने वाला भी खोजना कठिन है। क्यों? क्या बात है? हमारे प्रेम और हमारी मित्रता के पीछे हमारी घृणा मौजूद है। जब कोई व्यक्ति शांत होता है, तो प्रेम नष्ट नहीं होता, उसके भीतर से घृणा समाप्त हो जाती है, उसके पास शुद्ध प्रेम बच जाता है। इसलिए उसके प्रेम में वह वायलेंस, वह हिंसा नहीं होती, जो हमारे प्रेम में है। लेकिन उसके प्रेम में एक अपार्थिव प्रकाश आना शुरू हो जाता है, एक दिव्य ज्योति आनी शुरू हो जाती है।

निश्चित ही जिस प्रेम में घृणा है, वह सीमित होता है, वह किसी से बंधा होता है, लेकिन जिस प्रेम में कोई घृणा नहीं रह जाती, वह असीम हो जाता है, उसका बंधन नहीं रह जाता। वह प्रेम किसी को पजेस नहीं करता, वह किसी का मालिक नहीं बनता, वह किसी को डॉमिनेट नहीं करता, वह किसी का अधिकार नहीं ले लेता। हमारा प्रेम तो मालकियत है। मैं अपनी पत्नी को कहूंगा कि मैं तुम्हारा मालिक हूं। पति हमेशा से पत्नियों से यह कहते रहे हैं और पत्नी भी अपने मन में जानती है कि वह भी मालकिन है। जो यह जानता है कि जिसे मैं प्रेम करता हूं उसका मैं मालिक हूं, वह ठीक से समझ ले, उसने कभी प्रेम को जाना भी नहीं, उसने कभी प्रेम को किया भी नहीं।

प्रेम कभी किसी का मालिक हो सकता है? मालिक तो हम उसके होना चाहते हैं जिससे हमें डर होता है, भय होता है। हम उस पर कब्जा कर लेना चाहते हैं, ताकि उससे भय न रह जाए, उससे डर न रह जाए। मालिक तो हम उसके होना चाहते हैं जिससे हमें कोई प्रेम नहीं होता। मालिक तो हम वस्तुओं के होना चाहते हैं। व्यक्तियों का कभी कोई मालिक हो सकता है? आत्माओं का कभी कोई मालिक हो सकता है? जो किसी को प्रेम करता है वह कभी उसका मालिक न होना चाहेगा। मालकियत घृणा का सबूत है, प्रेम का नहीं। तो हमारा यह

जो प्रेम है जो मालिक बन जाता है, और जिसकी मालकियत जरा भी डांवाडोल हो जाए तो हत्या करने को उतारू हो जाएगा। यह प्रेम जरूर शांत व्यक्ति में नहीं रह जाएगा। शांत व्यक्ति के प्रेम में कोई पजेशन, कोई मालकियत, कोई घृणा नहीं होगी। इसलिए शांत व्यक्ति का प्रेम असीम होता चला जाएगा। वह एक को पार करके धीरे-धीरे अनेक पर पहुंच जाएगा; वह एक की सीमा से मुक्त होकर धीरे-धीरे सबमें प्रवेश पा जाएगा। ऐसे ही प्रेम को मैं प्रार्थना कहता हूं, जो एक को पार कर लेता है और सब तक पहुंच जाता है।

मंदिरों में कही जाने वाली प्रार्थनाएं प्रार्थनाएं नहीं हैं, थोथे शब्द हैं। सच्चा प्रार्थना से भरा हुआ हृदय तो वह है जिसका प्रेम अनंत और असीम तक पहुंचने लगा हो, जिसके प्रेम की लहरें दूर-दूर फैल रही हों, और जिसका प्रेम किसी सीमा को न मानता हो, और जिसका प्रेम केवल देना जानता हो, मांगना न जानता हो।

प्रेम तो नष्ट नहीं होगा, लेकिन प्रेम परिवर्तित हो जाएगा; परिवार तो नहीं मिटेगा, लेकिन परिवार बहुत बड़ा हो जाएगा; संसार तो नहीं बिगड़ेगा, लेकिन संसार एक अभूतपूर्व रूप से परिवर्तित होकर स्वर्ग बन जाएगा। इसलिए भयभीत न हों। इस बात से भयभीत न हों कि संसार बिगड़ जाएगा।

बड़े मजे की बातें हैं, क्या है आपके संसार में? कौन सी शांति है? कौन सा आनंद है? कौन सा प्रेम है? जिसके खो जाने से हम भयभीत हो जाते हैं कि कहीं हम शांत हो गए तो सब खो न जाए। क्या है आपके पास जो खो जाएगा?

हमारी हालत करीब-करीब उस भिखमंगे जैसी है जो एक राजधानी के किनारे रात भर जागा रहता था। पुराने दिनों की घटना है। उस गांव का बादशाह रोज घोड़े पर सवार होकर रात को आधी रात गांव की निरीक्षण को निकलता। वर्ष पर वर्ष बीत गए। सर्दी हो कि बरसात कि गर्मी हो, कि अंधेरी रात हो कि उजाली रात हो, वह भिखारी गांव के बाहर निरंतर खड़ा हुआ जागता रहता। आखिर उस बादशाह से न रहा गया। उसने एक दिन अपने घोड़े को रोका और पूछा, मेरे मित्र, किस चीज का पहरा देते हो रात भर? उस भिखारी ने कहा: मेरा भी सामान है, कोई उठा कर न ले जाए। उसके पास एक भिक्षा-पात्र था, एक डंडा था, एक झोली थी। वह रात भर जाग कर पहरा देता था कि कहीं कोई उसके इस सामान को चुरा कर न ले जाए। तो उसने राजा से कहा कि क्या आप सोचते हैं मैं सो जाऊं और कोई मेरा सामान ले जाए? तो मैं दिन को सो लेता हूं, जब रास्ते चलते होते हैं, तब कोई डर नहीं होता। रात मैं जागता हूं कि कहीं कोई मेरा सामान न ले जाए।

राजा बहुत चिंतित हुआ। वह लौटा और उसने अपने राजगुरु को जाकर कहा कि मैंने बड़ी हैरानी की घटना देखी। एक भिखमंगे ने मुझसे यह कहा है कि वह रात भर इसलिए जागता है कि कहीं उसका कोई सामान न ले जाए। और सामान उसके पास एक भिक्षा-पात्र, एक डंडा और एक झोली से ज्यादा नहीं है। उसके राजगुरु ने कहा: अक्सर ऐसा होता है, जिनके पास कुछ भी नहीं होता, वे हमेशा डरे रहते हैं कि उनकी चोरी न हो जाए। अक्सर ऐसा होता है, जिनके पास कुछ भी नहीं है, वे भयभीत रहते हैं, कहीं वह खो न जाए।

हमारे पास क्या है जिससे हम भयभीत हैं? क्या है हमारे संसार में जिसके खो जाने से हम डरे हुए हैं? क्या है? कौन सा आलोक हमारे प्राणों को आलोकित कर गया है? कौन सा जीवन हमने जीया और जान लिया है? स्मरण आती है कोई घड़ी जीवन में लौट कर देखने पर जिसे हम कहें कि यह मेरी संपदा है इसे मैं सम्हालना चाहूं? कोई क्षण याद आते हैं जो ऐसे लगते हों जिनको बचाना जरूरी है? और अगर कल कोई परमात्मा आपसे आकर कहे कि जो जिंदगी आप जीए थे, मैं दुबारा उसी जिंदगी को जीने का हक देता हूं, हममें से कितने लोग उसी जिंदगी को दुबारा जीने को राजी होंगे? कौन राजी होगा इस बात के लिए कि जो जिंदगी उसने जी, ठीक वैसी जिंदगी दुबारा जीने को अगर मौका मिल जाए। इनकार कर देगा कि ऐसी जिंदगी मुझे नहीं जीनी। कुछ भी तो नहीं जाना, कुछ भी तो नहीं पाया, सिवाय दुख और पीड़ा के। सिवाय क्रोध और अशांति के क्या जाना है? सिवाय बेचैनी और परेशानी के कौन सी चीज से पहचान हो गई? कुछ भी नहीं, लेकिन भय है कि कहीं वह खो न जाए?

मत भयभीत होइए। शांत होने के साथ ही वह संपदा मिलनी शुरू होती है, जिसे खोने के लिए कोई भयभीत हो, तो उचित भी माना जा सकता है। लेकिन बड़े आश्चर्यों का आश्चर्य यह है कि शांति से जो संपदा मिलती है, उसके खो जाने का कोई मार्ग नहीं है। उसे न कोई छीन सकता है, न कोई नष्ट कर सकता है, उसे न कोई मिटा सकता है, न कोई जला सकता है। शांत होने से जो संपदा मिलती है, हो सकता है कि कोई उसके खो जाने के लिए भयभीत भी हो, क्योंकि वह संपदा है, लेकिन उसके खो जाने का कोई भय नहीं। क्योंकि वह प्राणों की प्राण है। वह हमारे बाहर नहीं है कि भटक जाए, खो जाए। वह तो हम स्वयं हैं, वह तो हमारा स्वरूप है।

उस स्वरूप की दिशा में शांत होने के संबंध में थोड़ी सी बातें मैंने आपसे कल कहीं। स्मरण रखिए, कुछ खोएगा नहीं शांत होने से, क्योंकि अभी कुछ है ही नहीं पास में। हां, कुछ मिल जरूर जाएगा। लेकिन उसकी हमें कल्पना भी नहीं है कि वह क्या है जो मिल सकता है?

और एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि मैंने कहा कि शब्दों को दोहराएं नहीं। दोहराने, रिपीटीशन से तो मन जड़ हो जाता है। तो उन्होंने पूछा है कि हमारे मंत्र--सभी धर्मों के मंत्र हैं और शास्त्रों ने उनका अनुमोदन किया है। सैकड़ों वर्षों से कहा जाता रहा है, उनको दोहराओ, दोहराओ। और जितना ज्यादा दोहराओगे, जितना ज्यादा रिपीट करोगे, उतना ही ज्यादा भगवान के निकट पहुंच जाओगे। तो उस संबंध में मेरा क्या खयाल है?

पहली बात, शांति दो प्रकार की होती है। एक तो शांति वह होती है, जो आदमी को नींद में मिलती है, जब वह रात सो जाता है और सुबह उठ कर कहता है, मैं बहुत गहरी नींद में सोया, बड़ा अच्छा लगा, बड़ा मन शांत है। बेहोशी की शांति है! पैर में दर्द है और डाक्टर एक इंजेक्शन लगा दे, जिससे स्नायु सो जाएं, तो एक तरह की शांति मिलती है, दर्द का

पता होना बंद हो जाता है। जड़ता की शांति है! पैर जड़ हो गया, उसकी संवेदनशीलता कम हो गई, दर्द का अनुभव नहीं होता। जो आदमी जितना ज्यादा संवेदनशील है, जितना सेंसिटिव है, उतना ही पीड़ाओं को अनुभव करता है। जो आदमी जितना जड़ है, जितना ईडियट है, उतना ही कम पीड़ाओं को अनुभव करता है। क्योंकि पीड़ा के अनुभव के लिए संवेदनशीलता चाहिए। तो जितना संवेदनशील व्यक्ति होगा, उतनी पीड़ा अनुभव करेगा; जितना कम संवेदनशील होगा, उतनी कम पीड़ा अनुभव करेगा।

जमीन पर जो सर्वाधिक बुद्धिमान, सर्वाधिक संवेदनशील हृदय हैं, वे सर्वाधिक दुख पाते हैं। जमीन पर जो बहुत जड़बुद्धि हैं, उन्हें कोई भी दुख व्याप्त नहीं होता, उन्हें पता ही नहीं चलता, उन्हें खयाल भी नहीं होता कि यह दुख है। क्योंकि दुख के लिए बोध चाहिए, अवेयरनेस चाहिए, होश चाहिए दुख के अनुभव के लिए।

तो शांति दो प्रकार की हो सकती है। मन जड़ हो जाए, तो भी ऐसा लगेगा कि शांत हो गए। नशा कर लें, शराब पी लें, तो भी शांति मालूम पड़ेगी। लेकिन वह शांति झूठी है। उससे दुख मिटता नहीं, केवल दुख को अनुभव करने वाला यंत्र जड़ हो जाता है। दुख को अनुभव करने वाला यंत्र जड़ हो जाए इससे दुख नहीं मिटता, इससे केवल दुख भूल जाता है। कितनी देर भुलाइएगा?

भुलाने के कई रास्ते हैं। शारीरिक रास्ते हैं और मानसिक रास्ते हैं। शारीरिक रास्ते तो ये हैं--एक आदमी शराब पी लेता है, एक आदमी नाचने लगता है, नाचने में पागल हो जाता है। एक आदमी मैस्कलीन का इंजेक्शन लगवा लेता है, या और नये-नये नये ड्रग्स हैं, एल एस डी है और जमाने भर के ड्रग्स हैं, उनको ले लेता है। कुछ घंटों के लिए उसकी सारी, जो दुख को अनुभव की क्षमता है, वह विलीन हो जाती है। फिर वापस लौट आएगी। दुनिया में लोग शराब व्यर्थ ही नहीं पीते रहे हैं। सारी दुनिया पर नये-नये ढंग के इंटाक्सिकेंट ऐसे ही ईजाद नहीं होते रहे हैं। कोई मनुष्य की बहुत गहरी जरूरत है, जिसको वे पूरा करते रहे हैं। वह जरूरत यह है, दुख का पता न चले। तो जड़ता, कोई भी तरह की जड़ता और बेहोशी आ जाए, दुख का पता नहीं चलेगा।

जो लोग शराब नहीं पीना चाहते, इंजेक्शन नहीं लेना चाहते, उनके लिए और भी सरल रास्ते हैं। वे किसी शब्द को और मंत्र को निरंतर उच्चारण करें, रिपीट करें, उससे भी मन जड़ हो जाता है। कोई भी चीज की बार-बार पुनरुक्ति करने से चित्त पर बोर्डम पैदा होती है, डलनेस पैदा होती है। अगर मैं यहां बैठ कर बोल रहा हूं और एक ही बात घंटे भर तक बोले चला जाऊं, तो आपके मन पर क्या प्रतिक्रिया होगी? आपमें से बहुत से लोग तो सो जाएंगे। जैसा अधिकतर लोग सभाओं में सोते हैं--खास कर धार्मिक सभाओं में। क्योंकि वहां वे ही बातें दोहराई जाती हैं जो हजारों बार दोहराई गई हैं। तो लोग सो जाते हैं।

बोलने वाला सोचता होगा कि यह सोने वालों का कसूर है। यह बोलने वाले का कसूर है। वह इस तरह की बातें बोल रहा है, जिनसे बोर्डम पैदा होती है। रिपीट कर रहा है कुछ बातों को, उससे लोग ऊब जाते हैं, ऊब से नींद पैदा होती है। उसमें जो बहुत सचेतन लोग होंगे,

वे उठ कर चले जाएंगे, क्योंकि यह तो जड़ता की बात हो गई। और इसीलिए जवान आदमी धार्मिक सभाओं में दिखाई नहीं पड़ते। अभी उन्हें जिंदगी है। बूढ़े आदमी दिखाई पड़ते हैं। बूढ़े आदमी मौत की तरफ सरक रहे हैं, वे जड़ता की तरफ सरक रहे हैं। उनको कोई भी जड़ता प्रीतिकर लगती है। जवान को जड़ता मुश्किल मालूम पड़ती है कि वहां बैठा रहे। और अगर बिलकुल छोटे बच्चे बिठाल दिए गए हों, तो वे तो बिलकुल ही नहीं बैठेंगे, अभी वे बहुत जीवंत हैं। अभी वे जड़ होने को राजी नहीं हैं। अभी जिंदगी उनमें बड़ा प्रवाह ले रही है; अभी जिंदगी उनमें खड़ी हो रही है, तो उन्हें जड़ता की कोई बात अपील नहीं करेगी। इसीलिए तो सारी दुनिया में धर्म से बच्चों और जवानों का संबंध टूट गया, सिर्फ बूढ़ों का संबंध रह गया।

यह इस बात की सूचना है कि जिस धर्म को हम बार-बार दोहरा रहे हैं, वह किसी न किसी रूप में जड़ता का पक्षपाती होगा। अगर वह जीवन का पक्षपाती होता, तो बच्चे और जवान उसमें निश्चित ही उत्सुक होते। लेकिन यह जो रिपीटीशन है, यह जो बार-बार दोहराना है किन्हीं बातों का, यह एक तरह की राहत, एक तरह की शांति लाता है। और वह शांति इस बात की है--अगर आप राम-राम, राम-राम घंटे भर तक कहते रहें, मन ऊब जाएगा जो कि मन का स्वभाव है। मन जागता है नये से, नई चीज हो तो जागता है। पुरानी-पुरानी बात तो मन को जागने का कोई कारण नहीं रह जाता, वह सो जाता है। उससे जो तंद्रा पैदा होती है, उसको लोग शांति समझते हैं। उससे जो निद्रा पैदा होती है, जिसको योग-निद्रा कहते हैं, वह शांति नहीं है। वह केवल सो जाना है। वह ऑटो-हिप्नोसिस है। वह आत्म-सम्मोहन है। वह एक तरह की नींद है, जो हम ईजाद कर रहे हैं।

अगर आपको नींद न आती हो, तो राम-राम का जप बड़ा लाभ पहुंचा सकता है। कोई भी मंत्र का जप लाभ पहुंचा सकता है। लेकिन नींद आ जाना सत्य को जान लेना नहीं है। नींद आ जाना शांति को पा लेना नहीं है। लिविंग साइलेंस बड़ी और बात है, डेड साइलेंस बड़ी और बात है। मरघट पर शांति होती है। वह भी एक शांति है। लेकिन हम यहां इतने लोग बैठे हैं और शांत हैं, यह बिलकुल दूसरी शांति है। यह मरघट की शांति नहीं है। यहां इतने जिंदा लोग बैठे हैं, जीवंत लोग बैठे हैं और यहां एक शांति है। यह शांति बात और है।

बुद्ध का वैशाली के पास आना हुआ। दस हजार भिक्षु उनके साथ थे। गांव के बाहर उन्होंने डेरा डाला। वैशाली का नरेश भी उत्सुक हुआ देखने जाने को कि बुद्ध आए हैं। दस हजार भिक्षु उनके साथ आए हैं। कैसा यह आदमी है? जिसने राज्य छोड़ दिया, जो सम्राट से सड़क पर भिखारी हो गया--कैसा यह आदमी है? तो उस नरेश ने भी अपने मंत्रियों को कहा कि मुझे दिखाने ले चलो, मैं चलना चाहूंगा। एक संध्या वह वैशाली के बाहर गया। उसने अपने मंत्रियों से पूछा, कितनी दूर है? रथ पास आ गया था, वृक्षों का घना झुरमुट था। मंत्रियों ने कहाः इन्हीं वृक्षों के उस पार, बस हम निकट ही हैं। दस कदम के बाद वह नरेश संदेह से भर गया, उसने कहाः तुम कहते थे, दस हजार भिक्षु उनके साथ हैं और यहां तो बिलकुल सन्नाटा है? उसने अपनी तलवार निकाल ली। उसने कहाः मालूम होता है कोई

धोखा दिया गया है मुझे। तुम मुझे यहां कहां ले आए हो? दस हजार लोग जहां हों, वहां दस कदम के फासले पर इतना सन्नाटा!

उसके मंत्रियों ने कहाः आप परेशान न हों। उन लोगों को आप नहीं जानते। वे जीते जी शांत हो गए हैं। वहां कोई आवाज नहीं है। वहां कोई बातचीत नहीं हो रही।

नरेश गया, डरा हुआ, तलवार नंगी हाथ में लिए हुए। डर था उसे कि पता नहीं क्या खतरा हो जाए? दस हजार लोग जहां हों, वहां इतनी शांति कल्पनातीत थी। वहां जाकर उसने देखा, वहां तो पूरी बस्ती है दस हजार लोगों की। उसने बुद्ध से जाकर पूछा, बड़े अजीब मालूम होते हैं ये लोग। ये जिंदा हैं या मुर्दा? ये न कोई बात कर रहे हैं, न कोई चीत; न यहां कोई शोरगुल, न कोई आवाज। दस हजार लोग चुपचाप बैठे हैं!

बुद्ध ने कहाः तुमने केवल मुर्दा शांति को ही जाना है इसलिए तुम्हें शक पैदा होता है, कहीं ये लोग मुर्दा तो नहीं? तुमने केवल मरघटों पर जो शांति होती है, उसको जाना है। हम उस शांति की खोज में हैं, जो जिंदा आदमी को मिलती है, जीवित मन को मिलती है।

मैं उस शांति की बात कर रहा हूं, जो मन को मुर्दा न कर दे, डेड न कर दे, मन को डल न कर दे, शिथिल न कर दे, बल्कि मन को इतना सचेतना से भर दे, इतनी अवेयरनेस से, इतने होश से, इतने जीवंत शक्ति से कि वह जीवंत शक्ति के कारण शांत हो जाए। शक्ति की क्षीणता के कारण नहीं, सो जाने के कारण नहीं, बल्कि जागरण के कारण शांत हो जाए।

तो जागरण से जो शांति आती है, वह तो जीवित है। उस जीवित शांति में तो जाना जा सकता है सत्य। क्योंकि सत्य जानने के लिए जाग्रत होना जरूरी है। नहीं तो जानेगा कौन? लेकिन मंत्रों, नाम-जप और इस तरह की बातों से जो शांति पैदा होती है, वह झूठी, निद्रा की शांति है, जीवन की शांति नहीं। उससे कुछ होने वाला नहीं है।

और ये जो मंत्र हैं, यह भी उन्होंने पूछा हैः इतने मंत्र हैं, इनकी शक्तियों का वर्णन है, इनसे यह हो सकता है, यह हो सकता है, यह हो सकता है।

बड़ा एक षडयंत्र आदमी के साथ चलता रहा है, एक बड़ी कांस्प्रेसी चलती रही है। और वह षडयंत्र यह है, जो मैं एक छोटी सी कहानी से आपको कहूं।

एक मस्जिद के बाहर एक मुल्ला सुबह खड़े होकर पत्थर फेंक रहा था। गांव का राजा वहां से निकला, उसने उस मुल्ला को पूछा कि मेरे मित्र, ये पत्थर किसलिए फेंक रहे हो? उस मुल्ला ने कहाः ताकि शेर, चीते, जंगली जानवर यहां राजधानी में न आ सकें, इसलिए पत्थर फेंक रहा हूं। वह राजा बहुत हैरान हुआ। उसने कहा कि मैंने आज तक न तो यहां शेर देखे, न चीते देखे, तुम फिजूल पत्थर फेंक रहे हो। वह मुल्ला क्या बोला? वह बोला कि तुम्हें पता ही नहीं है राजन, मेरे पत्थर फेंकने की वजह से ही तो शेर और चीते यहां नहीं आते हैं। तुम सोचते हो शेर-चीते नहीं हैं? और मेरे पत्थर फेंकने की वजह से वे नहीं आते हैं।

अभी कुछ समय पहले आठ ग्रह इकट्ठे हो गए थे और सारा मुल्क दीवाना हो गया सारी दुनिया को बचाने के लिए, और न मालूम किस-किस तरह की बेवकूफियां हमने कीं। और अगर कोई हमसे कहे कि देखो, कुछ तो हर्जा नहीं हुआ उन अष्टग्रह से। तो हम कहेंगे, तुम पागल हो। अरे, हमारे यज्ञ-हवन की वजह से कोई हर्जा नहीं हो पाया। नहीं तो हर्जा होता। वह तो हमने जो मंत्र उच्चार किए और हमने जो पवित्र अग्नियां जलाईं, उनकी वजह से सारी दुनिया बच गई। नहीं तो दुनिया डूब जाती। वह हमारे पत्थर फेंके इसलिए शेर-चीते नदारद हो गए। नहीं तो वे तो थे। अगर हमने यह नहीं किया होता तो दुनिया कभी भी डूब कर नष्ट हो गई होती, महाप्रलय हो गया होता।

ये सारे मंत्र उन भूत-प्रेतों को भगाते हैं, जो हैं ही नहीं। पहले हमें यह विश्वास दिला दिया जाता है कि भूत-प्रेत हैं। पहले हमें यह विश्वास दिला दिया जाता है कि ये-ये फियर, ये-ये घबड़ाहट हैं। जब हम उससे भयभीत हो जाते हैं, तो उसको दूर करने के लिए मंत्र बता दिया जाता है। निश्चित ही भय दूर हो जाएंगे उन मंत्रों से, क्योंकि भय थे ही नहीं।

कहावत है: फेथ कैन मूव माउंटेंस। कहावत है: विश्वास पहाड़ों को हटा सकता है। लेकिन केवल ऐसे पहाड़ों को जो काल्पनिक हों। सच्चे पहाड़ों को आज तक किसी विश्वास ने न हटाया है और न हटा सकता है। हां, झूठे पहाड़ हटाए जा सकते हैं। और झूठे पहाड़ समझाए जा सकते हैं कि हैं। हम इतने नासमझ हैं कि हम हजारों झूठी बातों पर हजारों वर्ष तक विश्वास करते रहे हैं, और आज भी हमारी नासमझी का कोई अंत नहीं हुआ, आज भी हम विश्वास करते हैं। उनको हटाया जा सकता है, क्योंकि वे हैं ही नहीं। जो बीमारियां नहीं हैं, वे मंत्रों से दूर की जा सकती हैं। जिन सांपों में जहर ही नहीं होता, वे मंत्रों से उतर जाते हैं। हिंदुस्तान में सत्तानबे प्रतिशत सांपों में कोई जहर नहीं होता। केवल तीन प्रतिशत सांपों में जहर होता है। सौ आदमियों को सांप काटे, सत्तानबे के मरने का कोई भी कारण नहीं है, सिवाय इसके कि वे भय से न मर जाएं। तो सत्तानबे मौकों पर तो मंत्र काम कर ही जाएगा। यह हो सकता था कि मंत्र न होता तो वे आदमी मर जाते, क्योंकि दुनिया में बीमारी से कम लोग मरते हैं, भय से ज्यादा लोग मरते हैं। सांप ने काट खाया, यह बात मारने वाली हो जाती है, चाहे सांप में कोई जहर हो या न हो। हजारों सांप के काटे हुए लोग मर जाते हैं केवल इसलिए कि उनको सांप ने काट खाया। उस सांप में कोई जहर ही नहीं होता। सौ आदमियों को सांप काटे, सत्तानबे के मरने का कोई कारण नहीं है, लेकिन मर सकते हैं। मंत्र ऐसे आदमियों को बचा सकता है, क्योंकि जो जहर नहीं था वह उतर सकता है। और भय हमें बहुत जोर से पकड़ते हैं।

एक कहानी मैंने सुनी है।

एक राजधानी के बाहर एक फकीर रहता था। एक दिन सुबह-सुबह उसने देखा, एक बहुत बड़ी काली छाया नगर की तरफ भागी चली आ रही है। उसने उस काली छाया से पूछा, तुम कौन हो?

उस काली छाया ने कहा: मैं प्लेग हूं।

फकीर ने पूछा, किसलिए जा रही हो नगर में?
उसने कहा कि मुझे एक हजार लोगों के प्राण लेने हैं।
वह छाया नगर में चली गई। तीन महीने बीत गए। उस फकीर ने उस जगह को न छोड़ा, क्योंकि तीन महीने में कोई दस हजार आदमी मर गए उस गांव में। उसने कहा कि लौटते हुए प्लेग से पूछ लूं कि मुझसे झूठ बोलने की क्या वजह थी? तीन महीने बाद वह प्लेग की काली छाया वापस लौटी, तो उस फकीर ने टोका और उसने कहा कि हद हो गई, मुझसे झूठ बोलने का क्या कारण था? तुमने तो कहा था एक हजार लोगों के प्राण लेने हैं और दस हजार लोग मर गए?
उस प्लेग ने कहा: मैंने तो एक ही हजार मारे, बाकी भय से मर गए। मेरा उसमें कोई कसूर नहीं। बाकी नौ हजार आदमी अपने आप घबड़ाहट से मर गए, उनको मैंने नहीं मारा।
इन नौ हजार आदमियों पर मंत्रों का उपयोग हो सकता था, ये बच सकते थे। इनको कोई बीमारी ही नहीं थी।
ये जो सारे मंत्र हैं, जो हमें शक्तिशाली मालूम होते हैं। मंत्र शक्तिशाली नहीं हैं, हमारा मन कमजोर है, भयभीत है। इसलिए अगर मन को किसी भी बात से बल दिया जा सके, ताकत दी जा सके, तो फर्क पड़ जाता है। और अगर हमको किसी दिन यह बात ठीक-ठीक समझ में आ गई, तो मंत्रों को बीच में लेने की कोई जरूरत नहीं है। हम अपने आत्मबल को, अपने मन के बल को बिना किसी मंत्र के सहारे के नहीं खड़ा कर सकते हैं। मंत्र से उसका कोई संबंध नहीं है। संबंध है मेरे भीतर, मेरे अपने बल का। अगर वह है, अगर मेरा भय छूट जाए, अगर जीवन में मेरी चिंता छूट जाए, अगर जीवन में मेरी अशांति छूट जाए, तो इतनी बड़ी शक्ति का उदय होगा, किसी मंत्र की कोई जरूरत नहीं है। यह कमजोर आदमी का शोषण है। कमजोर है आदमी बहुत। और धर्मों ने, पुरोहितों ने उसे मजबूत तो नहीं बनाया, उलटे और कमजोर किया है, उलटे और भयभीत किया है। उसे ऐसे भय दे दिए हैं, जिनकी कोई जगह, कोई गुंजाइश नहीं है, जिनकी सच्चाई में कहीं कोई असलियत नहीं है। जमीन के भय हैं, नरक के भय हैं, स्वर्ग के भय हैं, और न मालूम कितने-कितने काल्पनिक भय हैं। और उन काल्पनिक भय के भीतर घिरा हुआ आदमी है। इस आदमी को बल चाहिए।
इसको कोई भी नासमझी पकड़ा दें। अगर इसे ऐसा लगे कि हां, मेरी थोड़ी हिम्मत बढ़ती है, तो हिम्मत तो अंधेरे में आप जा रहे हों, अगर जोर से फिल्म का गाना भी गाने लगें, तो बढ़ जाती है। अगर अंधेरी गली से निकल रहे हों और सीटी बजाने लगें तो भी हिम्मत बढ़ जाती है। कुछ भी करने लगें तो हिम्मत बढ़ जाती है, क्योंकि करने में आप भय को भूल जाते हैं। क्योंकि मन एक ही साथ दो काम नहीं कर सकता। या तो फिल्मी गाना गा सकता है या भयभीत हो सकता है। अगर अंधेरी गली से निकल रहे हों और जोर से फिल्म का गाना गाने लगें, तो मन फिल्म का गाना गाने लगा, भयभीत कौन होगा? उतनी देर के लिए भय बंद हो जाएगा। तो चाहे फिल्मी गाना गा लें, चाहे राम-राम जप लें, चाहे

नमोकार जप लें, चाहे कुछ और कर लें। लेकिन उससे कोई जीवन में क्रांति नहीं होती और न परिवर्तन होता है, बल्कि जो कौमें और जो लोग इस तरह के झूठे, इस तरह के झूठे विज्ञानों में, इस तरह की शूडो साइंसिस में फंस जाते हैं, उन मुल्कों में असली विज्ञान का जन्म नहीं हो पाता।

हमारे मुल्क का दुर्भाग्य यही है। यही मंत्र, यही थोथे विश्वास और इन पर श्रद्धा। हमारे मुल्क में साइंस पैदा नहीं हो सकी। हम सारी जमीन पर पिछड़ गए हजारों साल के लिए। शायद अब हम किसी कौम के साथ कदम मिला कर नहीं चल सकेंगे। किसके ऊपर जिम्मा है? उन लोगों के ऊपर जो इन थोथी बातों को प्रचारित करते रहे, लोगों को समझाते रहे। इसकी वजह परिणाम यह हुआ कि जिंदगी के दुख को मिटाने का जो कॉज़ेलिटी थी, जो कारण था असली, वह तो हमने नहीं खोजा। हमने कहा: मंत्र पढ़ लो, राम-राम जप लो, मामला सब ठीक हो जाएगा। तो जिंदगी के दुख मिटाने के जो असली कारण थे, वे हमने नहीं खोजे। हमने ऊपरी तरकीबें खोजीं। न जीवन और पदार्थ के संबंध में सत्यों को खोजा--न उसकी ताकत बढ़ी, न उसकी समृद्धि बढ़ी, न उसका आत्मबल बढ़ा। सब तरह से हम दीन-हीन हो गए। और उस दीन-हीन हो जाने के पीछे सबसे बड़ा कारण, हमारे ये थोथे मंत्र, ये थोथे खयाल कि हम इन बातों को करके सब कुछ कर लेंगे।

सोमनाथ पर हमला हुआ। सोमनाथ के हमले के वक्त सारे हिंदुस्तान से बहादुरों ने यह खबर भेजी कि मंदिर की रक्षा के लिए हम आ जाएं? तो मंदिर के गर्व से भरे हुए पुजारियों ने कहा: तुम्हारी जरूरत भगवान की रक्षा के लिए! भगवान अपनी रक्षा नहीं कर सकेंगे? भगवान सबके रक्षक हैं, तुम्हारी क्या जरूरत है? बात तो ठीक थी। भगवान, जो सबके रक्षक हैं, उनके लिए कोई तलवार की रक्षा की जरूरत है? मान गए वे लोग। तलवार लिए हुए सिपाही खड़े थे, लेकिन वे लड़े नहीं। जिसने हमला किया था, वह आदमी भीतर घुस गया। और पांच सौ पुजारी थे उस मंदिर में और वे अपने मंत्रों का जाप कर रहे थे और प्रार्थनाएं कर रहे थे। और गजनी ने मूर्ति पर चोट की और मूर्ति टुकड़े हो-हो कर गिर गई और उनके सारे मंत्र रखे रह गए और सारी प्रार्थनाएं रखी रह गईं। और तब उन पुजारियों ने क्या कहा? जब उन्होंने देखा कि मंत्र फिजूल हो गए, सब व्यर्थ हो गया, मूर्ति तोड़ दी गई, तो उन्होंने एक नई बात ईजाद की। उन्होंने कहा कि गजनी शिव का अवतार मालूम होता है। नहीं तो यह कैसे हो सकता है? और हम उन मूढ़ों में से हैं कि हमने पहली बात भी मान ली और दूसरी बात भी मान ली कि गजनी जो है भगवान शिव का अवतार होना चाहिए, तभी तो, तभी तो सारी बात हो गई।

यह जो हम इस भांति का जो चिंतन करते रहे हैं, यह चिंतन नहीं है, यह जड़ता है। और इसका परिणाम यह हुआ कि हम साइंस को जन्म नहीं दे पाए; हम खोज नहीं कर पाए। दूसरी कौमों के लोग, जो सभ्यता और विचार के रास्ते पर हमसे बहुत पीछे चले, बहुत पीछे; वे आज चांदत्तारों पर पहुंच रहे हैं। उन्होंने पदार्थ का अणु तोड़ लिया। वे आज आत्मा और मन की तलाश में भी बहुत गहरे जा रहे हैं। और हम, जिन्होंने यात्रा बहुत पहले शुरू

की थी, आज जमीन पर सबसे पीछे खड़े हैं। कौन है जिम्मेवार? वे ही लोग, जो आज भी मंत्र और हवन की बातें कर रहे हैं।

जीवन बातचीत करने से हल नहीं होता और ऊपरी इलाज करने से चिकित्साएं नहीं होतीं। जीवन में कारण खोजने पड़ते हैं। कारण की खोज साइंस है और बिना कारण को खोजे शब्दों को दोहराने की आस्था, सुपरस्टीशन है, अंधविश्वास है।

मैं आपसे निवेदन करता हूं, कोई मूल्य इनका बहुत नहीं है। और जब तक हम यह बात स्पष्ट रूप से न समझ लेंगे और हमारे मुल्क की नई पीढ़ी इस जंजाल से नहीं छूट जाएगी, तब तक हम अपने मुल्क में सत्य के अनुसंधान में न तो पदार्थ को खोज सकेंगे और न परमात्मा को।

मंत्र न तो पदार्थ की खोज में अर्थपूर्ण है और न परमात्मा की खोज में। दोहराने वाली बातें और कोरे शब्दों को दोहराने वाली बातें ज्यादा से ज्यादा थोड़ी सी हिम्मत दे सकती हैं; लेकिन उनसे कोई जीवन में क्रांति नहीं होती। और जितने जल्दी हम इस बात को समझ लें, उतना अच्छा है। नहीं तो शायद हमारे दुर्भाग्य के मिटाने के रास्ते भी बंद हो जाएंगे; समय भी खो जाएगा और हम अपने दुर्भाग्य को पोंछने के सारे उपाय अपने हाथ से ही तोड़ देंगे। लेकिन हम आज भी यही किए चले जा रहे हैं।

आज भी पानी नहीं गिरता, तो हम मंत्र का सहारा लेते हैं। पांच हजार साल से हम यही करते रहे हैं। पांच हजार साल से हम यही करते रहे हैं कि जो हमसे न बन सके उसमें हम मंत्र का सहारा ले लेते हैं। बीमारी हो, तो मंत्र; पानी न गिरे, तो मंत्र; आदमी मरता हो, तो मंत्र; अनाज पैदा न हो, तो मंत्र। मंत्रों का कुल जमा परिणाम यह हुआ, जो हम आज हैं! और इसका फल यह हुआ कि हम मंत्रों में खोए रहे और अगर हम कारण खोजने में इतनी ताकत लगाते, तो कोई वजह न थी कि आकाश से पानी क्यों न गिर सके! कोई वजह न थी कि जमीन के भीतर से पानी क्यों न निकाला जा सके! जमीन के भीतर इतना पानी है कि अगर पांच सौ वर्षों तक भी बिलकुल वर्षा न हो, तो भी पानी की कोई कमी नहीं है। लेकिन हम उसे निकालने में समर्थ नहीं हो सके। हम बैठे रहे, मंत्र पढ़ते रहे।
बिहार में हर वर्ष, आए वर्ष अकाल पड़ता है। मंत्र वहां बहुत पढ़े जाते हैं। मुल्क भर से भीख मांगी जाती है। अब तो हम दुनिया भर में भिखारी की तरह जाहिर हो गए। हर जगह हाथ फैला कर खड़े हो जाते हैं। मंत्र घर में पढ़ते हैं, भीख जमाने भर में मांगते हैं। लेकिन बिहार में वह किसान हाथ पर हाथ रखे बैठा रहता है, जमीन में कुआं भी नहीं खोदता। बिहार के खेतों में कुएं नहीं हैं। जहां निरंतर अकाल पड़ रहा है, वहां हर वर्ष यज्ञ, महायज्ञ और न मालूम क्या-क्या बेवकूफियां हम करते हैं लेकिन कुआं खोदने की हम कोई फिक्र नहीं करते। कुआं हम क्यों खोदें? हम तो मंत्रों के धनी हैं और मंत्र हमारे पास हैं, तो सब पानी भी

गिरेगा और फसलें भी उगेंगी और न मालूम हम क्या-क्या कर लेंगे। इस भ्रम में, इस इल्युजन में हमने बहुत गंवाया है।

वक्त आ गया है कि यह भ्रम टूट जाना चाहिए। नहीं तो मुल्क की रीढ़ हमेशा के लिए टूट जाएगी। इस कौम का बहुत भविष्य नहीं है। अगर हम इन्हीं पुरानी पिटी-पिटाई बातों को आगे भी दोहराते जाते हैं, तो इस कौम के आगे आने वाले दिन अच्छे नहीं हो सकते। हम एक भिखमंगे में परिवर्तित हो गए हैं। और मंत्रों की कृपा है और हमारे पुरोहितों की और हमारे पंडितों की। जरूर मंत्र उपयोगी हैं पंडितों और पुरोहितों के लिए, आपके लिए नहीं। उनका धंधा है, उनका व्यवसाय है, उनकी आजीविका है। वे उससे जी रहे हैं। और अगर ये बंद हो जाएंगी बातें और लोगों का खयाल इनसे हट जाएगा, तो उनकी आजीविका जरूर टूट जाएगी। इसका तो जरूर मन में दुख होता है कि उनकी आजीविका टूट जाएगी, लेकिन अब यह आजीविका तोड़नी पड़ेगी। अब उनकी आजीविका चलेगी, तो इस पूरे मुल्क का जीवन टूट जाएगा।

अब दो बातों में से कुछ न कुछ निर्णय करना होगा कि या तो ये मंत्र पढ़ने वाले पंडित और पुरोहित जीएं और हम मर जाएं, और या फिर अब इनको अपना व्यवसाय बदलना होगा। अच्छा होगा कि मंत्र और यज्ञ करवाने की बजाय ये कुएं खोदने लगें, कुछ और करने लगें, और मुल्क को जीने दें और खड़ा होने दें। कोई उपयोग नहीं है। जरा भी कोई उपयोग नहीं है। और इस बात को बहुत स्पष्ट दो और दो चार की भांति आपसे कह रहा हूं, कोई उपयोग नहीं है। सोचें और देखें, मुल्क की कथा। क्या हुआ इनके उपयोग का परिणाम? हम कहां खड़े हैं?

लेकिन हम विचार भी नहीं करते। हम शायद सोचते होंगे, हम ठीक से मंत्र नहीं पढ़ पाए इसलिए सब गड़बड़ हो गई। शायद हम सोचते होंगे, यज्ञ-हवन कम कर पाए इसलिए यह गड़बड़ हो गई। या मंत्र तो पढ़े लेकिन उच्चारण ठीक नहीं हो पाया, संस्कृत में कुछ भूल हो गई इसलिए यह गड़बड़ हो गई। या शायद हमने पंडित-पुरोहितों की बात पूरी-पूरी तरह नहीं मानी इसलिए यह सब गड़बड़ हो गई। यह समझाने वाले लोग भी हैं और हममें से बहुत से लोग इसको समझने के लिए भी तैयार हैं। क्योंकि हजारों साल की दासता में जिस कौम का दिमाग पल गया हो, उसकी सोचने-समझने की शक्ति समाप्त हो जाती है। उसे सोच-विचार पैदा नहीं होता। उसकी आदत विश्वास करने की हो जाती है, विचार करने की नहीं होती।

मैं आपसे निवेदन करूंगा, विश्वास बहुत किया जा चुका। विचार करिएगा या नहीं? बहुत हो चुका विश्वास। बिलीफ पर हम बहुत जी चुके। अब विचार करिएगा या नहीं? चहुंमुखी विचार की जरूरत है, सर्वांगीण विचार की जरूरत है। पदार्थ के संबंध में, जीवन के संबंध में, परमात्मा के संबंध में विवेक की जरूरत है, खोज की जरूरत है। अंधेपन की जरूरत नहीं है कि मान लें। मान लेने की कोई आवश्यकता नहीं है। किसी बात को मानने की कोई जरूरत

नहीं है। बहुत मान चुके और बहुत खो चुके। मुल्क बैंकक्रप्ट हो गया, दिवालिया हो गया, उसकी आत्मा नष्ट हो गई, उसके प्राण भटक गए, उसकी सारी दिशा खो गई, उसकी आंखें बंद हो गईं, लेकिन फिर भी, फिर भी हम दोहराए जा रहे हैं। हम दोहराए जा रहे हैं उन्हीं बातों को जो हमारे भटकाने का रास्ता बनी, हम आज भी कहे जा रहे हैं।
जरूरत आ गई है कि इस सारी थोथी परंपरा, इस सारी रूढ़ि, इस सारे अंधे चिंतन से देश मुक्त हो जाए। और मैं आपसे कहता हूं कि उस भ्रांति होने से मुल्क अधार्मिक नहीं हो जाएगा। अधार्मिक अभी है। विश्वासी व्यक्ति अंधा होता है। अंधा आदमी कभी धार्मिक नहीं होता। धार्मिक तो बहुत खुली हुई आंखों वाला आदमी होता है। विचार अधर्म में नहीं ले जाता; विचार तो जितना तीव्र और गहरा और जितना प्रवेश करने वाला होता है, उतना ही ज्यादा धर्म में ले जाता है।

तो विचार की क्रांति अगर आए, तो इससे घबड़ाने की जरूरत नहीं कि अधार्मिक हो जाएंगे, लोग भटक जाएंगे। मैं आपसे कहता हूं, लोग भटके हुए हैं, अब और भटकने की कोई गुंजाइश नहीं है। और यह भी खयाल रखें कि जितना-जितना विचार की सामर्थ्य पैदा होती है, सोच पैदा होता है, जीवन को कसने और परखने की हिम्मत और विश्लेषण करने की हिम्मत पैदा होती है, संदेह करने की हिम्मत पैदा होती है, उतना ही उतना भीतर प्राणों का साहस बढ़ता है, आत्मा बलवान होती है। जो लोग कभी संदेह ही नहीं करते, उनकी आत्मा कमजोर न हो जाएगी तो और क्या होगा?

एक मित्र ने पूछा है, वह अंतिम प्रश्न, उसके बाद मैं चर्चा बंद करूंगा।
एक मित्र ने पूछा है: हमसे तो कहा जाता है कि हम मां-बाप, गुरु को आदर दें, सम्मान दें और उनकी बात को हमेशा प्रमाणिक मानें, उस पर शक न करें, उस पर संदेह न करें। तो मेरा क्या विचार है इस संबंध में?

पहली बात, अगर कोई भी आपसे कहता हो मुझे आदर दो, तो उसे आदर कभी मत देना; क्योंकि यह मांग उस आदमी के भीतर आदर-योग्य होने की कमी का सूचक है। अगर कोई कहता हो; अगर गुरु यह कहता हो, मुझे आदर दो, उसे कभी आदर मत देना, क्योंकि यह आदमी गुरु होने के योग्य ही नहीं रहा। गुरु कभी आदर नहीं मांगता। जो आदर मांगता है, वह गुरु नहीं रह जाता। आदर की मांग बड़े क्षुद्र मन की सूचना है। आदर मांगा नहीं जाता; आदर मिलता है।

मैं यह नहीं कहता कि मां-बाप को आदर दो। मैं यह कहता हूं, मां-बाप ऐसे होने चाहिए कि उन्हें आदर मिले। आदर मांगा नहीं जा सकता। और मांगा हुआ आदर एकदम झूठा होगा। अगर कोई देगा भी, वह झूठा होगा। अगर बच्चे आदर देंगे इसलिए कि मां-बाप मांगते हैं कि आदर दो, क्योंकि हम बुजुर्ग हैं, हमने जिंदगी देखी है और हमने यह किया और हमने

वह किया। अगर इस वजह से वे आदर मांगते हैं, तो वे पक्का समझ लें, वे बच्चे में आदर नहीं, अनादर के बीज बो रहे हैं। हां, आज तो बच्चा कमजोर है इसलिए डर की वजह से आदर देगा। लेकिन कल आप कमजोर हो जाएंगे और बच्चा ताकतवर हो जाएगा; आप बूढ़े हो जाएंगे और बच्चा जवान हो जाएगा, तब? तब पासा बदल जाएगा। बच्चा सताएगा और अनादर देगा। ये जो जवान बच्चे अपने मां-बाप को अनादर दे रहे हैं, यह अकारण नहीं है। इनसे बचपन में जबरदस्ती आदर मांगा गया, उसका रिएक्शन है, उसकी प्रतिक्रिया है। जब इनके हाथ में ताकत आएगी, तो ये इसका बदला चुकाएंगे। आपके हाथ में ताकत थी, तो आपने आदर मांग लिया। अब इनके हाथ में ताकत है, तो अब ये उसका बदला चुकाएंगे कि जो आदर दिया था, उसको एक-एक रत्ती-रत्ती पाई चुकता कर लेंगे।

सारी दुनिया में बच्चों की जो बगावत है, वह मां-बाप के प्रति नहीं है, मां-बाप के जबरदस्ती मांगे गए आदर के प्रति है। मां-बाप को कौन अनादर देगा? कोई कल्पना भी नहीं कर सकता उनको अनादर देने की। लेकिन मां-बाप होने तो चाहिए, वे हैं कहां? गुरु होने तो चाहिए, वे हैं कहां? इसलिए मैं यह नहीं कहता कि गुरु को आदर दो। मैं तो यह कहता हूं, जिसके प्रति तुम्हारा आदर खिंचा हुआ चला जाए, उसे गुरु समझ लो। मां-बाप को आदर मिलना नहीं चाहिए; दिया नहीं जाना चाहिए; मांगा नहीं जाना चाहिए। यह तो हद्द हो गई। अगर एक मां अपने बेटे से कहे कि तुम मुझे आदर दो, यह किस बात की खबर हुई? यह इस बात की खबर हुई कि वह मां मां होने में समर्थ नहीं हो सकीं। नहीं तो आदर तो मिलता। एक पिता अपने बेटे से कहे, मुझे आदर दो, क्योंकि मैं तुम्हारा पिता हूं। यह बात भी अगर कहनी पड़े और समझानी पड़े, तो बात खत्म हो गई। यह पिता पिता होने के योग्य नहीं था।

जब भी आदर मांगा जाता है तो समझ लेना चाहिए, समाज में आदर पाने योग्य लोग समाप्त हो गए। सचमुच योग्य व्यक्ति कभी आदर नहीं मांगता, सम्मान नहीं मांगता। और जिस व्यक्ति को इस बात का अहसास है कि वह जो कह रहा है, सच है, वह कभी यह नहीं कहता कि मेरी बात को प्रमाण मान लेना। जिस आदमी को अपनी बात पर शक होता है, वह हमेशा जोर देकर कहता है कि मेरी बात प्रमाण है, मैं जो कह रहा हूं, वह सत्य है। जिस आदमी को शक होता है अपनी बात पर, वह यह कहता है कि मैं जो कह रहा हूं, वह प्रमाणित है, इस पर शक करोगे, गर्दन काट देंगे। लेकिन जिसको अपनी सच्चाई पर, अनुभव पर, जिसे सीधा बोध होता है कि मैं जो कह रहा हूं, वह सच है, वह कभी ऐसा नहीं कहता। वह कहता है कि मुझे दिखाई पड़ता है कि यह सच है, तुम भी सोचना और खोजना। क्योंकि उसे इस बात का पता है कि अगर दूसरे व्यक्ति ने सोचा और खोजा, तो वह निश्चित ही इस नतीजे पर आ जाएगा, जो मैं उससे कह रहा हूं। लेकिन जिसको यह डर होता है कि मैं जो कह रहा हूं, पता नहीं, वह सच है या झूठ, वह कहता है, यह प्रमाणिक है। और मेरी बात को इसलिए मान लेना कि मैं तुम्हारा पिता हूं; इसलिए मान

लेना कि मैं गुरु हूं; इसलिए मान लेना कि मेरी उम्र तुमसे ज्यादा है। ये बातें सब कमजोरी के लक्षण हैं और झूठ के लक्षण हैं, सत्य के लक्षण नहीं हैं।

इसलिए कोई गुरु कभी नहीं कहता कि मेरी बात को प्रमाण मान लेना। वह कहता है, खोजना, अन्वेषण करना। वह यह नहीं कहता कि मेरी बात मान लो कि यही सच है। जो आदमी ऐसा कहता है, वह गुरु नहीं है, वह तो शत्रु है, क्योंकि वह आपके भीतर सोच-विचार के पैदा होने के बीज को नष्ट कर रहा है। वह आपको विश्वास की तरफ ले जा रहा है। विश्वास आपको अंधेपन की तरफ ले जाएगा। कल कोई दूसरा आदमी कहेगा कि मेरी बात मान लो, क्योंकि मेरी उम्र भी ज्यादा है, फिर आप उसकी बात भी मान लेना। परसों कोई तीसरा आदमी कहेगा कि मेरी बात मान लो, तो उसकी बात भी मान लेना।

सोवियत रूस में उन्नीस सौ सत्रह में क्रांति हुई। वहां के लोग मानते थे कि ईश्वर है, विश्वास करते थे कि ईश्वर है। पुरोहित कहते थे, पादरी कहते थे, ईश्वर है; तो वे मानते थे। पुरोहित बड़ा आदमी था। गांव में उसकी इज्जत थी। उसके तगमे चमकते थे; उसके कपड़े चमकते थे। चर्च, उसका बड़ा मकान। पुरोहित की बड़ी इज्जत थी। खुद बादशाह भी आता तो पुरोहित के पैर छूता था। तो पुरोहित के हाथ में शक्ति थी, पॉवर था। तो पुरोहित कहता था, जो मैं कहता हूं, वही सत्य है। मैं कहता हूं कि क्राइस्ट कुंआरी लड़की से पैदा हुए, तो लोग मानते थे कि हुए। जब हुकूमत बदल गई और कम्युनिस्ट हुकूमत में आ गए और उन्होंने पुरोहितों को निकाल कर बाहर कर दिया और पुरोहित दीन-हीन हो गए, तो पॉवर बदल गया। पॉवर आ गया कम्युनिस्टों के हाथ में और कम्युनिस्टों ने कहाः कोई ईश्वर नहीं है, और उन्होंने कहाः कोई आत्मा नहीं है, कोई परमात्मा नहीं है। लोग इसको मान लिए। कोई आत्मा नहीं, कोई परमात्मा नहीं; ठीक है।

कल मानते थे पुरोहित को, क्योंकि वह ताकत में था। आज कम्युनिस्ट ताकत में आ गए, उन्होंने उसकी बात मान ली कि ठीक है, ये जो कहते हैं वही ठीक है। बीस साल के दोहराने के बाद रूस के लोग कहने लगे, कोई आत्मा नहीं, कोई परमात्मा नहीं, कोई पुनर्जन्म नहीं। ये वे ही लोग हैं, जो कल कहते थे ईश्वर है। और जो कहते थे, कुंआरी मरियम से क्राइस्ट पैदा हुआ। अब वे सब हंसने लगे और कहने लगे, वे सब बेवकूफी की बातें थीं। क्योंकि अब जो ताकत में आ गए, उन्होंने कहा कि वे बेवकूफी की बातें थीं। ये वे ही लोग; इनमें कोई फर्क नहीं पड़ा। ये विश्वास के परिणाम हुआ यह। अगर इन लोगों ने विचार किया होता और अगर इन्होंने क्राइस्ट को या परमात्मा की खोज को विचार से अंगीकार किया होता, तो कोई कम्युनिस्ट इनको यह समझाने में समर्थ नहीं हो सकता था कि ईश्वर नहीं है। इनके भीतर विचार का अनुभव होता। कोई दुनिया की ताकत उसको तोड़ नहीं सकती थी। दुनिया में बड़ा खतरा है विश्वास के कारण। क्योंकि जो लोग विश्वास करते हैं, वे किसी भी चीज पर विश्वास कर सकते हैं। उन्हें कोई भी चीज समझाई जा सकती है, क्योंकि विश्वास

करने वाला आदमी कभी विचार नहीं करता। इसलिए दुनिया की हुकूमतें, दुनिया के पोलिटिशियंस, दुनिया के धर्म-पुरोहित, दुनिया के शोषण करने वाले लोग, कोई भी यह नहीं चाहते कि आप विचार करो। वे सब चाहते हैं, विश्वास करो। क्योंकि आप विश्वास करोगे, तो दुनिया में कोई क्रांति नहीं होगी, कोई बगावत नहीं होगी। आपका शोषण मजे से होता रहेगा, आपको मूढ़ बनाया जाता रहेगा और आप चुपचाप चलते रहोगे। विचार से वे सब घबड़ाए हुए हैं। और विचार के न होने का यह परिणाम है कि पांच हजार साल से आदमी कष्ट उठा रहा है, न मालूम कितने प्रकार के, जिनका कोई हिसाब नहीं है। विचार पैदा होना चाहिए। क्योंकि विचार बगावत है, विचार रिबेलियन है। विचार पैदा होना चाहिए, तो शायद बगावत भी पैदा हो और हम एक नई दुनिया बनाने में समर्थ हो जाएं।
निश्चित ही पुरानी दुनिया तोड़नी पड़ेगी, नई दुनिया बनाने के लिए; पुराने ढांचे मिटाने होंगे, नये आदमी को जन्म देने के लिए।

पुरानी दुनिया भली नहीं थी। क्या आपको पता है, पांच हजार सालों में पंद्रह हजार युद्ध लड़े हैं पुरानी दुनिया ने। इस दुनिया को कोई भला कहेगा? यह दुनिया पागल रही होगी। जहां पांच हजार साल में पंद्रह हजार युद्ध लड़ने पड़े हों, जहां रोज युद्ध करने पड़े हों, जहां रोज हत्या करनी पड़ी हो, यह दुनिया अच्छी दुनिया रही होगी? यह पागलों की दुनिया रही होगी। इस दुनिया को बदल देना जरूरी है। और बदलने के लिए पहला सूत्र है, विश्वास करना नहीं, विचार करना, खोजना विवेक से, अपने प्राणों की पूरी ताकत से, जो ठीक लगे उसको स्वीकार करना। निश्चित ही जो मां-बाप अपने बच्चों को विचार करने में सहयोगी बनेंगे, बच्चे उनके लिए सदा के लिए आदर से भर जाएंगे। जो मां-बाप अपने बच्चों के लिए विचार और विवेक की शक्ति जगाने में सहयोगी होंगे, वे बच्चे आजीवन उन मां-बाप के प्रति सम्मान का अनुभव करेंगे। जो गुरु आदर नहीं मांगेगा, बल्कि इस तरह का जीवन जीएगा, जो कि बच्चे के भीतर स्वतंत्रता लाए, बच्चे के भीतर विचार और विवेक लाए, उस गुरु के प्रति उन बच्चों के माथे हमेशा के लिए झुक जाएंगे।

आदर तो मिलता है; मांगा नहीं जाता। प्रेम मिलता है; मांगा नहीं जाता। सम्मान मिलता है; खरीदा नहीं जाता। न भय दिखा कर पाया जाता है, न झपटा जाता है। लेकिन वह तभी मिलता है जब हम किसी की आत्मा को विकसित होने में सहयोगी बनते हैं। तो निश्चित ही वह आत्मा सदा के लिए ऋणी हो जाती है, वह आत्मा हमेशा के लिए अनुगृहीत हो जाती है, एक ग्रेटिटयूड उसके भीतर पैदा हो जाता है। क्या आप अपने बच्चों को स्वतंत्र करने में सहयोगी हो रहे हैं? अगर हो रहे हैं, तो ये बच्चे आपको सम्मान देंगे। जितने ये स्वतंत्र होंगे, उतना सम्मान देंगे। क्या इन बच्चों में विचार पैदा कर रहे हैं? अगर इनमें विचार पैदा किया, तो ये अनुगृहीत होंगे। क्योंकि विचार इन्हें जीवन की बड़ी ऊंचाइयों पर ले जाएगा, जीवन के शिखरों पर ले जाएगा, जीवन की गहराइयों में ले जाएगा। विचारपूर्वक ये सत्य को किसी दिन जानने में समर्थ हो सकेंगे। ये आनंदित हो सकेंगे किसी दिन। और

जिस क्षण इनके जीवन में आनंद उतरेगा, उस दिन आपके प्रति इनका ऋण, उस दिन आपके प्रति इनकी कृतज्ञता, उस दिन आपके प्रति इनकी धन्यता का कोई पारावार न होगा, कोई सीमा न होगी।

दुनिया से कृतज्ञता उठ गई है क्योंकि हम अपने बच्चों को परतंत्र कर रहे हैं, स्वतंत्र नहीं। हम अपने बच्चों को गुलाम बना रहे हैं, मुक्त नहीं; हम अपने बच्चों को दासता सिखा रहे हैं, विद्रोह नहीं। सच्चे मां-बाप और सच्चे गुरु बच्चों को विद्रोह सिखाते हैं, ताकि जो गलत है उसे वे तोड़ सकें; और साहस सिखाते हैं, ताकि जो सही है उसे वे निर्मित कर सकें। और बच्चे अगर गलत को तोड़ने में समर्थ हो जाएं और सही को सृजन करने में, तो निश्चित ही, निश्चित ही वे बच्चे सदा-सदा के लिए अपनी पुरानी पीढ़ी के चरणों में सिर को टेक देंगे।

लेकिन अभी जो हो रहा है और आज तक जो होता रहा है, उसने बच्चों को घबड़ा दिया है और एक क्लाइमेक्स पर बात पहुंच गई है जैसे। और सारी दुनिया में युवक पुरानी पीढ़ी के शत्रु हुए जा रहे हैं। इसमें जिम्मा किसका है? इसमें पुरानी पीढ़ी जिम्मेवार है। और अगर पुरानी पीढ़ी ने यह गलती की कि जिम्मेवारी नई पीढ़ी पर सौंपी, तो कोई फर्क न हो सकेगा। लेकिन अगर पुरानी पीढ़ी ने यह समझा कि कुछ बुनियादी भूलें हैं, जिनकी वजह से नई पीढ़ी भटक रही है; जिनकी वजह से नई पीढ़ी के मन में कोई कृतज्ञता का भाव नहीं है, कोई ग्रेटिटयूड नहीं है, कोई सम्मान नहीं है, कोई आदर नहीं है, तो शायद हम नई पीढ़ी में वह भाव पैदा कर सकें, जो कि उसमें होना चाहिए। लेकिन वह मांगा नहीं जा सकता; वह बुलाया नहीं जा सकता; वह कहा नहीं जा सकता कि हमें दो। वह तो हमारे भीतर कुछ होगा परिवर्तन, तो अपने आप मिलता है। अपने आप मिलता है। सुबह सूरज निकलता है और हमारी आंखें उसकी तरफ उठ जाती हैं। बगीचे में फूल खिलते हैं और उनकी सुगंध से हम भर जाते हैं। अगर पुरानी पीढ़ी किसी सूरज को अपने भीतर जन्म दे सके और किसी सुगंध को, तो नई पीढ़ियां, नई पीढ़ियां तो हमेशा अनुगृहीत होने को हैं।

इतनी थोड़ी सी बातें मैंने आपसे कहीं। और कुछ प्रश्न हैं, लेकिन उनका तो उत्तर आज संभव नहीं हो पाएगा। और सभी प्रश्नों के उत्तर जरूरी भी नहीं हैं। इसलिए नहीं कि वे प्रश्न कम महत्वपूर्ण हैं; बल्कि इसलिए कि जो बातें थोड़ी सी मैंने कहीं, अगर वे आपके खयाल में, समझ में आ जाएं, तो उनके आधार पर आप उन प्रश्नों के उत्तर भी पा सकेंगे, जिनके बाबत मैंने कुछ भी नहीं कहा।

मेरा दृष्टिकोण आपके सामने मैंने रख दिया। यह दृष्टिकोण विश्वास कर लेने के लिए नहीं है। मैंने जो भी बातें कहीं, उन पर विश्वास कर लेने की कोई भी जरूरत नहीं है। मैं न तो गुरु हूं, न उपदेशक हूं, न मुझे यह भ्रम है कि जो बात मैं कहूं, उसे आप मान लें। मैंने ये बातें आपके सामने रखीं ताकि आप इन पर सोचें, विचार करें। जरूरी नहीं है कि विचार

करने के बाद मेरी बातें आपको सही ही मालूम पड़ें। लेकिन एक बात है, अगर आपने विचार किया, तो मेरी बातें चाहे आपको गलत मालूम पड़ें लेकिन जितना आप विचार करेंगे, उससे आपके भीतर विवेक की शक्ति विकसित होगी और बड़ी होगी। मेरी बातों का कोई मूल्य नहीं है। लेकिन उन पर विचार करने में आपके भीतर विचार की शक्ति विकसित होगी। और वह विचार की शक्ति विकसित हो जाए, तो आप खुद ही अपने प्रश्नों के उत्तर पा लेने में समर्थ हो जाएंगे।

कोई दूसरा आदमी किसी के प्रश्नों के उत्तर नहीं दे सकता। कोई दूसरा आदमी किसी की प्यास नहीं बुझा सकता। हर आदमी की प्यास अद्वितीय है, यूनीक है। हर आदमी अलग है। हर आदमी बेजोड़ है, उस जैसा कोई दूसरा आदमी नहीं है। हर आदमी का प्रश्न भी बेजोड़ है, उसका उत्तर मेरे पास कैसे हो सकता है? आपका प्रश्न है, इस जमीन पर किसी के पास आपका उत्तर नहीं हो सकता। फिर मैं किसलिए बोल रहा हूं? मैं इसलिए नहीं बोल रहा हूं कि आपको मैं उत्तर दे दूं। मैं इसलिए बोल रहा हूं, ताकि आपको अपने भीतर उत्तर खोजने की विधि, मेथड मिल जाए, सोच-विचार मिल जाए, आप चीजों को सोचने-विचारने लगें, तो आपके भीतर जहां से प्रश्न पैदा हुआ है, वहीं उत्तर भी सदा मौजूद है। और जब अपने भीतर का उत्तर आता है, तो वह उत्तर मुक्त कर देता है। वह उत्तर ही जीवन-दर्शन बन जाता है; वह उत्तर ही जीवन का सत्य बन जाता है; वह उत्तर ही हमारे प्राणों की प्यास को बुझाने वाला जल बन जाता है। उसको खोजें। मुझ पर या किसी पर विश्वास करने से वह नहीं मिलेगा, बल्कि संदेह करने से मिलेगा।

तो मैंने जो बातें कहीं उन पर खूब संदेह करें, उनका खूब विश्लेषण करें, उनको तोड़ें-फोड़ें, उनको बजाएं और परखें। हो सकता है वे सारी बातें गलत हों, तो उन सारी बातों के गलत होने में भी आपको सही की झलक मिलनी शुरू हो जाएगी। और हो सकता है कोई बात उसमें सही हो, तो आपकी खोज-बीन से वह सही आपको दिखाई पड़ जाएगा। और तब उससे मेरा कोई संबंध नहीं होगा; वह सत्य आपका हो जाएगा। और जो सत्य आपका है, वही सत्य है। दूसरों के सब सत्य असत्य हैं। आपका सत्य ही सत्य हो सकता है।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

अंतर की खोज

तीसरा प्रवचन

एक छोटी सी कहानी से मैं आने वाली इन तीन दिनों की चर्चाओं को शुरू करूंगा।

एक राजधानी में एक संध्या बहुत स्वागत की तैयारियां हो रही थीं। सारा नगर दीयों से सजाया गया था। रास्तों पर बड़ी भीड़ थी और देश का सम्राट खुद गांव के बाहर एक संन्यासी की प्रतीक्षा में खड़ा था। एक संन्यासी का आगमन हो रहा था। और जो संन्यासी आने को था नगर में, सम्राट के बचपन के मित्रों में से था। उस संन्यासी की दूर-दूर तक सुगंध पहुंच गई थी। उसके यश की खबरें दूर-दूर के राष्ट्रों तक पहुंच गई थीं। और वह अपने ही गांव में वापस लौटता था, तो स्वाभाविक था कि गांव के लोग उसका स्वागत करें। और सम्राट भी बड़ी उत्सुकता से उसकी प्रतीक्षा में नगर के द्वार पर खड़ा था।

संन्यासी आया, उसका स्वागत हुआ, संन्यासी को राजमहल में लेकर सम्राट ने प्रवेश किया। उसकी कुशलक्षेम पूछी। वह सारी पृथ्वी का चक्कर लगा कर लौटा था। राजा ने अपने मित्र उस संन्यासी से कहा, सारी पृथ्वी घूम कर लौटे हो, मेरे लिए क्या ले आए हो? मेरे लिए कोई भेंट?

संन्यासी ने कहा, मुझे भी खयाल आया था, पृथ्वी की परिक्रमा करके लौटूं तो तुम्हारे लिए कुछ लेता चलूं। बहुत चीजें खयाल में आईं, लेकिन जो चीज भी मैंने लानी चाही, साथ में खयाल आया, तुम बड़े सम्राट हो, निश्चित ही यह चीज भी तुमने अब तक पा ली होगी। तुम्हारे महलों में किस बात की कमी होगी, तुम्हारी तिजोरियों में जो भी पृथ्वी पर सुंदर है, बहुमूल्य है, पहुंच गया होगा, और मैं हूं गरीब फकीर, नग्न फकीर, मैं तुम्हें क्या ले जा सकूंगा। बहुत खोजा, लेकिन जो भी खोजता था यही खयाल आता था तुम्हारे पास होगा और जो तुम्हारे पास हो उसे दुबारा ले जाने का कोई अर्थ न था। फिर भी एक चीज मैं ले आया हूं। और मैं सोचता हूं, वह तुम्हारे पास नहीं होगी।

सम्राट भी विचार में पड़ गया कि यह क्या ले आया होगा? उसके पास कुछ दिखाई भी न पड़ता था, सिवाय एक झोले के। उस झोले में क्या हो सकता था? आप भी कल्पना न कर सकेंगे, वह उस झोले में क्या ले आया था? कोई भी कल्पना न कर सकेगा वह क्या ले आया था? उसने झोले को खोला और एक बड़ी सस्ती सी और एक बड़ी सामान्य सी चीज उसमें से निकाली। एक आईना, एक दर्पण। और सम्राट को दिया और कहा, यह दर्पण मैं तुम्हारे लिए भेंट में लाया हूं, ताकि तुम इसमें स्वयं को देख सको।

दर्पण राजा के भवन में बहुत थे, दीवारें दर्पणों से ढकी थीं। राजा ने कहा, दर्पण तो मेरे महल में बहुत हैं। लेकिन उस फकीर ने कहा, होंगे जरूर, लेकिन तुमने उनमें शायद ही स्वयं को देखा हो। मैं जो दर्पण लाया हूं इसमें तुम खुद को देखने की कोशिश करना।

जमीन पर बहुत ही कम लोग हैं जो खुद को देखने में समर्थ हो पाते हैं। और वह व्यक्ति जो स्वयं को नहीं देख पाता, वह चाहे सारी पृथ्वी देख डाले, तो भी मानना कि वह अंधा था, उसके पास आंखें नहीं थीं। क्योंकि जो आंखें स्वयं को देखने में समर्थ न हो पाएं, वे आंखें ही नहीं।

यह बड़ी अजीब सी बात उस फकीर ने उस राजा को कही थी।

आज की सुबह आने वाली इन तीन दिन की चर्चाओं का प्रारंभ मैं भी इसी कहानी से इसलिए करना चाहता हूं, मैं भी एक छोटा सा दर्पण इन तीन दिनों में आपको भेंट करना चाहूंगा जिसमें आप अपने को देख सकें। जीवन, जीवन का अर्थ और आनंद, जीवन का अभिप्राय और जीवन का सत्य केवल उन लोगों को उपलब्ध हो पाता है जो स्वयं को देखने में समर्थ हो जाते हैं। लेकिन हमारी आंखें बाहर देखती हैं भीतर नहीं, और हमारे कान बाहर सुनते हैं भीतर नहीं, और हमारे हाथ बाहर स्पर्श करते हैं भीतर नहीं। हमारी सारी दौड़, हमारे प्रयत्न और प्रयास, हमारे जीवन भर का श्रम कुछ ऐसी संपदा को जुटाने में व्यय और व्यर्थ हो जाता है जो संपदा भी अंततः हमसे छीन जाती है, लेकिन और एक संपत्ति है, एक और संपदा है जो स्वयं को जानने और पहचाने से उपलब्ध होती है। जो उस संपदा को पा लेता है, उसे न केवल जीवन का अर्थ और सत्य मिल जाता है, बल्कि वस्तुतः उसे ही जीवन भी मिल पाता है। क्योंकि उस सत्य को जाने बिना हम जो भी जानते हैं वह सब, वह सब मृत्यु में समा जाने को है और समाप्त हो जाने को है। उस सत्य को जो मनुष्य की आत्मा है जाने बिना हम जीते नहीं, धीरे-धीरे मरते हैं और इस धीरे-धीरे मरने के क्रम को ही जीवन समझ कर भूल कर बैठते हैं। जिसे हम जीवन जानते हैं, वह ग्रेजुअल डेथ, क्रमिक मरते जाने के अतिरिक्त और क्या है।

बच्चा जिस दिन पैदा होता है उसी दिन से मरने की क्रिया शुरू हो जाती है और अंत में जिसे हम मृत्यु कहते हैं वह कोई आकस्मिक घटना नहीं है, बल्कि जन्म के दिन जो प्रक्रिया शुरू हुई थी उसी की समाप्ति है।

रोज हम मर रहे हैं प्रतिक्षण और प्रतिपल, यह मरने कि क्रिया जिस दिन पूरी हो जाती है, कहते हैं, मृत्यु आ गई। लेकिन मृत्यु कहीं बाहर से नहीं आ जाती, मृत्यु हमारे भीतर का निरंतर विकास है। हमारे भीतर ही मृत्यु निरंतर विकसित होती रहती है। मृत्यु वाह्य घटना नहीं, आंतरिक प्रक्रिया है। जन्म के साथ उसका प्रारंभ होता है और मृत्यु के साथ उसकी पूर्णता होती है। तो जिसे हम जीवन कहते हैं वह जीवन नहीं है, बल्कि धीरे-धीरे मरते जाना है।

निश्चित ही यह जो क्रमिक मृत्यु है इस क्रमिक मृत्यु में न तो आनंद हो सकता है, न शांति हो सकती है, न सौंदर्य हो सकता है। मृत्यु तो होगी कुरूप, मृत्यु में तो होगा दुख, मृत्यु तो होगी एक पीड़ा। और इसीलिए हमारा एक पूरा जीवन दुख की एक लंबी कथा है।

शायद ही हममें से कुछ थोड़े से लोग जीवन को जान पाते हों, बाकी सारे लोग जीते हैं जीवन से अपरिचित और अनजान। वह जो स्वयं को देखना है वही जीवन को पा लेना भी है।

एक वृद्ध फकीर के पास किसी ने जाकर पूछा था, कि मैं मृत्यु के संबंध में कुछ जानना चाहता हूं। तो उस वृद्ध फकीर ने कहा था, तुम कहीं और जाओ। अगर मृत्यु के संबंध में जानना है तो किसी और से पूछो, क्योंकि जहां मैं हूं वहां मृत्यु है ही नहीं, वहां सिर्फ जीवन है। मैं जीवन के संबंध में तो जानता हूं, मृत्यु के संबंध में मुझे कोई भी पता नहीं है। लेकिन हमसे अगर कोई पूछे कि जीवन क्या है, तो शायद हमें उलटी बात कहनी पड़े, हमें कहना पड़े कि जीवन अगर जानना है तो कहीं और पूछो, हम तो मृत्यु के सिवाय और कुछ भी नहीं जानते, हम तो मरना जानते हैं जीवन से हमारा क्या संबंध? हमारी क्या पहचान? जीवन से हमारा क्या नाता? और जिनका जीवन से भी नाता नहीं हैं वे भी अगर परमात्मा को जानने चले हों, तो गलती में हैं। और जिनका जीवन से भी नाता नहीं हैं वे भी मोक्ष के संबंध में चिंतन करते हों, तो पागल हैं। जीवन को जो जान लेता है वह परमात्मा को भी जान लेता है, क्योंकि जीवन की समग्रता के अतिरिक्त परमात्मा और कुछ भी नहीं है। और जो जीवन को जान लेता है वह मोक्ष को भी जान लेता है, क्योंकि जहां मृत्यु नहीं है वही मोक्ष है। मैं इसे फिर से दोहराऊं, जो जीवन को जान लेता है वह परमात्मा को भी जान लेता है, क्योंकि परमात्मा जीवन की परिपूर्णता के सिवाय और कुछ भी नहीं, जीवन की समग्रता ही परमात्मा है। और जो जीवन को जान लेता है वह मोक्ष को भी जान लेता है, क्योंकि जहां मृत्यु नहीं है वहां मुक्ति है। मृत्यु के अतिरिक्त और कोई बंधन नहीं है। मृत्यु के अतिरिक्त और कोई परतंत्रता नहीं है। मृत्यु के अतिरिक्त और कोई दुख और कोई अंधकार नहीं है। लेकिन हम जिसे जीवन समझते हैं वह मृत्यु ही है।

एक मुसलमान फकीर का मुझे स्मरण आता है। कभी तो वह एक बहुत बड़े राज्य का सम्राट था। एक रात अपने बिस्तर पर सोया था, करवटें बदलता था, जैसा कि सभी सम्राट बदलते हैं और सो नहीं पाते, तभी उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि ऊपर छप्पर पर कोई चल रहा है, उसने चिल्ला कर पूछा कि आधी रात में छप्पर पर कौन है? ऊपर से आवाज आई किसी आदमी की, माफ करें, मेरा ऊंट खो गया है, उसे मैं खोजता हूं। उस राजा ने कहा, पागल मालूम होते हो! ऊंट खो गया हो तो छप्परों पर नहीं खोजना पड़ता, मकान के छप्परों पर ऊंट मिलेगा? तो वह आदमी ऊपर से हंसा और उसने कहा कि अगर स्वर्ण-सिंहासनों पर शांति मिल सकती है, और अगर हिंसा के द्वारा, लोगों की हत्या के द्वारा, अगर आनंद मिल सकता है, तो छप्परों पर ऊंट भी मिल सकता है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं।

राजा निकल कर बाहर आ गया, उसने अपने आदमी भेजे कि पकड़ो इस आदमी को यह कौन है? उसने एक बड़ी सच्ची बात कह दी थी। लेकिन वह आदमी पकड़ा नहीं जा सका। दूसरे दिन दोपहर में जब वह सम्राट अपने सिंहासन पर दरबार में बैठा हुआ था, तब एक आदमी आया और द्वारपाल से झगड़ा करने लगा। द्वारपाल से उस आदमी ने कहा कि मैं इस धर्मशाला में ठहरना चाहता हूं, इस सराय में रुकना चाहता हूं।

द्वारपाल ने कहा, यह कोई सराय नहीं, राजा का भवन है, राजा का निवास है। लेकिन वह आदमी माना नहीं और उसने कहा कि अगर ऐसा है तो मुझे राजा के समक्ष ले चलें। उसे राजा के सामने लाया गया, उसने राजा से कहा कि मैं कहता हूं इस सराय में मुझे ठहर जाने दें। दो-चार दिन मुझे रुकना है और मैं चला जाऊंगा। राजा ने कहा, पागल हो! यह सराय नहीं है, यह मेरा निवास है। लेकिन वह आदमी हंसने लगा और उसने कहा कि मैं कुछ वर्षों पहले आया था, तब भी यही बात हुई थी और तुम्हारे इस सिंहासन पर कोई दूसरा आदमी बैठा हुआ था, और उसने भी कहा था यह मेरा निवास है। वह आदमी कहां है अब? वह राजा हंसा और उसने कहा कि वे मेरे पिता थे, और अब वे दुनिया में नहीं हैं। उस फकीर ने कहा, और कुछ वर्षों पहले मैं आया था, तब तुम्हारे पिता भी यहां नहीं थे, कोई और आदमी इस सिंहासन पर बैठा था। और तब भी यही बात हो गई थी और मैंने कहा था, इस सराय मैं मुझे ठहर जाने दें, तो उस आदमी ने भी कहा था, यह सराय नहीं यह मेरा निवास है। वह आदमी कहां है? उस राजा ने कहा, वे मेरे पिता के पिता थे, उनको मरे बहुत वर्ष हो चुके। वह फकीर बोला, मैं और भी पहले आया हूं, लेकिन हर बार यहां कोई दूसरा आदमी मिलता है और वह आदमी यही कहता है, यह मेरा निवास है। और जब हर बार आदमी बदल जाते हों, तो मैं इसे सराय न समझूं तो और क्या समझूं? मुझे इस धर्मशाला में दो-चार दिन ठहर जाने दें, क्योंकि आप खुद भी दो-चार दिन के मेहमान से ज्यादा नहीं होंगे। जब मैं दुबारा आऊंगा तो यहां कोई दूसरा आदमी इस सिंहासन पर मुझे यही बातें कहता हुआ मिलेगा।

उस राजा ने उस आदमी को पकड़वा लिया और कहा, मालूम होता है तुम वही आदमी हो जो रात छप्पर पर ऊंट खोज रहे थे? वह आदमी बोला कि निश्चित ही, मैं वही आदमी हूं। और मैं तुमसे यह कहने आया हूं कि जिसे तुमने घर समझ लिया है वह सराय से ज्यादा नहीं है और जहां तुम खोज रहे हो वह छप्पर पर ऊंट खोजने जैसी जिंदगी है।

वह राजा उसी दिन उठा और फकीर हो गया। वह गांव के बाहर जाकर रहने लगा। और गांव में जो लोग भी आते थे, वे उससे पूछते कि बस्ती का रास्ता कहां है? तो वह कहता, उत्तर की तरफ चले जाओ, उत्तर की तरफ बस्ती है। वे लोग उत्तर जाते और पाते कि वहां मरघट है बस्ती नहीं। वे वापस लौटते, उस राजा को कहते, जो अब फकीर हो गया था, तुम्हारा मस्तिष्क तो खराब नहीं है? क्योंकि जहां तुमने भेजा वह मरघट है। वह राजा कहता, जहां तक मेरी समझ है, जिसे तुम बस्ती कहते हो वह मरघट है, क्योंकि वहां हर आदमी मरने को है। आज एक मरेगा, कल दूसरा, परसों तीसरा, वहां कोई भी आदमी बसा हुआ नहीं

है। लेकिन जिसे तुम मरघट कहते हो, वहां जो लोग भी बस गए हैं वे हमेशा को बस गए हैं, वहां से कोई मरता नहीं। इसलिए मैं मरघट को बस्ती कहता हूं और तुम्हारी बस्ती को मरघट कहता हूं।

जिन लोगों ने भी आज तक जीवन को जाना है, उन सबका यही कहना है। जिसे हम जीवन कहते हैं उसे वे मृत्यु कहते हैं और जिसे हम बस्ती कहते हैं उसे वे मरघट कहते हैं। और शायद हमारी उस तरफ आंखें भी नहीं उठतीं जो जीवन है।

जो मृत्यु नहीं है वह आंख उठानी, वह दृष्टि, उस तरफ देखना कैसे संभव हो सकता है? उस प्रक्रिया को ही मैं दर्पण कहूंगा जिसमें आप अपने को देख सकें और उसको जिसकी कोई मृत्यु नहीं है जो कि अमृत है। और ऐसा नहीं है कि आज का आदमी उसे देखने असमर्थ हो गया हो, आदमी हमेशा से असमर्थ रहा है। और ऐसा भी नहीं है कि आज कि दुनिया आत्मज्ञान से हीन हो गई हो, हमेशा से, थोड़े से लोगों को छोड़ कर, हमारा अधिकांश हिस्सा उस दिशा से अंधा रहा है। कोई भूल हो गई है आदमी के साथ, आदमी की संस्कृति में, उसके विचार में, उसके जीने के ढंग में, कोई आधारभूत, कोई बुनियादी गलती हो गई है। जिसकी वजह से कुछ थोड़े से लोग ही जो उस गलती से उभर पाते हैं, उस गलती से मुक्त हो पाते हैं, वे तो स्वयं को, सत्य को और जीवन को जान पाते हैं, शेष सारे लोग केवल आशाओं में जीते हैं, उनकी कोई उपलब्धि नहीं होती। केवल आकांक्षाओं में जीते हैं, उनकी कोई प्राप्ति नहीं होती। केवल सपनों में जीते हैं, सत्य से उनका कोई साक्षात नहीं हो पाता।

वे कौन सी भूल हो गई हैं, उन आधारभूत भूलों के संबंध में आज सुबह में चर्चा करूंगा। और उनसे मुक्त होने के बाबत बाद में।

शायद आप थोड़े विचार में भी पड़ जाएं, क्योंकि जिन बातों को मैं भूल समझता हूं, हो सकता है उन्हीं बातों को आप धर्म समझते रहे हों। लेकिन मैं चाहता हूं कि आप सोच-विचार में पड़ जाएं, क्योंकि जो व्यक्ति विचार में पड़ जाता है उसके लिए आज नहीं कल रास्ता मिल सकता है। लेकिन जो निश्चिंत, अंधा बना बैठा रहता है उसके लिए कोई मार्ग नहीं है।

मनुष्य के मन को निर्माण करने वाली बातों में जो सबसे बड़ी बुनियादी भूल हो गई, जिसकी वजह से वह अपनी तरफ आंख भी नहीं उठा पाता और वे लोग जो निरंतर कहते हैं अपने को जानो, आत्मा को जानो, नो दाई सेल्फ, और इस तरह की बातें कहते हैं, वे लोग भी उसी भूल को दोहराते हैं। और इसलिए बातचीत तो हो जाती है लेकिन कोई अपने को जान नहीं पाता।

वह पहली भूल यह हो गई है कि मनुष्य को हमने इधर पांच हजार वर्षों से श्रद्धा और विश्वास सिखाया है, विवेक और विचार नहीं। हम आदमी को सिखाते रहे हैं विश्वास करने के लिए, और जो आदमी विश्वास कर लेता है उस आदमी की सारी खोज बंद हो जाती है। जो आदमी विश्वास कर लेता है, श्रद्धा कर लेता है, मान लेता है, स्वीकार कर लेता है, उसके भीतर

से सारा अन्वेषण समाप्त हो जाता है। उसकी सारी इंक्वायरी, उसकी सारी खोज, उसकी सारी जिज्ञासा की मृत्यु हो जाती है।

श्रद्धा सबका बड़ा, सबसे बड़ी रुकावट और पत्थर की तरह मनुष्य की आत्मा की खोज पर खड़ी हो जाती है। लेकिन हमें यह कहा जाता रहा है कि हम विश्वास करें, श्रद्धा करें--हम मान लें गीता को, या कुरान को, या बाइबिल को; महावीर को, बुद्ध को, या कृष्ण को, या किसी को भी, चाहे वह कोई हो--चाहे हिंदू हों, चाहे मुसलमान हों, चाहे ईसाई हों, उनकी बातों में कितना भी भेद हो, लेकिन एक बात पर दुनिया के सारे धर्म सहमत रहे हैं, वह यह कि विश्वास करना जरूरी है। और विश्वास का मतलब क्या होगा? विश्वास का मतलब होता है, अंधापन। विश्वास का मतलब होता है, अपनी आंखों पर नहीं, किसी और की आंखों पर श्रद्धा। विश्वास का मतलब होता है, जो मैं नहीं जानता हूं, उसको मान लेना। विश्वास का अर्थ होता है, खुद के विवेक और विचार का आत्मघात।

विश्वास स्युसाइडल है, आत्मघाती है। क्योंकि विश्वास यह कहता है कि अपने से बाहर श्रद्धा का कोई बिंदु है--चाहे वह राम हों, चाहे कृष्ण, चाहे बुद्ध, चाहे महावीर, चाहे गीता, चाहे कुरान, चाहे कुछ और, मेरे से बाहर कुछ है जो मुझे मान लेना है। और स्मरण रखें, जो व्यक्ति मान लेने को राजी हो जाता है वह कभी जान नहीं पाता। क्योंकि मानने का अर्थ ही है, जानने की सारी चिंता, जानने की सारी आकांक्षा, जानने की सारी अभीप्सा छोड़ दी गई। मनुष्य के व्यक्तित्व के निर्वाण में जो सबसे ज्यादा आत्मज्ञान के विरोध में बात खड़ी हो गई है, वे हैं उसके विश्वास, उसकी बिलीफस, उसकी वे स्वीकृतियां जो उसने अनजाने, बिना खुद जाने अंगीकार कर ली हैं और मान लीं, तब वह अंधे की भांति किसी के पीछे चलने को राजी हो जाता है। तब वह सोचता नहीं, तब वह विचारता नहीं, तब वह संदेह नहीं करता, तब वह आंख बंद कर लेता है। क्योंकि खुली आंख होगी तो विचार पैदा होगा, अगर खुली आंख होगी तो चिंतन पैदा होगा, अगर आंख खुली होगी तो संदेह भी पैदा होगा। इसलिए जिसे विश्वास करना है, उसे आंख बंद कर लेनी होती है। आंख अगर बिलकुल ही फूट जाए तो विश्वास पूरा हो जाता है। तब कोई संदेह पैदा नहीं होता, कोई विचार पैदा नहीं होता, कोई जिज्ञासा पैदा नहीं होती। तब जो भी कहा जाता है वह मान लिया जाता है। और ऐसे व्यक्ति को हम धार्मिक कहते रहे हैं। ऐसा व्यक्ति जरा भी धार्मिक नहीं है। और ऐसे धार्मिक व्यक्तियों की वजह से जमीन पर धर्म का अवतरण नहीं हो सका। ऐसे धार्मिक व्यक्तियों की वजह से दुनिया में अधर्म है। ऐसे धार्मिक व्यक्तियों की वजह से हिंदू तो पैदा हो सका, मुसलमान पैदा हो सका, ईसाई और जैन पैदा हो सकें, लेकिन धर्म पैदा नहीं हो सका। धर्म हजार हो सकते हैं? धर्म अनेक हो सकते हैं? धर्म बहुत हो सकते हैं? अगर धर्म सत्य है तो एक ही हो सकता है। हिंदुओं की केमेस्ट्री अलग नहीं होती, हिंदुओं की फिजिक्स मुसलमानों की फिजिक्स से अलग नहीं हो सकती। ईसाइयों का गणित जैनियों के गणित से अलग नहीं हो सकता।

पदार्थ के नियम एक हैं, युनिवर्सल हैं, तो आत्मा के नियम अनेक कैसे हो सकते हैं? अगर जड़ पदार्थ के नियम भी सार्वलौकिक हैं, तो परमात्मा के नियम भिन्न-भिन्न और अलग-अलग कैसे हो सकते हैं? लेकिन जमीन पर कोई तीन सौ धर्म हैं, और एक-दूसरे के शत्रु। इन तीन सौ धर्मों के खड़े होने का आधार क्या है? ये किस बुनियाद पर खड़े हुए हैं? अगर सोच-विचारशील मनुष्य होता, तो दुनिया में धीरे-धीरे एक धर्म रह जाता। उसका कोई नाम नहीं होता, उसका हिंदू-मुसलमान नाम नहीं हो सकता था। क्योंकि नामों की जरूरत तभी तक है जब तक बहुत धर्म हों, अगर एक ही नियम शेष रह जाए तो नामों की कोई जरूरत नहीं। और सच्चाई यह है कि न तो परमात्मा का कोई नाम है और न धर्म का कोई नाम है, लेकिन नामों वाले धर्मों के कारण उस बेनाम धर्म को खोजना संभव नहीं हो सका।

और नामों वाले धर्मों के खड़े होने का आधार क्या है?

आधार है विश्वास। इसलिए हिंदू मुसलमान के कितने ही विरोध में हो, ईसाई हिंदू के कितने ही विरोध में हो, लेकिन एक बात पर वे सब सहमत हैं कि विश्वास लाओ, विश्वास करो। विचार विद्रोही है, इसलिए विचार से सभी को डर है। विचार संदेह करता है, डाउट करता है, इसलिए विचार से सभी को भय है। विचार मत करो, स्वीकार करो। संदेह मत करो, श्रद्धा करो। यह शिक्षा रही है। और इस शिक्षा का परिणाम यह होता है कि मनुष्य के भीतर जो सोया हुआ विवेक है उसके जागने पर ताले पड़ जाते हैं, उसके जागरण के आस-पास दीवालें खड़ी हो जाती हैं। उस विवेक के जागने का कोई कारण नहीं रह जाता। अगर कोई आदमी किसी दूसरे के कंधे पर हाथ रख कर आंख बंद करके चलने का अभ्यास करे और वर्ष, दो वर्ष तक अपनी आंख बंद रखे, तो फिर उसकी आंखें काम करना बंद कर देंगी। अगर कोई आदमी अपने पैरों को बांध कर बैठ जाए, तो वर्ष, दो वर्ष में उसके पैर काम करना बंद कर देंगे। जिन अंगों का हम उपयोग बंद कर देते हैं, वे मुर्दा हो जाते हैं। जो आदमी विश्वास कर लेता है, वह विवेक से काम लेना बंद कर देता है। विवेक मर जाता है, रह जाता है विश्वास और विश्वास अंधा है। अंधा विश्वास आत्मज्ञान में नहीं ले जा सकता। आत्मज्ञान के लिए चाहिए आंखों वाला विवेक, अंधा विश्वास नहीं। और जरूरी नहीं है कि विश्वास आस्तिक का ही हो, विश्वास नास्तिक का भी होता है। एक आदमी का विश्वास है कि ईश्वर है, उससे पूछें कि वह जानता है ईश्वर को? अगर वह नहीं जानता और उसने मान लिया, तो उसने अपने जीवन को एक असत्य पर खड़ा दिया।

एक आदमी कहता है, ईश्वर नहीं है। उससे पूछें, वह जानता है कि ईश्वर नहीं है? अगर वह नहीं जानता है और उसने किन्हीं की बातों को मान कर यह स्वीकार कर लिया है कि ईश्वर नहीं है, उसने भी विश्वास कर लिया है, उसने भी अपने जीवन को एक असत्य पर खड़ा कर लिया है।

नास्तिक और आस्तिक दोनों का जीवन असत्य का जीवन है। धार्मिक व्यक्ति न तो आस्तिक होता है, न नास्तिक होता है, धार्मिक व्यक्ति तो खोजी होता है। वह स्वीकार नहीं कर लेता यात्रा के पहले, वह मान नहीं लेता, वह खोज करता है। और जिस दिन उसके प्राण किसी

साक्षात को उपलब्ध होते हैं, उसी दिन, उसी दिन वह जानता है। और उस दिन मानने की कोई भी जरूरत नहीं रह जाती, उस दिन विश्वास करने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। उस दिन वह जानता है। जानना ज्ञान, मुक्ति लाता है। विश्वास, मान लेना बंधन पैदा करता है। और ये बंधन, विश्वास के बंधन हमेशा बाहर होते हैं, क्योंकि विश्वास जब भी हम करते हैं तो किसी पर करते हैं, वह बाहर होगा। इसलिए विश्वास हमेशा बहिर्मुखी है और ज्ञान हमेशा अंतर्मुखी है। जिसे स्वयं को जानना है उसे विश्वास का रास्ता छोड़ देना होगा और ज्ञान के रास्ते पर चरण रखने होंगे।

ज्ञान के रास्ते पर चलने का पहला सूत्र होगा, विश्वास के रास्ते से मन को हटा लेना। हम सारे लोग विश्वास के रास्ते पर हैं। इसलिए चाहे हम मंदिरों में जाते हों, चाहे मस्जिदों में, चाहे शास्त्र पढ़ते हों और पूजा करते हों, हमें स्वयं से साक्षात नहीं हो सकेगा। विश्वास के रास्ते से कभी भी स्वयं का साक्षात न हुआ है और न हो सकता है।

विश्वास सबसे बड़ा अधार्मिक गुण है। मनुष्य के व्यक्तित्व को बांध लेने वाले और अंधा कर देने वाले सूत्रों में विश्वास पहला सूत्र है। इसके पहले कि मैं दूसरे सूत्र की बात करूं, मैं एक बार पुनः आपको यह स्पष्ट कर दूं, नास्तिक भी विश्वासी होता है और आस्तिक भी। इसलिए यह न सोच लें कि मैं विश्वास छोड़ने को कह कर नास्तिकता सिखा रहा हूं। नास्तिक भी विश्वासी होता है और आस्तिक भी। क्योंकि दोनों नहीं जानते। और न जानने में जो भी स्वीकार कर लिया जाता है वह अंधा कर देता है। इसलिए ज्ञान के रास्ते पर पहली बात यह जान लेना जरूरी है कि मैं नहीं जानता हूं। और इस न जानने की स्थिति में कोई भी विश्वास करना खतरनाक है। क्योंकि विश्वास से यह भ्रम पैदा होता है, न जानते हुए यह भ्रम पैदा होता है कि मैं जानता हूं।

मैं एक छोटे से अनाथालय में गया था। और वहां के संयोंजकों ने मुझे कहा कि हम अपने अनाथालय में बच्चों को धर्म की शिक्षा देते हैं। मैंने उनसे कहा कि जहां तक मेरी समझ है, धर्म की कोई शिक्षा हो ही नहीं सकती। धर्म की साधना तो हो सकती है, शिक्षा नहीं। क्योंकि साधना होती है भीतर और शिक्षा होती है बाहर। तो विज्ञान की तो शिक्षा हो सकती है, धर्म की कोई शिक्षा नहीं हो सकती। फिर भी आप क्या शिक्षा देते हैं, मैं जानना चाहूं।

वे मुझे अपने बच्चों के पास ले गए और उन्होंने कहा, आप इन बच्चों से पूछें, तो आपको पता चल जाएगा। मैंने उनसे ही निवेदन किया कि वे ही पूछें, मैं सुनूंगा। सौ के करीब बच्चे थे, उन्होंने उनसे पूछा, ईश्वर है? उन सारे बच्चों ने हाथ उठाए और कहा, ईश्वर है। उन बच्चों को सिखा दिया गया ईश्वर है। वे छोटे-छोटे अनाथ बच्चे, उन्हें जो भी सिखा दिया जाए, वह सीख लेंगे। अगर संयोग से वे रूस में पैदा हुए होते, तो रूस की हुकूमत उन्हें सिखा देती ईश्वर नहीं है। और मैं अगर रूस में जाकर उनसे पूछता, ईश्वर है? तो वे सारे बच्चे कहते, ईश्वर नहीं है। क्योंकि उन्हें सिखा दी गई होती बात, ईश्वर नहीं है। यहां उन्हें सिखा दिया गया है, ईश्वर है। उन्होंने पूछा, यह ईश्वर कहां है? तो उन सारे बच्चों ने हृदय पर हाथ रखे और कहा, यहां।

अतंर की खोज

मैंने एक छोटे से बच्चे से पूछा, हृदय कहां है?

उस बच्चे ने कहा: यह तो हमें बताया नहीं गया। जो हमें बताया गया है वह हम बता रहे हैं। हृदय कहां है यह हमें बताया नहीं गया।

इस बच्चे को हृदय का कोई पता नहीं है। लेकिन इसे इस बात को बता दिया गया है कि ईश्वर यहां है। उसने सीख लिया। इस बचपन की अवस्था में जब कि विचार का अभी कोई विकास नहीं हुआ। सारे धर्मों के लोग बच्चों के साथ जो अन्याय करते हैं, उसका हिसाब लगाना कठिन है। जब कि विचार का कोई जन्म नहीं हुआ, तब हम उन्हें जो भी सिखा दें, वह उनके चित्त में गहरा होकर बैठ जाएगा और जीवन भर वे उसी को दोहराते रहेंगे इस भांति जैसे कि जानते हैं। जब कि वे जानते नहीं हैं। वे बच्चे बड़े हो जाएंगे और जब उनके जीवन में प्रश्न उठेगा, ईश्वर है, तो बचपन से सिखी गई बात उनके भीतर से कहेगी, है। यह सिखी हुई बात, और जब प्रश्न उठेगा, ईश्वर कहां है, तो उनके हाथ मशीनों की तरह उठ जाएंगे और हृदय पर पहुंच जाएंगे और वे कहेंगे, यहां। यह हाथ झूठा है। यह हाथ जो उठ रहा है, यह सच्चा नहीं है। इस बच्चे का कोई भी अनुभव नहीं है कि ईश्वर है और है तो कहां है। लेकिन बचपन से दोहराई गई बात, बहुत बार दोहराई गई बात, दूसरों के द्वारा, खुद के द्वारा, यह भूल जाएगा कि यह बात मैंने सिखी है यह बात मैं जानता नहीं हूं। और तब अज्ञान तो होगा इसके भीतर, ऊपर से झूठा ज्ञान चिपक जाएगा, जो इसे जीवन भर धोखा देगा।

हम सब भी ऐसे ही बच्चे हैं, जो इसी तरह की बातों को सीख कर बड़े हो गए हैं। इसके पहले कि कोई सत्य की खोज में विचार करे, स्वयं को जानने के लिए उत्सुक हो, या परमात्मा की खोज में निकले, उसे अपने से बहुत गहरे में पूछ लेना चाहिए, जो मैं जानता हूं, वह कहीं सीखा हुआ तो नहीं है? अगर वह सीखा हुआ है, तो उससे मुक्त हो जाना चाहिए। क्योंकि जो सीखा हुआ है वह ज्ञान का भ्रम देता है, ज्ञान नहीं।

ज्ञान सीखा नहीं जाता, जाना जाता है। ज्ञान दूसरों से उपलब्ध नहीं होता, खुद में खोदा जाता है और विकसित होता है। शब्द सीखे जाते हैं, ज्ञान उघाड़ा जाता है। ज्ञान की एक डिस्कवरी है, ज्ञान का एक अनावरण है। खुद के प्राणों के भीतर जब हम पर्दों को उघाड़ते हैं, तो वह उपलब्ध होता है जो ज्ञान है। और दूसरों से जो हम शब्द सीख लेते हैं, सिद्धांत सीख लेते है और शास्त्र सीख लेते हैं वह ज्ञान नहीं है। और जो आदमी जितना सीखे हुए शब्दों में खो जाता है उस आदमी की ज्ञान की तरफ यात्रा बंद हो जाती है।

विश्वास शब्दों से ज्यादा नहीं है। शब्द बिलकुल निष्प्राण हैं। इसलिए ज्ञान तो इकट्ठा हो जाता है शब्दों में और दिखाई पड़ता है कि ज्ञान उपलब्ध हो गया। लेकिन हमारे प्राणों में कोई ज्योति उससे जगती नहीं। हमारे चित्त में कोई आलोक उससे पैदा नहीं होता। हमारे प्राण उससे नाच नहीं उठते और हमारे हृदय की वीणा पर उससे कोई संगीत का जन्म नहीं होता। होगा भी नहीं। क्योंकि शब्द हैं निष्प्राण, विश्वास है अंधे, श्रद्धा है थोथी, उससे कुछ होगा नहीं। उससे हट जाना जरूरी है। और हटने के लिए कुछ और नहीं कहना होगा, अगर हम

ठीक से अपने चित्त के सारे ज्ञान को खोज डालें, तो हमें पता चल जाएगा कि यह ज्ञान सब सीखा हुआ है, इसलिए झूठा है। अज्ञान हमारा इससे कहीं ज्यादा सत्य है।

सुकरात को उसके मित्रों ने एक दिन जाकर कहा, एथेंस में सारे वृद्धजन कहते हैं कि सुकरात महाज्ञानी है। सुकरात ने उन मित्रों को कहा, जाओ और उनसे कहना, ऐसी झूठी बात न कहें, क्योंकि सुकरात खुद यह कहता है कि वह ज्ञानी नहीं है महाअज्ञानी है। और सुकरात ने कहा, जब मैं छोटा था और मेरी अवस्था थोड़ी थी, तब मुझे यह खयाल था कि मैं जानता हूं। फिर मैं जवान हुआ, मेरी समझ बड़ी, तो मेरे जानने के भवन की बहुत सी ईंटें और दीवालें गिर गईं, और मेरे ज्ञान के भवन में बहुत छेद हो गए, और मेरी समझ में आने लगा कि मैं क्या जानता हूं, बहुत कम जानता हूं। लेकिन जैसे-जैसे में वृद्ध हुआ और मेरी खोज गहरी हुई और मेरी आंखें ज्यादा सतेज हुईं, तो मैंने पाया कि वह भवन जो ज्ञान का बचपन में मालूम होता था बिलकुल गिर गया है, अब उसकी कोई दीवालें नहीं रह गईं। और जैसे-जैसे में वृद्ध होता जा रहा हूं मुझे समझ में आ रहा है कि मैं नहीं जानता हूं।

आप हैरान होंगे, जानने का भ्रम बहुत चाइल्डीश, बहुत बचकाना है। न जानने की समझ बहुत गहरी, बहुत विज़डम से, बहुत बुद्धिमत्ता से भरी हुई है। क्योंकि जानने का भ्रम विश्वासों से पैदा होता है। और जब समझपूर्वक दिखाई पड़ता है कि विश्वास तो उधार हैं, बारोड हैं, दूसरों से लिए हुए हैं, मेरे नहीं हैं, तो वे टूट जाते हैं और भीतर दिखाई पड़ता है अतल अंधकार, अतल अज्ञान, स्टेट ऑफ नॉट नोइंग, न जानने का बोध, न जानने की अवस्था का अनुभव होता है।

पहला सूत्र है आत्मज्ञान कि दिशा में "मैं नहीं जानता हूं' इस बात को जानना। यह सत्य है कि मैं नहीं जानता हूं, और इस सत्य से जो शुरू करेगा वह अंततः परम सत्य को उपलब्ध हो जाता है। लेकिन जो इस असत्य से शुरू करेगा कि मैं जानता हूं, ईश्वर है, आत्मा है, उसकी यात्रा कभी सत्य पर कभी पूरी नहीं हो सकती। क्योंकि जो हम बीज में बोते हैं वही हमें फसल भी काटनी होती है। अगर बीज ही असत्य के बोए गए, तो फसल सत्य की नहीं काटी जा सकती।

विश्वास असत्य है, क्योंकि वह स्वयं का जाना हुआ नहीं। और इसलिए उसके आधार पर जो अपने भवन को खड़ा करेगा, उसका भवन झूठा होगा, वह ताश के पत्तों की तरह होगा, जिंदगी की हवाएं उसे उड़ा देगीं और नष्ट कर देगीं। वह भवन सच्चा नहीं है।

इसलिए पहली बात, एक सत्य से ही बात शुरू करें और वह सत्य यह है कि हम नहीं जानते हैं। और जो हम जानते हैं, वह भ्रामक है, उधार है, और दूसरों का है। मनुष्य के व्यक्तित्व के भ्रांत हो जाने में, श्रद्धा और विश्वास पहला कारण है। श्रद्धा और विश्वास से उलटा क्या होगा? अश्रद्धा, अविश्वास। नहीं, डिक्शनरियां अक्सर झूठ बोल देती हैं, शब्दकोश अक्सर झूठ बोल देते हैं। अगर शब्दकोश में खोजने जाएंगे तो विश्वास का उलटा है अविश्वास। श्रद्धा का उलटा है अश्रद्धा। लेकिन मैं आपसे कहता हूं, अश्रद्धा और अविश्वास उलटे नहीं हैं, सजातीय हैं, विश्वास के बंधु हैं। विश्वास का ही भाई है अविश्वास, श्रद्धा की ही

बहन है अश्रद्धा, वे विरोधी नहीं हैं। विरोधी इसीलिए नहीं हैं कि अश्रद्धा भी अविचार है, वह भी विवेक नहीं है। अविश्वास भी अविचार है, वह भी विचार नहीं है। जब हम जानते ही नहीं हैं तो श्रद्धा करना भी अज्ञान है और अश्रद्धा करना भी। ईश्वर पर अश्रद्धा भी वही कर रहा है जो नहीं जानता और श्रद्धा भी वही कर रहा है जो नहीं जानता।

श्रद्धा और अश्रद्धा दोनों से अलग कोई बात है, दोनों से विरुद्ध और उलटी भी कोई बात है। वह बात है, विवेक; वह बात है, विचार; वह बात है, मन का खुला होना, ओपननेस। श्रद्धा भी मन को बंद कर देती है, अश्रद्धा भी मन को बंद कर देती है। द्वार बंद हो जाते हैं। हम राजी हो जाते हैं किसी एक बिंदु पर कि ठीक है, पड़ाव आ गया, जान लिया हमने कि ईश्वर नहीं है या ईश्वर है, दोनों हालत में मन के द्वार बंद हो जाते हैं। और जो क्लोज्ड माइंड है, बंद मन है वही मन तो जानने में असमर्थ है।

खुला हुआ मन चाहिए। खुले हुए मन का अर्थ है: यह जानना चाहिए कि मैं नहीं जानता हूं। इसलिए न श्रद्धा और न अश्रद्धा, दोनों मेरे पड़ाव नहीं हो सकते। श्रद्धालु को अश्रद्धालु बनाया जा सकता है, कोई कठिनाई नहीं। अश्रद्धालु को श्रद्धालु बनाया जा सकता है। कोई कठिनाई नहीं है। वे परिवर्तन बहुत आसान हैं। जो आदमी जवानी में अश्रद्धालु होता है, अविश्वासी होता है, बुढापे में श्रद्धालु हो जाता है। जो आदमी आज अश्रद्धा करता है, कल श्रद्धा करने लगता है। श्रद्धा और अश्रद्धा में कोई विरोध नहीं है, एक-दूसरे में यात्रा हो जाती है।

एक गांव में तो एक बार ऐसा हुआ। एक गांव में दो बड़े विचारक थे। ऐसा गांव के लोग कहते थे। विचारक वे न रहे होंगे। एक आस्तिक था, एक नास्तिक था। एक मानता था ईश्वर है और एक मानता था ईश्वर नहीं है। और दोनों के बड़े तर्क थे। अपने-अपने विश्वास के लिए उन्होंने बड़े आर्ग्युमेंट, बड़े तर्क इकट्ठे कर रखे थे। आखिर गांव के लोग उनसे परेशान हो गए, किसकी माने और किसकी न माने। सारे गांव के लोगों ने कहा कि आप दोनों विवाद कर लें, हम सुन लें, और जो जीत जाए उसको हम मान लेंगे। आधा गांव एक को मानता था, आधा गांव दूसरे को। सारा गांव इकट्ठा हुआ एक रात्रि और उन दोनों विद्वानों में विवाद हुआ। आस्तिक ने अपने तर्क दिए और सिद्ध किया कि ईश्वर है और नास्तिक ने उसके तर्कों का खंडन किया और तर्क दिए कि ईश्वर नहीं है।

दोनों रात भर विवाद करते रहे। सुबह होते-होते दोनों एक-दूसरे के गले लग गए। गांव समझ ही न पाया कि बात क्या हुई। दोनों घर चले गए। बाद में गांव को पता चला, जो आस्तिक था वह नास्तिक के तर्क से प्रभावित होकर नास्तिक हो गया और जो नास्तिक था वह आस्तिक से प्रभावित होकर आस्तिक हो गया। जो आस्तिक था वह नास्तिक हो गया, जो नास्तिक वह आस्तिक हो गया। गांव में झगड़ा वैसा का वैसा कायम रहा।

आस्तिकता नास्तिकता में बदल सकती है। नास्तिकता आस्तिकता में बदल सकती है। इसमें कोई कठिनाई नहीं। दोनों अंधे हैं, उनमें बदलाहट हो सकती है, सजातीय हैं। लेकिन एक तीसरे तरह का मनुष्य भी होता है जो आस्तिक भी नहीं होता और नास्तिक भी नहीं होता। एक तीसरे तरह का मन होता है, एक तीसरे तरह का माइंड होता है, जो कहीं भी न

इनकार में, न स्वीकार में अपनी श्रद्धा को रखता है, जो कहता है, मैं नहीं जानता हूं। इसलिए मैं खोजना चाहता हूं, लेकिन मानना नहीं चाहता। इस आदमी को मैं धार्मिक आदमी कहता हूं। यह रिलीजस माइंड का पहला लक्षण है। न वह स्वीकार करता है, न अस्वीकार। लेकिन खोजने को तत्पर और उत्सुक, निरंतर खुले हुए मन से राजी, जहां भी सत्य हो वहां पहुंचने के लिए तैयार, उसका कोई पक्ष नहीं है अपना। ऐसा जो निष्पक्ष मन है वही तो सत्य को खोज सकेगा। जिसका पक्ष है, वह तो बंध गया, उसकी खोज बंद हो गई। जिसकी कोई प्रिज्युडिस है, जिसका कोई आग्रह है, वह तो बंध गया। वह तो कोशिश करेगा कि मेरा आग्रह ही सत्य सिद्ध हो जाए। लेकिन धार्मिक आदमी वह है जिसका कोई आग्रह नहीं, जो यह नहीं कहता कि जो मैं कहता हूं वह सत्य है, बल्कि जो यह कहता है, जो भी सत्य हो, मैं उसे हमेशा खोजने को तैयार हूं, मेरे द्वार खुले हुए हैं।

क्या आपके द्वार खुले हुए हैं?

अगर आपके द्वार खुले हुए हैं तो आपको वह दर्पण उपलब्ध हो सकता है जिसमें आप स्वयं को और सत्य को जान सकें। और उसी सत्य का अनुभव परमात्मा का अनुभव बन जाता है। लेकिन अगर आपके द्वार बंद हैं--अगर आप हिंदू हैं, अगर आप मुसलमान हैं, अगर आप जैन हैं, पारसी हैं, अगर आप आस्तिक हैं, नास्तिक हैं, ये हैं, वे हैं, तो आपके द्वार बंद हैं। और आप चाहे लाख उपाय करें, आप उस दर्पण को उपलब्ध नहीं हो सकेंगे। क्योंकि वह दर्पण केवल निष्पक्ष, निर्दोष मन को ही उपलब्ध होता है।

निष्पक्ष हो जाना जरूरी है। और निष्पक्ष वही हो सकता है जो अपने विश्वासों की व्यर्थता को समझ ले। नहीं तो निष्पक्ष आप कैसे हो सकेंगे? पक्षों के कारण धर्म की हत्या हुई है। धर्म के नाम पर कितनी हत्याएं हुई हैं, कोई हिसाब? कितने मकान जलाएं गए हैं, कितने आदमी मारे गए हैं, कितने बच्चे, कितनी स्त्रियां, लाखों में उनकी संख्या होगी, करोड़ों में। क्या धर्म के नाम पर हत्याएं हो सकती थीं? और अगर धर्म के नाम पर इतनी हत्याएं हो सकती हैं तो फिर अधर्म के नाम पर क्या होगा?

नहीं, ये धर्म के नाम पर हुईं। ये पक्ष के नाम पर हुईं। और पक्ष को हम धर्म समझते रहे हैं, जो कि भूल है। पक्ष धर्म नहीं है। धर्म तो है अत्यंत निष्पक्षता, धर्म तो है अत्यंत अनप्रिज्युडिस्ड हो जाना, सारे पक्षों से मुक्त हो जाना। लेकिन पक्ष से मुक्त होगा वही, जो विश्वास की व्यर्थता को समझ ले। नहीं तो पक्ष से मुक्त नहीं हो सकता। विश्वास बनाता है पक्ष को, अगर विश्वास हट जाए तो पक्ष हट जाता है। तब रह जाता है निपट खालिस मन, बिना बंधा हुआ, बिना किसी जंजीर के खुला हुआ मुक्त। वही जा सकता है परमात्मा तक और उसी तक परमात्मा भी आ सकता है।

मैंने एक छोटी सी कहानी सुनी है।

एक चर्च में एक रात एक आदमी ने द्वार खटखटाया, उसके पादरी ने द्वार खोला। काश, उसे पता चल जाता कि बाहर खड़ा हुआ एक काला आदमी है, तो वह द्वार ही न खोलता। उसने

सोचा होगा कि कोई सफेद आदमी है। वह गोरे लोगों का चर्च था। उसने द्वार खोला, देखा, एक नीग्रो द्वार पर खड़ा है। उसने उस काले आदमी को कहा, कैसे यहां आना हुआ?

उसने कहा, मैं भी भगवान के मंदिर में आना चाहता हूं।

पुराने दिन होते तो वह पादरी कहता, शूद्र हट जा यहां से! यहां तेरे लिए कोई जगह नहीं है! और यहां तू आया, तो सीढ़ियां साफ कर, तेरी छाया पड़ी तो मंदिर अपवित्र हो गया! लेकिन दिन बदल गए हैं। लेकिन आदमी का दिल थोड़े ही बदला है। भाषा बदल गई हैं, हिसाब बदल गए हैं, लेकिन भीतर वही आदमी खड़ा है। उस पादरी ने कहा, मेरे मित्र, उसने नहीं कहा शूद्र, उसने कहा, मेरे मित्र, जरूर भगवान के मंदिर में तुम आना, लेकिन जब तक मन शांत और पवित्र न हुआ हो, तब तक आने से फायदा क्या? तो जाओ, पहले मन को पवित्र और शांत करो, फिर आना। तभी भगवान से मिलना हो सकता है।

उस पादरी ने सोचा, न होगा मन शांत और न होगा पवित्र और न इसे दुबारा दरवाजा खोलने कि जरूरत पड़ेगी।

वह नीग्रो वापस चला गया। महीने पर महीने बीत गए। कोई तीन-चार महीने बाद बाजार में उस पादरी को वह नीग्रो दिखाई पड़ा। देख कर उसे हैरानी हुई! उस आदमी की आंखों में कोई चमक और आ गई थी, वह नीग्रो कुछ और ही तरह का व्यक्तित्व ले लिया मालूम पड़ता था, उसके आस-पास एक बड़ी शांति की, एक बड़ी प्रार्थनापूर्ण हवा थी, उसके आस-पास एक नई सुगंध पैदा हो गई थी जैसे और एक नया आलोक। उस पादरी ने उसे रोका और पूछा, तुम दुबारा नहीं आए?

उस नीग्रो ने कहा, मैं तो आता था, लेकिन बड़ी गड़बड़ हो गई। तुमने कहा था, मन शांत करो और पवित्र, मैं मन को शांत करने में, पवित्र करने में लग गया। मेरे दिन और रात प्रार्थनाओं से भर गए और मेरे मन में एक ही, एक ही प्रार्थना और प्यास काम करने लगी। महीने बीत गए। एक रात मैं सोया, जब सोया तो मन मेरा एकदम शांत और मौन था। रात मैंने एक सपना देखा, सपने में मैंने देखा, परमात्मा मेरे सामने खड़े हैं और मुझसे पूछ रहे हैं कि तू क्यों इतनी प्रार्थनाएं कर रहा है? क्या चाहता है? तो मैंने कहा, मैं जो हमारे गांव का जो चर्च है, जो मंदिर है, उसमें प्रवेश चाहता हूं। तो परमात्मा हंसे और उन्होंने कहा, तू बिलकुल पागल है! उसमें तेरा प्रवेश न हो सकेगा। मैं खुद दस सालों से कोशिश कर रहा हूं, वह पादरी मुझे घुसने नहीं देता। मैं खुद हार गया हूं कोशिश करके, वह पादरी मुझे अंदर नहीं आने दे रहा। मैं ही हार गया, तेरा पहुंचना बहुत कठिन है। तू वह खोज छोड़ दे। ज्यादा आसान है मेरे पास आ जाना, चर्च में पहुंचना बहुत कठिन है। और उस चर्च में मैं तो हूं भी नहीं, तू पहुंच भी जाएगा तो उसे खाली पाएगा।

असलियत यह है, उस चर्च के पादरी पर न हंसें, आज तक किसी मंदिर के पुजारी ने भगवान को किसी मंदिर में नहीं घुसने दिया। न किसी मस्जिद में और न किसी चर्च में। आदमी ने धर्म के नाम पर जितने धंधे बनाए हैं उनमें कहीं भी भगवान को घुसने का कोई मौका नहीं। क्योंकि जहां परमात्मा होगा, वहां फिर व्यवसाय नहीं हो सकता। और जहां

व्यवसाय चलाना है, वहां परमात्मा के लिए जगह नहीं हो सकती। और फिर आदमी के बनाए हुए मंदिर इतने छोटे हैं और परमात्मा है इतना विराट, प्रवेश हो भी कैसे सकता है? आदमी खुद इतना छोटा है, तो उसके मंदिर बड़े नहीं हो सकते। उसके बनाए हुए मंदिर उससे भी ज्यादा छोटे होंगे। क्योंकि बनाने वाला जो भी बनाएगा, खुद से बड़ी चीज कभी नहीं बना सकता, उसकी चीज बनाई हुई होगी वह उससे छोटी होगी। और आदमी खुद इतना छोटा है कि वह परमात्मा के मंदिर बनाए यह बात ही पागलपन की और नासमझी की है। आदमी खुद को मिटा दे तो परमात्मा को पा सकता है लेकिन परमात्मा को खुद बनाने कि कोशिश में लग जाए यह पागलपन है।

इधर पांच-छह हजार वर्षों से हम परमात्मा को गढ़ रहे हैं। हमने फैक्टरियां बनाईं जिनमें हम परमात्मा को बनाते हैं। और उन बनाए हुए परमात्मा के नाम पर मंदिर और मस्जिद बनाते। वे आदमी के बनाए हुए मंदिर और मस्जिद बहुत छोटे हैं, इसलिए आपस में टकरा जाते हैं। परमात्मा इतना बड़ा है कि टकराएगा किससे, उसके बाहर और कोई है ही नहीं। लेकिन मंदिर बहुत छोटे-छोटे हैं वे आपस में टकरा जाते हैं और लड़ जाते हैं। मंदिर हमारे पक्षपात हैं, मंदिर हमारी प्रिज्युडिसेस हैं, मंदिर हमारे विश्वास हैं, मंदिर हमारा ज्ञान नहीं है। क्योंकि जब ज्ञान का मंदिर बनता है तो आदमी पाता है वह उसके खुद के भीतर है और सबके भीतर है। तब उसे बनाना नहीं पड़ता। और जब ज्ञान से परमात्मा का अनावरण होता है, तो उसकी मूर्ति नहीं गढ़नी नहीं होती, क्योंकि उसकी कोई मूर्ति नहीं हो सकती। और उसका नाम नहीं रखना होता, क्योंकि उसका कोई नाम नहीं हो सकता। जब ज्ञान के परमात्मा का अनुभव होता है, तो पाया जाता है वही है, वही सब कुछ है। लेकिन जब अज्ञान परमात्मा को गढ़ता है, तो बड़े खतरे हो जाते हैं। हमारे सारे विश्वास अज्ञान में गृहीत होते हैं और हमारे सब मंदिर अज्ञान में बनते हैं। और हमारे सारे पक्ष और हमारे सारे विश्वास अज्ञान की संतति है। इसलिए जो इन विश्वासों को पकड़े बैठे रहता है, उसने अपने अज्ञान को ही मजबूत कर लिया। अज्ञान को तोड़ना है, तो विश्वास और पक्षों को तोड़ देना जरूरी है।

चाहिए एक निष्पक्ष मन, चाहिए एक निर्दोष मन, चाहिए एक मुक्त और खुला हुआ मन, वही द्वार बनता है, वही दर्पण बनता है खुद को जानने का।

तो पहला सूत्र आज की सुबह आपसे कहना चाहता हूं: खुला हुआ मन, बंद मन नहीं।

और हम सबके बंद मन हैं। बहुत-बहुत बंद हैं। एकदम बंध हैं, कहीं कोई रंध्र भी नहीं। द्वार तो बड़ी बात कि सूरज की किरण भीतर पहुंच सके। और भीतर सब तरफ से बंद करके अपने विश्वासों को पकड़े हुए हम जीए चले जाते हैं। जी लेते हैं नाम को; लेकिन जीवन को नहीं जान पाते। जी लेते हैं अंधेरे में; आलोक से परिचित नहीं हो पाते। जी लेते हैं शब्दों में; शब्द से कोई साक्षात नहीं हो पाता। तो निवेदन करूंगा, थोड़ा विचार करेंगे। और मेरे कहने से कोई विश्वास छोड़ देगा तो यह नया विश्वास हो जाएगा। अगर मेरी बात मान ली

और विश्वास छोड़ दिया, तो गलती हो गई, यह नया विश्वास हो जाएगा। मेरी बात पर विश्वास नहीं कर लेना।

आसान है यह। सारे मुल्क में जिन मित्रों से मैं निरंतर मिल रहा हूं, उनमें मैं देखता हूं, वे मेरी बात मान लेते हैं, वे विश्वास छोड़ देते हैं मेरे पर विश्वास कर लेते हैं। भूल फिर हो गई। कुएं से बचे और खाई में गिर गए। उससे कोई फर्क न हुआ। मैं कौन हूं, जिस पर आप विश्वास करें? कोई भी कारण नहीं है। मैं जो कह रहा हूं उस पर विश्वास नहीं कर लेना है, उस पर सोचें, विचार करें, चिंतन करें, मनन करें, एक-एक बात को खोजें। और खोजने और विचार करने के लिए जरूरी है, जरूरी है कि बहुत जल्दी न करें, अधैर्य न बरतें। मैंने कहा और आपने मान लिया, तो बहुत अधैर्य हो गया, बहुत जल्दी हो गई। बहुत धैर्य से। मैंने कहा और आपने इनकार कर दिया कि नहीं, ये सब गलत बातें हैं, तो भी जल्दी हो गई, अधैर्य हो गया। तो अभी यहीं से निर्णय ले कर न चले जाएं कि मैंने जो कहा वह सच था या झूठ। जिस आदमी ने भी इतनी जल्दी निर्णय लिया, समझें कि उसने मेरी बात सुनी भी नहीं, समझी भी नहीं। तो जल्दी न करें। हमारी आदतें तो गलत हैं, मैं यहां बोल रहा हूं, आप वहां निर्णय कर रहे होंगे कि क्या ठीक है और क्या गलत है। ये गलत आदतें हैं। सुन लें चुपचाप, चले जाएं चुपचाप, उसे मन में सोचें, देखें, पहचानें, क्या कहा है? क्यों कहा है? कितने दूर तक सच है? और उसकी सचाई की जांच होगी आपके भीतर। अपने विश्वासों को उखाड़ें और देखें, कौन सा विश्वास है जो आपका अपना है? कौन सा जानना है जो आपका अपना है? और जो आपका अपना नहीं है वह आपकी आत्मा नहीं बन सकेगा। जो आपका अपना है वही आपका आत्म बन सकता है, वही आपकी आत्मा बन सकता है।

एक संन्यासियों का आश्रम था। एक युवा संन्यासी आया उस आश्रम में नया-नया। पंद्रह दिन रहा, ऊब गया, घबड़ा गया, और उसने निर्णय किया कि मैं जाऊं। क्योंकि जो वृद्ध गुरु था वहां, उसकी थोड़ी सी बातें थीं, जो दस-पंद्रह मिनट में पूरी हो जाएं। पंद्रह दिन सुनते-सुनते थक गया, वही बातें, वही बातें, कुछ सीखने को वहां नहीं मालूम पड़ता था। तो सोचा उसने कि कल सुबह होते ही निकल जाऊं, यह स्थान मेरे लिए नहीं है। मैं कोई और जगह खोजूं, जहां कुछ सीखा जा सके, जाना जा सके। लेकिन रात एक घटना घट गई और फिर वह उस आश्रम को छोड़ कर कभी नहीं गया। रात एक और नया भटकता हुआ संन्यासी उस आश्रम में आ गया। उस आश्रम के अंतेवासियों की रात बैठक हुई, उस नये आए संन्यासी ने दो घंटे तक बड़ी सूक्ष्म बातें कहीं--वेदांत की, उपनिषदों की, बड़ी सूक्ष्म चर्चा की, बड़ा विश्लेषण किया। वह जो युवा सुबह छोड़ देने को था, उसने सुनी वे बातें, प्रभावित हुआ, हृदय में उसके बातें वे पहुंच गईं और उसके मन को हुआ कि गुरु हो तो ऐसा हो, जो इतना जानता हो, इतना विस्तीर्ण हो जिसका जानना, और उसके मन में यह भी खयाल आया कि मेरा वृद्ध गुरु बैठा हुआ सुन रहा है, उसके मन को कैसा दुख न होता होगा, कैसा अपमान न लगता होगा, कैसी हीनता न मालूम होती होगी इसके समक्ष। दो घंटे के चर्चा बाद उस बोलने वाले संन्यासी ने वृद्ध गुरु की तरफ देखा और कहा, कैसी लगी

मेरी बातें? उस बूढ़े ने जो कहा वह मन में रख लेने जैसा है, उस बूढ़े ने कहा, मेरे मित्र, मेरे बेटे, दो घंटे से तुम्हारी बात सुनने की कोशिश कर रहा हूं, लेकिन तुम तो कुछ बोलते ही नहीं।

तो उस युवा ने कहा, आप पागल हैं क्या? दो घंटे से मैं ही बोल रहा हूं और कौन बोल रहा है?

उस वृद्ध ने कहा, तुम्हारे भीतर से शास्त्र बोलते हैं, सिद्धांत बोलते हैं, लेकिन तुम जरा भी नहीं बोल रहे हो। क्योंकि तुमने जो बोला उसमें तुम्हारा जाना हुआ कुछ भी नहीं। तो तुम्हें भ्रम है कि तुम बोल रहे हो। तुम बिलकुल भी नहीं बोल रहे हो, तुम एक यंत्र की भांति काम कर रहे हो, एक मशीन की भांति। जिसमें से शास्त्र दोहराए जा रहे हैं, शब्द जो सीखे गए हैं, वे बोले जा रहे हैं, लेकिन तुम कहां हो, तुम तो मौजूद भी नहीं हो। क्योंकि अगर तुम मौजूद भी होते, तो तुम्हें यह दिखाई पड़ जाता कि तुम यह मशीन का काम कर रहे हो, एक मनुष्य का नहीं। तो जाओ, अभी खोजो उसे जो तुम्हारा जानना बन सके और जब वह तुम्हारा जानना बन जाएगा, तो मैं कहूंगा कि तुम बोले।

यही मैं आपसे भी कहता हूं। देखना, खोजना, ये जो मेरे भीतर विश्वास, विचार, शब्द इकट्ठे हैं, ये मेरे हैं? अगर ये मेरे नहीं हैं, अगर इनमें से कुछ भी मेरा जाना हुआ नहीं है, तो मेरा जीवन एक निष्फल चेष्टा है, जिसमें मेरी अपनी कोई अनुभूति नहीं, अपनी कोई संपदा नहीं। तो मैं उस उधार शब्दों और उधार संपत्ति पर जी रहा हूं, तो क्या मैं वास्तविक जीवन को जान सकूंगा? क्या ये उधार शब्दों के आधार पर सत्य को पाया जा सकेगा? क्या ये सीखे गए शब्द और इनका दोहराना, मुझे कहीं ले जाएगा? क्या ये विश्वास जो मेरे नहीं हैं, मेरी आत्मा के उदघाटक बन सकेंगे? इसको खोजना जरूरी है। इसे एक-एक विश्वास को जांचना जरूरी है, कसना जरूरी है। कसौटी यही है कि क्या है मेरा अनुभव? और जो मेरा अनुभव नहीं, उससे छुटकारा बहुत आवश्यक है। क्योंकि जो मेरा अनुभव नहीं है वही रोक लेगा उसे आने से जो मेरा अनुभव हो सकता है।

एक अंतिम छोटी सी बात।

एक आदमी एक कुआं खोद रहा था, तो मैंने उसे कुआं खोदते देखा। उसने कंकड़-पत्थर खोद कर बाहर निकाल दिए, मिट्टी खोद कर बाहर निकाल दी, वह खोदता चला गया, खोदता चला गया, आखिर मिट्टी और पत्थर की पर्तें अलग हो गईं, तो पानी के झरने फूट पड़े और वह कुआं पानी से भर गया। फिर मैंने देखा, एक आदमी हौज बना रहा था, तो वह ईंट-पत्थर लाया, मिट्टी लाया, उसने दीवालें बनाईं, ईंट-पत्थर जोड़ कर दीवालें खड़ी कीं और फिर पानी लाया और उस हौज में भर दिया। हौज में भी पानी था और कुएं में भी। और मैं सोचने लगा, दोनों के पानी में कोई फर्क है या नहीं? उलटी सी बात थी, कुएं से ईंट-पत्थर बाहर निकाल दिए थे, पत्थर-मिट्टी बाहर फेंक दी, तो भीतर जो पानी छिपा था वह प्रकट हो गया। और हौज में ईंट-पत्थर लाने पड़े, जोड़ कर दीवाल बनानी पड़ी और तब पानी लाकर उसमें भर देना पड़ा। कुएं में पानी आया, हौज में पानी लाना पड़ा। हौज में

ईंट-पत्थर भी लाकर जोड़ने पड़े, कुएं से ईंट-पत्थर निकाल कर बाहर फेंक देने पड़े। कुएं में जीवित पानी है, उस पानी कि जड़ें हैं, उस पानी के झरने हैं जो दूर सागरों से जुड़े हैं जो अनंत हैं। हौज की कोई, कोई जीवन नहीं, हौज की कोई आत्मा नहीं, वह किसी सागर से नहीं जुड़ा है, उसमें उधार पानी भरा हुआ है। हौज का पानी सड़ जाएगा। कुएं का जीवित पानी है।

ज्ञान भी फिर मैंने जाना दो ही तरह का होता है--हौज की तरह और कुएं की तरह का। जो ज्ञान हम दूसरों से सीख लेते हैं वह हौज की तरह का ज्ञान है। उसमें मस्तिष्क में शब्दों की दीवाल बना कर भीतर ज्ञान को भर लेते हैं उधार, वह सड़ जाता है। पंडित का ज्ञान ऐसा ही होता है जो दूसरों से सीखा होता है। इसलिए पंडित से ज्यादा विकृत मस्तिष्क और किसी का भी नहीं होता है, उसका शब्द उधार होता है।

ज्ञानी का ज्ञान बहुत और तरह का है, कुएं की तरह का है। वह अपने चित्त में जितने भी मिट्टी-पत्थर इकट्ठे हो गए हैं बाहर से, उनको निकाल कर फेंक देता है, खोदता चला जाता है, भीतर जो भी बाहर का है निकाल कर फेंकता जाता है, जो भी बाहर से आया उसे बाहर फेंक देता है। तब एक दिन उसके भीतर उन झरनों का जन्म होता है जो उसके भीतर छिपे थे, जो उसके प्राण हैं, जो उसकी आत्मा हैं। और जब भी झरने खुलते हैं तो उन्हीं झरनों में वह आनंद, वह आलोक बहा चला आता है जिसे कोई परमात्मा कहे, कोई सत्य कहे। और वह सत्य जो स्वयं के झरनों से उपलब्ध होते हैं, और वह जल-स्रोत जो खुद के भीतर खोज लिया जाता है, वही मुक्ति बन जाता है।

वही है जीवन। हम अपने जीवन को दबाए बैठे हुए हैं। उसे उघाड़ना है। वही है अमृत, उसकी कोई मृत्यु नहीं। वही है आनंद, क्योंकि वही है आत्मा। उस आत्मा की खोज में जो दर्पण निर्मित करना है उसका पहला सूत्र मैंने आज आपसे कहा और इन तीन दिन की चर्चाओं में और कुछ सूत्रों पर आपसे कुछ बात करूंगा। उनको सोचेंगे, विचारेंगे। हो सकता है मेरी सारी बात गलत हो। और अगर आपके सोचने-विचारने से यह पता चल जाए कि वे गलत हैं, तो आप एक कदम आगे बढ़ जाएंगे। क्योंकि इतना सोच-विचार आपके भीतर विवेक को पैदा कर देगा। और हो सकता है, मेरी बात सोच-विचार से उसमें से कुछ आपको ठीक दिखाई पड़े। अगर आपके सोच-विचार से उसमें कुछ ठीक दिखाई पड़ा, तो वह आपका हो जाएगा, मेरा नहीं रह जाएगा, उससे मेरा कोई संबंध नहीं। और जो आपका है वही सत्य है, और शेष सब असत्य है।

मेरी इन थोड़ी सी प्रारंभिक बातों को आपने इतनी शांति और मौन से सुना, उसके लिए मैं बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे हुए परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

अंतर की खोज

चौथा प्रवचन

मेरे प्रिय आत्मन्!

एक छोटी सी कहानी से मैं संध्या की इस बातचीत को शुरू करूंगा।

एक राजदरबार में एक बहुत अनूठे आदमी का आना हुआ। उस आदमी का अनूठापन इस बात में था कि उसने उस सम्राट को कहा, तुम इतनी बड़े पृथ्वी के अकेले मालिक हो, तुमसे बड़ा सम्राट कभी हुआ नहीं, तो यह शोभा नहीं देता है कि तुम मनुष्यों जैसे वस्त्र पहनो। मैं तुम्हारे लिए देवताओं के वस्त्र लाकर दे सकता हूं।
देवताओं के वस्त्र न तो कभी देखे गए थे और न सुने गए थे। राजा के अहंकार को प्रेरणा मिली और उसने कहा, कितना भी खर्च करना पड़े, कोई भी व्यवस्था करनी पड़े, मैं तैयार हूं, लेकिन देवताओं के वस्त्र मुझे चाहिए। वह व्यक्ति राजी हो गया कि छह महीने के भीतर मैं वस्त्र लाकर दे दूंगा, लेकिन जो भी खर्च उठाना पड़ेगा; कितना ही खर्च हो उसकी कोई गिनती न रखी जाए, छह महीने के बाद मैं वस्त्र ला दूंगा। राजा राजी हो गया। उसके दरबारियों ने समझा कि यह निरा धोखा है। देवताओं के वस्त्र कहां से लाए जा सकते हैं? यह सिर्फ राजा को लूटने का उपाय है।
...इसलिए दरबारी कुछ कर भी न सके। हजारों रुपये प्रतिदिन वह आदमी ले जाने लगा। देवताओं तक पहुंचने की व्यवस्था करनी थी। फिर देवताओं के द्वारपालों को रिश्वत देने की व्यवस्था करनी थी। फिर वस्त्रों के मूल्य चुकाने थे। और ऐसे रोज-रोज काम निकलने लगे।
लेकिन राजा भी हिम्मत का होगा। छह महीने तक उस आदमी ने जो भी रुपये मांगे उसने दिए। छह महीने के आखिरी दिन उसके घर पर सिपाहियों का पहरा लगा दिया। बहुत संभावना थी कि वह आदमी भाग जाए। लेकिन नहीं, राजा गलती में था, उसके दरबारी गलती में थे, वह आदमी भागा नहीं। नियत दिन पर, नियत समय वह एक बहुमूल्य पेटी को लेकर राजदरबार में उपस्थित हो गया। सारे गांव के लोग इकट्ठे हो गए थे। दरबार में बड़ी चहल-पहल थी। हर आदमी उत्सुक था। वस्त्र ले आए गए थे। देवताओं के वस्त्र पृथ्वी पर पहली दफा आए थे। उसने जाकर बीच दरबार में अपनी पेटी रख दी, पेटी का ताला खोला और राजा से कहा, आप आगे आ जाइए और अपने वस्त्र उतार दीजिए, मैं देवताओं के वस्त्र देता हूं, इन्हें पहन लीजिए। लेकिन एक बात मैं बता दूं, देवताओं ने कहा है, ये वस्त्र केवल उन्हीं लोगों को दिखाई पड़ेंगे जो अपने ही बाप से पैदा हुए हों। ये वस्त्र सभी को दिखाई पड़ने वाले नहीं हैं। ये कोई सामान्य वस्त्र नहीं हैं। तो जो अपने ही पिता से पैदा हुए हैं उनको ये दिखाई पड़ेंगे।

उसने वस्त्र निकालने शुरू किए। उसने कोट निकाला उस पेटी में से, उसके हाथ तो खाली दिखाई पड़ते थे। सारे दरबार के हर व्यक्ति को खाली दिखाई पड़ रहे थे। राजा को भी खाली दिखाई पड़ रहे थे। लेकिन उसने कहा, यह लीजिए कोट, अपना कोट अलग कर दें और इसे पहन लें। राजा को अपना कोट अलग कर देना पड़ा। हाथ खाली दिखाई पड़ रहे थे, उसमें कोई कोट नहीं दिखाई पड़ता था। लेकिन राजा ने सोचा, जब सारे लोग कुछ भी नहीं कह रहे हैं, बल्कि दरबारी जोर से तालियां बजाने लगे और कहने लगे, इतने अदभुत वस्त्र कभी नहीं देखे गए। प्रत्येक को मालूम पड़ रहा था वस्त्र नहीं हैं, लेकिन कौन, कौन यह कहलवाए कि वह अपने पिता से पैदा नहीं हुआ है? यह भय, यह फियर भीतर काम करने लगा। और जब सब लोगों को दिखाई पड़ रहे हों तो मैं क्यों उलझन में पड़ूं? या आप क्यों उलझन में पड़ें? या कोई भी क्यों उलझन में पड़े? प्रत्येक ने यही सोचा। किसी को भी वस्त्र दिखाई नहीं पड़ रहे थे। लेकिन उस दरबार में तालियां गूंजने लगीं और वस्त्रों की प्रशंसा होने लगी और प्रत्येक व्यक्ति दूसरे पड़ोसी से तेजी से प्रशंसा करने लगा, ताकि यह तय हो जाए कि वह अपने ही पिता का पुत्र है।

राजा को भी मजबूरी थी। वह भी हंसा और उसने उस कोट की प्रशंसा की जो कहीं था ही नहीं। उसने अपना कोट उतार दिया और वह कोट पहन लिया। लेकिन राजा को पता न था कि बात और आगे बढ़ेगी। राजा का कमीज भी उतरवा लिया गया और झूठा कमीज उसे निकाल कर दिया गया वह भी उसे पहनना पड़ा। बात शुरू हो गई थी और अब बीच में इनकार करना कठिन था। धीरे-धीरे राजा के सारे वस्त्र उतर गए, वह नग्न खड़ा हो गया।

सारा दरबार देख रहा था कि वह नंगा खड़ा है। राजा देख रहा था कि वह नंगा खड़ा है। लेकिन सारे दरबारी ताली बजा रहे थे और वह वस्त्रों की प्रशंसा कर रहे थे। और वह राजा भी मुस्कुरा रहा था। उसके प्राणों पर आ बनी थी, वह नग्न खड़ा था। लेकिन यह बात कही नहीं जा सकती थी। भय काम कर रहा था। अपने हाथों अपने पिता पर संदेह! अपनी बेइज्जती और अपमान! और इन सारे लोगों के सामने! अपने ही नौकरों-चाकरों के सामने! और जब कि सारे लोग तालियां बजा रहे थे।

उस आदमी ने जो ये वस्त्र लाया था, कहा, पृथ्वी पर पहली बार देवताओं के वस्त्र आए हैं और पहली बार किसी मनुष्य को यह सौभाग्य मिला है, इसलिए उचित है कि आपका जुलूस निकाला जाए। पूरे राजधानी के लोग ताकि देख लें इन वस्त्रों को। वह नग्न राजा बहुत घबड़ाया, लेकिन मजबूरी थी। उसे राजी हो जाना पड़ा। और उस नंगे राजा का जुलूस उस दिन उस राजधानी में निकला। और उस नगर में हर आदमी ने ताली बजाई और कहा कि ये वस्त्र बहुत सुंदर हैं, ऐसे वस्त्र कभी देखे नहीं गए। धन्य है हमारा राजा! और हर आदमी जानता था कि वह राजा नंगा है। लेकिन किसी आदमी में कहने का यह साहस नहीं था कि राजा नंगा है और वस्त्र नहीं हैं।

कौन इसे कहता? कौन इस बात को अपने ऊपर लेता? कौन इस जिम्मेवारी में पड़ता? सभी भयभीत थे। और जो भयभीत है उससे कुछ भी मनवाया जा सकता है। भय कुछ भी बात

मानने को राजी हो सकता है। ऐसे वस्त्रों को मानने को राजी हो सकता है जो कहीं नहीं हैं। ऐसे स्वर्ग और नरक को मानने को राजी हो सकता है जो कहीं नहीं हैं। ऐसी कल्पनाओं और झूठी बातों को मानने को राजी हो सकता है जिनमें कोई सच्चाई नहीं है। लेकिन झूठी बातों को मनवाने के पहले एक बात जरूरी है कि चित्त भयभीत हो जाए, फियर से भर जाए।

यह कहानी मैं इसलिए कह रहा हूं कि जमीन पर मनुष्य ने बहुत सी ऐसी बातें मान रखी हैं, जिनके मानने में भय के अतिरिक्त और कोई भी कारण नहीं है। और उस राजधानी में जिन लोगों ने उन वस्त्रों की तारीफ की थी, आप अपने को उन लोगों से भिन्न मत समझ लेना। आपने भी बहुत से ऐसे वस्त्रों की तारीफ की है जिनका कोई अस्तित्व नहीं है। और आपको दिखाई भी पड़ता है, लेकिन आपके पड़ोसी तारीफ कर रहे होते हैं, और तब आप इतना साहस नहीं जुटा पाते कि भीड़ से अलग खड़े हो जाएं।

भीड़ बहुत बड़ी कमजोरी बन जाती है, भय और भीड़ और चारों तरफ एक ही बात को कहते हुए लोग, फिर इतना साहस जुटा पाना मुश्किल हो जाता है कि आप अकेले खड़े हो जाएं और कह दें कि ये वस्त्र झूठे हैं और राजा नंगा है।

उस राजधानी में भी कोई इतना साहस नहीं जुटा पाया था। एक छोटे से बच्चे ने हिम्मत की थी और अपने पिता से कहा था, पिताजी, मुझे तो राजा नंगा दिखाई पड़ रहा है। लेकिन उसके पिता ने कहा, चुप रह, तू नासमझ है, तू कुछ भी नहीं जानता। मैं अनुभव से कहता हूं, मेरी उम्र मैंने ऐसे ही नहीं गुजार दी है, ये बाल मैंने ऐसे ही धूप में नहीं पका लिए हैं, वस्त्र हैं और बहुत सुंदर हैं। और चुप रह और यह बात मत उठा। तू अभी बच्चा है और तू कुछ भी नहीं जानता है।

बच्चे कभी-कभी सच्ची बातें कहते भी हैं तो बूढ़े उन्हें कहने नहीं देते। क्योंकि बच्चों को पता नहीं है उस भय का जो बूढ़ों को पता है। और बच्चों में अभी वह समझदारी नहीं आई, वह समझदारी जिसका चालाकी दूसरा नाम, वह कनिंगनेस अभी उनमें पैदा नहीं हुई जो झूठी बातों को सच कह सके। उन्हें कई बार सच्चाइयां दिखाई पड़ जाती हैं।

एक छोटे से बच्चे को मंदिर में ले जाएं और एक मूर्ति के सामने कहें कि ये भगवान हैं, प्रणाम करो। वह बच्चा अपने मन में हंसता है और देखता है कि एक मूर्ति रखी हुई है, लेकिन उससे कहा जा रहा है कि ये भगवान हैं और प्रणाम करो। और अगर वह बच्चा कहे कि मुझे तो पत्थर की मूर्ति दिखाई पड़ती है, भगवान नहीं। तो हम कहेंगे, तू नासमझ है, तुझे अभी पता नहीं, हम अपने अनुभव से कहते हैं यही भगवान हैं। और हम उस बच्चे की गर्दन को जबरदस्ती झुकाएंगे। और थोड़े दिनों में बच्चा भी बड़ा हो जाएगा। समझदारी में बड़ा हो जाएगा। और जो आदमी समझदारी में जितना बड़ा हो जाता है उतना चालाक हो जाता है, उतनी सच्चाई से दूर हो जाता है।

उस गांव के सब लोग समझदार थे इसलिए किसी ने भी नहीं कहा कि वस्त्र झूठे हैं। एक नासमझ बच्चे ने यह बात उठाई थी, लेकिन उसकी आवाज दबा दी गई।

सारी दुनिया में यह हुआ है। मनुष्य को भयभीत करके बहुत से असत्य उसे सिखा दिए गए हैं। और भीड़ के दबाव में, भीड़ के वजन में, एक व्यक्ति इतनी नैतिक हिम्मत नहीं कर पाता कि वह खड़ा हो जाए और कह सके वह जो उसे दिखाई पड़ता है। वह अकेला पड़ जाएगा।

धार्मिक आदमी मैं उसे कहता हूं, जो अकेले होने की हिम्मत करता है। जो आदमी भीड़ को स्वीकार कर लेता है वह आदमी धार्मिक नहीं है, वह आदमी कभी धार्मिक नहीं हो सकता। धार्मिक आदमी का पहला लक्षण है, अकेले खड़े होने का साहस। जो उसे दिखाई पड़ता है, उसे स्वीकार करने का साहस और जो उसे दिखाई नहीं पड़ता, उसे अस्वीकार करने का भी साहस धार्मिक आदमी की बुनियादी शर्तें हैं।

लेकिन हम तो जिन धार्मिक लोगों को जानते हैं, वे तो कोई भी अकेले खड़े हुए दिखाई नहीं पड़ते। वे तो सब भीड़ के साथ जुड़े हुए हैं। हिंदुओं की भीड़ है, मुसलमानों की भीड़ है, ईसाइयों की भीड़ है; जैनों की, बौद्धों की भीड़ है और हर आदमी किसी न किसी भीड़ का हिस्सा है और जो भीड़ कहती है वही व्यक्ति भी कहता है। और भीड़ में हर आदमी इसीलिए कहता है कि बाकी लोग भी वही कह रहे हैं।

हर आदमी जानता है, हर आदमी को दिखाई पड़ती हैं बातें। आंखें अंधी नहीं हैं, और कान बहरे नहीं हैं, और मस्तिष्क सोचता है। लेकिन चारों तरफ सारे लोग वही कहते मालूम पड़ते हैं और तब व्यक्ति बड़ा अकेला पड़ जाता है।

इसलिए मैं कहूंगा, पहली बात, और उसी पर आज की संध्या आपसे मुझे बात करनी है, और वह यह है, भय, फियर धार्मिक आदमी का लक्षण नहीं है, क्योंकि जो भयभीत है वह कभी सत्य को नहीं खोज सकेगा और न सत्य को जान सकेगा। जो भयभीत है, वह कभी इस योग्य नहीं हो पाता कि वह सत्य का साक्षात कर सके। उसका भय असत्य को ही मान लेने को मजबूर कर देता है।

लेकिन हमें तो सिखाया जाता रहा है, ईश्वर से भयभीत होने को। कहा जाता है गॉड फियरिंग होने को। कहा जाता है ईश्वर-भीरु होने को। ये शब्द अत्यंत झूठे हैं। गॉड फियरिंग, ईश्वर-भीरु से ज्यादा झूठा और अपमानजनक कोई शब्द नहीं हो सकता। क्योंकि जो व्यक्ति भयभीत है, वह व्यक्ति तो कभी ईश्वर के निकट पहुंच ही नहीं सकता।

ईश्वर और व्यक्ति के बीच भय का कोई संबंध नहीं हो सकता। प्रेम का संबंध तो हो सकता है लेकिन भय का नहीं। और स्मरण रखें, प्रेम और भय सर्वाधिक विरोधी बातें हैं। जहां प्रेम है वहां कोई भय नहीं और जहां भय है वहां कोई प्रेम नहीं। जहां भय है वहां घृणा तो हो सकती है लेकिन प्रेम नहीं हो सकता। और जहां प्रेम है वहां भय कैसा? वहां फियर कैसा? जिसे हम प्रेम करते हैं उसके प्रति हमारे चित्त के सारे भय विलीन हो जाते हैं, उससे हमें कोई भय नहीं रह जाता। और जिससे हम भय करते हैं, उसके प्रति हमारे मन में घृणा पैदा होती है। उससे हमारे बहुत गहरे मन में शत्रुता होती है। और जिससे हम भय करते हैं, उसके निकट तो हम कभी पहुंच ही नहीं सकते।

लेकिन हजारों साल से आदमी को सिखाया जाता रहा है वह भयभीत हो। वह स्वर्ग से डरे कि कहीं स्वर्ग न खो जाए, वह नरक से डरे कि कहीं नरक में न पड़ जाए, वह ईश्वर से डरे, वह डरे इसलिए ताकि वह अच्छा हो सके? और डर से कभी कोई अच्छा हो सकता है? डर तो बुराई की जड़ है। और आदमी को हम सिखाते रहे हैं, डरो, ताकि तुम भले हो सको। और भले आदमी का पहला सूत्र होता है कि वह डरता नहीं।

यह शिक्षा बड़ी उलटी है। क्योंकि जो डरता है वह सच्चा ही नहीं हो सकता, और जो सच्चा नहीं हो सकता वह भला कैसे हो सकता है? लेकिन यह कंट्राडिक्शन, यह विरोध हमें दिखाई नहीं पड़ता रहा। और इसलिए पांच हजार सालों की इस गलत शिक्षा का यह परिणाम है कि दुनिया रोज से रोज बुरी होती गई है।

धर्म भय पर खड़ा था इसलिए धर्म झूठा सिद्ध हुआ। धर्म की सारी शिक्षा भय पर खड़ी हुई थी। हम लोगों को समझाते रहे--पाप करोगे तो नरक के कष्ट झेलने पड़ेंगे, नरक की अग्नि सहनी पड़ेगी, कड़ाहों में, जलते हुए कड़ाहों में, तेल में चुड़ाए जाओगे, आग में डाले जाओगे। आदमी को हम भयभीत करते रहे कि घबड़ा जाओ, घबड़ा जाओ ताकि पाप न कर सको। और प्रलोभन देते रहे स्वर्ग का, वहां अप्सराएं उपलब्ध होंगी, जिनकी उम्र कभी ढलती नहीं, जो सोलह वर्ष की ही बनी रहती हैं। और वहां शराब के चश्मे बहते हैं, स्वर्ग में झरने बहते हैं, न केवल पीना बल्कि डूबना और नहाना उनमें। और वहां कल्पवृक्ष हैं जिनके नीचे बैठ कर सभी इच्छाएं तत्क्षण पूरी हो जाती हैं। और सभी सुख के साधन हैं वहां।

स्वर्ग का हम प्रलोभन देते रहे आदमी को। अच्छे बनो ताकि स्वर्ग मिल सके, बुराई से बचो ताकि नरक जाने से बच सको। इस भय पर और प्रलोभन पर, और भय और प्रलोभन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जिस चीज से हम भयभीत होते हैं उससे उलटी चीज से हम प्रलोभित होते हैं। और जिस चीज से हमारे मन में लोभ पैदा होता है उसके खो जाने से डर पैदा होता है। लोभ और प्रलोभन एक ही सिक्के के दो हिस्से हैं। भय और प्रलोभन, स्वर्ग और नरक एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। और आज तक हमने आदमी के मन को इन्हीं दो सिक्कों के नीचे दबाने की कोशिश की है और इसका परिणाम यह हुआ कि आदमी धार्मिक नहीं हो सका। हो ही नहीं सकता था। क्योंकि जहां लोभ है और जहां भय है वहां धर्म कहां?

लेकिन हजारों वर्ष तक इन शब्दों के दोहराए जाने के कारण, बात बार-बार दोहराए जाने के कारण हम यह भूल ही गए कि हम सोच लें कि हम अधार्मिक क्यों होते जा रहे हैं। हम अधार्मिक रहे हैं, रहेंगे; जब तक भय से धर्म का छुटकारा नहीं हो जाता। जब तक हम मनुष्य के मन को फियरलेस, अभय उपलब्ध नहीं करा देते तब तक कोई आदमी धार्मिक नहीं हो सकेगा।

और चूंकि हर मुल्क में भय के अलग-अलग कारण हैं इसलिए हमें अलग-अलग स्वर्ग और नरक भी बनाने पड़े। अगर तिब्बती से हम पूछें कि तुम्हारा नरक कैसा है? तो वह कहता है, एकदम ठंडा, बर्फ जैसा ठंडा। तिब्बतियों का नरक गर्म नहीं है, क्योंकि तिब्बत में गर्मी भय नहीं है बल्कि आनंद है। तिब्बत में ठंड भय है। लोग ठंड से परेशान हैं तो उनके नरक

में उन्होंने बर्फ जमा दिया है जो कभी नहीं पिघलता। और उस बर्फीली घाटियों में, नरक में डाल दिए जाएंगे लोग जो पाप करेंगे।

तिब्बती आदमी डरता है ठंड से, तो उनका नरक ठंडा है। हम डरते हैं गर्मी से, सूरज तपता है और हम झुलस जाते हैं, तो हमारा नरक गरम है, वहां कड़ाहे जल रहे हैं और आग जल रही है। ये हमारे भय के ऊपर खड़े हुए नरक हैं, इसलिए अलग-अलग हैं। तिब्बतियों का नरक वही नहीं हो सकता जो हमारा नरक है, क्योंकि गर्म स्थान में वे बड़े प्रसन्न होकर नाचने लगेंगे। और अगर हमको हिमाच्छादित घाटियां मिल जाएं तो हम शायद समझेंगे हम कोई हिल-स्टेशन पर आ गए हैं, नरक में नहीं। हम शायद हिमालय की यात्रा को आ गए हैं।

चूंकि हमारे भय हर मुल्क में अलग हैं, इसलिए अगर दुनिया भर के नरकों का इतिहास आप पढ़ेंगे, तो यह समझने में आसानी हो जाएगी कि जिस देश में जो भय है वही उस देश का नरक बन गया। और जिस देश में जिस चीज का प्रलोभन है, वही उस मुल्क के लिए स्वर्ग बन गया।

स्वर्ग और नरक हमारे भय और प्रलोभन के विस्तार हैं। और इनके आधार पर हमने कोशिश की आदमी को धार्मिक बनाने की। यह आधार ही झूठा था। इसलिए पांच हजार साल की संस्कृतियां नष्ट हो गईं, असफल हो गईं, विफल हो गईं। क्योंकि यह आधार ही झूठा था।

आदमी धार्मिक भय से नहीं बनता, आदमी धार्मिक अभय से बनता है। अभय कैसे उपलब्ध हो? और भय क्यों है? कैसे छूटे? कैसे हम उसके बाहर हो जाएं? कौन से कारण हैं जिनकी वजह से हम भयभीत हैं? और उन भयभीत होने की जो चित्त-दशाएं हैं वे हमारे शोषण का, शोषण की बुनियाद बन गई हैं।

पुरोहित और जो लोग धर्म का व्यवसाय करते हैं वे भलीभांति समझ गए हैं कि आदमी के भय के कौन से कारण हैं? और आदमी के शोषण के लिए उन्होंने उनका उपयोग कर लिया है। दुनिया में राजनीतिज्ञों या तथाकथित धार्मिक लोगों ने जो भी शोषण किया है वह सब भय के आधार पर किया है।

एडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है: अगर तुम्हें किसी भी कौम से कोई काम करवाना हो, तो उसे किसी काल्पनिक शत्रु के नाम से भयभीत कर दो, फिर वह कौम कुछ भी करने को राजी हो जाएगी। और यह उसने अपने अनुभव से लिखा है। उसने लिखा है कि अगर किसी कौम को युद्ध पर लड़वाना हो, तो एक झूठा शत्रु पैदा कर दो, जिससे वह भयभीत हो जाए। अगर सच्चा शत्रु मिल जाए तब तो ठीक, नहीं तो झूठा शत्रु खड़ा कर दो। कह दो इस्लाम खतरे में है। कह दो हिंदू धर्म खतरे में है। कह दो भारत खतरे में है कि पाकिस्तान खतरे में है। और बता दो कि खतरा कौन पैदा कर रहा है। दुश्मन खड़ा कर दो, चाहे वह झूठा ही हो। फिर तुम उस कौम को मरने और मारने के लिए राजी कर सकते हो। फिर उससे तुम कोई भी बेवकूफियां करवाने के लिए उसे राजी कर सकते हो। फिर अपनी खुद की आत्महत्या करने को उस कौम के लिए राजी किया जा सकता है।

आदमी भयभीत हो जाए, फिर उसे किसी भी तरह राजी किया जा सकता है। ये दुनिया के जो भी शोषक हैं, इस बात को बहुत भलीभांति जान गए। लेकिन वृहत्तर मानव-समाज, हम सब अब तक भी ठीक-ठीक परिचित नहीं हो पाए हैं कि हमारा शोषण किन आधारों पर हो रहा है।

भय और प्रलोभन के आधार हैं--दान करो, यज्ञ करो, हवन करो, तो स्वर्ग में स्थान मिल जाएगा। मध्य-युग में तो ईसाई, पोप टिकट बेचते रहे हैं आदमी के स्वर्ग जाने के लिए। टिकट खरीद लो और स्वर्ग में स्थान सुरक्षित हो जाएगा।

कैसी-कैसी बेवकूफियां आदमी के साथ की जाती रही हैं जिनका कोई हिसाब है? लेकिन इस टिकट खरीदने की बात पर हम हंसेंगे। और हम एक ब्राह्मण को गाय दान कर दें, ताकि वैतरणी गाय पार करा देगी, तो हम न हंसेंगे। वह हमारी बेवकूफी है। अपनी बेवकूफी पर कोई भी नहीं हंसता। दूसरों की बेवकूफी पर कोई भी हंसने लगता है। लेकिन समझदार आदमी वह है जो अपनी बेवकूफियों पर हंसना शुरू कर देगा।

यज्ञ करो या हवन करो, या जाओ और भगवान की मूर्ति के सामने भगवान की स्तुति करो, स्तुति क्या है सिवाय खुशामद के? क्या है सिवाय परमात्मा की प्रशंसा के? और क्या यह भूल भरी बात नहीं है कि हम यह सोचते हों कि भगवान की प्रशंसा करके हम उसे प्रसन्न कर लेंगे? क्या हमने भगवान को भी एक कमजोर आदमी की शक्ल में नहीं सोच लिया है? किसी आदमी के पास जाते हैं और कहते हैं, आप बहुत महान हो और उसकी छाती फूल जाती है और सिर ऊंचा हो जाता है। शायद हम सोचते हैं, भगवान के सामने खड़े होते हैं कि तुम महान हो और पतित पावन हो, तो शायद वह भी गरूर से और अहंकार से भर जाता हो और खुश हो जाता हो। कैसे पागल हैं हम? या कि हम भगवान को जाकर कहें कि हम कुछ चढ़ा देंगे, कुछ त्याग कर देंगे, कैसी नासमझियां हैं? और इनके आधारों पर हम सोचते हैं कि हम धार्मिक हो जाएंगे? इस तरह हम धार्मिक नहीं हुए, लेकिन धर्म का शोषण करने वालों का एक व्यवसाय जरूर मोटा और तगड़ा हो गया। एक परंपरा जरूर खड़ी हो गई शोषकों की, जो हमारी कमजोरियों का शोषण कर रहे हैं और हमें समझा रहे हैं कि तुम ऐसा करो।

इस तरह के निवेदन, इस तरह की प्रार्थनाएं, इस तरह के यज्ञ, इस तरह के हवन, इस तरह की पूजा, इस तरह तुम करो, तो परमात्मा प्रसन्न होगा और तुम्हें सुख देगा, और तुमने यह नहीं किया तो परमात्मा नाराज होगा और दुख देगा। परमात्मा हमें सुख दे या न दे लेकिन इन पूजाओं और प्रार्थनाओं से जो पूजा और प्रार्थना कराते हैं उन्हें जरूर बहुत सुख मिल जाता है। और हम पूजा और प्रार्थना न करें तो हमें दुख मिलेगा या नहीं यह तो पता नहीं, लेकिन जो पूजाएं और प्रार्थनाएं करवाते हैं वे जरूर दुख में पड़ जाएंगे।

हमारे मन को लोभ दिए गए हैं और भय दिखाया गया है। बहुत प्रकार के लोभ, बहुत प्रकार के भय। क्या इन्हीं भय के कारण ही आप मंदिरों में नहीं जाते हैं? क्या इन्हीं लोभों के

कारण आपने भगवान की स्तुति और प्रार्थनाएं नहीं की हैं? अगर की हों तो जानना कि वे प्रार्थनाएं झूठी थीं और वे मंदिर झूठे थे जिनमें आप गए। वह आपका जाना झूठा था।

लेकिन क्या कभी ऐसे मन को भी आपने अपने भीतर अनुभव किया है जो न लोभ से भरा हो और न भय से, लेकिन प्रेम से परिपूर्ण हो। अगर ऐसे मन को आपने जाना है तो वही मन असली प्रार्थना है, वही मन असली मंदिर है। जहां न लोभ है और न भय है, लेकिन प्रेम है। और प्रेम वहीं होता है जहां लोभ और भय नहीं होते।

क्या करें? कैसे भय से मुक्त हो जाएं?

कुछ लोगों ने भय से मुक्त होने की कोशिशें की हैं, तो वे इस तरह के भय से मुक्त हो गए हैं जो और घबड़ाने वाले और हंसाने वाले हैं। एक आदमी भय से मुक्त होना चाहता है, तो एक सांप पाल लेता है और गले में लटका लेता है और सोचता है कि अगर मैं सांप के साथ रहना सीख गया तो मैं भय से मुक्त हो गया। और ऐसे पागलों की कमी नहीं है जो उसके पैर छूने को भी मिल जाएंगे और कहेंगे यह अभय को उपलब्ध हो गया है। क्योंकि इसने एक सांप गले में लटका रखा है, इसको भय नहीं है।

या कि आदमी सोचता है कि मैं घर-द्वार छोड़ दूं, सड़क पर खड़ा हो जाऊं तो मैं अभय को उपलब्ध हो जाऊंगा। क्योंकि घर के साथ, परिवार के साथ बहुत से भय जुड़े थे। नुकसान हो सकता था, घाटा लग सकता था, पत्नी मर सकती थी, बच्चे बीमार पड़ सकते थे, और न मालूम क्या-क्या हो सकता था। वह सब मैं छोड़ कर सड़क पर आ गया। मैंने सारे भय छोड़ दिए, अब मैं निर्भय हो गया हूं। कोई सोचता हो कि निर्भयता ऐसे आती हो तो वह गलती में है।

एक फकीर की कहानी मैं सुनाऊं, उससे मेरी बात समझ में आ सके।

उस फकीर ने भी इसी भांति चाहा कि वह अभय को उपलब्ध हो जाए, फियरलेसनेस को पा ले। तो उसने जंगल में जाकर, घने जंगलों में, पहाड़ों में जहां कोई आदमी न पहुंचता था, जहां जंगली जानवरों का हमेशा प्राण को ले लेने का भय था, जहां भयंकर विषधर सर्प सरकते थे, वहां उसनें एक कुटी बना ली और रहने लगा। धीरे-धीरे उसकी खबर पहुंचनी शुरू हो गई। धीरे-धीरे गांव-गांव में उसकी चर्चा हो गई। धीरे-धीरे लोग उसके दर्शन को पहुंचने लगे और कहने लगे कि वही है अकेला जो अभय को उपलब्ध हुआ है। वह बूढा हो गया था। कहते हैं उसके पीछे अगर आकर सिंह भी गर्जना करे तो वह लौट कर भी नहीं देखता कि पीछे कौन खड़ा है, वह बैठा रहता जैसा बैठा था। सांप उसके ऊपर चढ़ जाते तो उसको सिहरन भी पैदा नहीं होती थी, उसके रोंगटे भी खड़े नहीं होते थे।

एक नया भिक्षु, एक नया साधु उसके पास पहुंचा। एक संध्या जब कि सूरज ढलने को था, वह वृद्ध साधु बाहर अपनी कुटी के उस निबिड़ वन में एक चट्टान पर बैठा हुआ था नग्न। उसके पास ही वह नया भिक्षु भी जाकर एक छोटे पत्थर पर बैठ गया और उस बूढे साधु से उसने पूछा कि परमात्मा को पाने का रास्ता क्या है? उसका तो एक ही उत्तर था हमेशा से, अभय, भय से मुक्त हो जाओ। और जिस दिन भी तुम भय से मुक्त हो जाओगे, तुम्हारे

चित्त में कोई भय नहीं होगा, उसी दिन परमात्मा अपने द्वार तुम्हारे लिए खोल देगा। यही उसने उससे भी कहा।

जब यह बात ही चलती थी कि तभी एक जंगली जानवर ने आकर पीछे जोर से चिंघाड़ा, आवाज की। वह नया भिक्षु खड़ा हो गया, उसके हाथ-पैर कंपने लगे। वह बूढ़ा भिक्षु हंसा और उसने कहा, अरे, तुम डरते हो! संन्यासी होकर डरते हो! और जहां डर है वहां धर्म नहीं हो सकता। वह युवक बोला, मैं तो डरता हूं। और घबड़ाहट में मुझे बहुत जोर से प्यास लग आई, क्या आप थोड़ा पानी मुझे दे सकेंगे, ताकि मैं इतनी ताकत जुटा सकूं कि मैं गांव तक वापस पहुंच जाऊं। अब मुझे कोई धर्म वगैरह नहीं सुनना है, मुझे वापस जाना है। वह बूढ़ा हंसा और उठ कर अपनी कुटी के भीतर गया। वहां से वह पानी लेकर वापस आया। लेकिन जब वह कुटी के भीतर था तो उस युवक साधु ने जिस चट्टान पर वह बूढ़ा बैठा हुआ था, उस पर एक पवित्र ग्रंथ की पंक्ति लिख दी। एक धार्मिक ग्रंथ की पंक्ति लिख दी जिसको वह बूढ़ा मानता था। एक पत्थर से उठा कर उसने पवित्र मंत्र लिख दिया। बूढ़ा आया, जैसे ही उसने पैर उठा कर चट्टान पर रखना चाहा देखा कि पवित्र मंत्र नीचे लिखा हुआ है, उसका पैर कंप गया और वह नीचे उतर गया।

उस युवक ने, युवक की बारी थी, वह हंसा और उसने कहा, डरते आप भी हैं। भयभीत आप भी हैं और जहां तक मेरे भय का संबंध है वह तो स्वाभाविक है और आपका भय बिलकुल ही अस्वाभाविक है।

पवित्र मंत्र पर पैर न पड़ जाए इससे वह बूढ़ा भी डर गया। जो सिंह की गर्जना से नहीं डरता, जो सांपों के लपट जाने से नहीं डरता, जो निबिड़ अंधकार वन में अकेला रहता है और नहीं डरता, वह भी पवित्र मंत्र नीचे लिखा हुआ है उस पर पैर न पड़ जाए इसलिए डर गया।

उस युवक ने कहा, मैं तो परमात्मा को कभी जान भी लूं, लेकिन स्मरण रहे, आप कभी न जान पाएंगे।

मैं भी आपसे यही निवेदन करना चाहता हूं। भय से मुक्त होने का यह मतलब नहीं है कि बस आती हो तो आप सामने ही खड़े हो जाएं। यह मूढ़ता होगी, ईडियाटिक होगा, यह भय से मुक्त होना नहीं होगा। न ही भय से मुक्त होने का यह मतलब है कि जहां धूप हो वहां आप खड़े हो जाएं, न गड्ढों में कूद जाएं। भय से मुक्त होने का यह मतलब नहीं है।

भय से मुक्त होने का है जो साइकोलाजिकल हैं, जो मानसिक भय हमने तैयार कर रखे हैं, उनसे मुक्त हो जाएं। यह तो जीवन की संवेदना है, बोध है, अगर सांप रास्ते पर है और आप रास्ते से हट जाते हैं तो यह भय नहीं है। यह तो सहज समझ है, यह तो होश है। यह तो स्वस्थ चित्त का लक्षण है। अगर कोई जहर खाने को आपको देता है और आप इनकार करते हैं, या जिस बोतल पर जहर लिखा हुआ है उसे आप नहीं पीते, तो यह तो एक स्वस्थ चित्त का लक्षण है। यह भय नहीं है, यह तो जीवन की सामान्य रक्षा है।

भय दूसरे तल पर हैं, गहरे तल पर हैं, मानसिक हैं। मानसिक तल पर जो भय हैं वे मनुष्य को धार्मिक नहीं होने देते। शरीर के तल पर जो भय हैं वे जीवन के लिए अपरिहार्य हैं, जरूरी हैं। वे तो जिस बच्चे में न हों उसके संबंध में हमें चिंतित हो जाना पड़ेगा। अगर एक बच्चा हो और आग में हाथ डाले और भयभीत न हो, वह बच्चा जिंदा नहीं रह सकेगा। उस बच्चे में बुद्धिमत्ता ही नहीं है।

एक बार ऐसा हुआ कि जापान में एक राजा को सनक आ गई, जैसा कि अक्सर होता है, राजाओं को सनकें आती हैं। सच तो यह है कि जो सनकी नहीं होते वे राजा ही नहीं होते। उस राजा को सनक आ गई। और उसने यह सारे राज्य में खबर करवा दी कि जो लोग भी मंदबुद्धि हैं, उनका कोई कसूर नहीं है मंदबुद्धि होने में, भगवान ने उनको मंदबुद्धि पैदा किया। तो मंदबुद्धि लोग कुछ काम नहीं करते हैं, आलसी हैं, बैठे रहते हैं, उनका कोई कसूर तो नहीं है मंदबुद्धि होने में। तो राज्य से व्यवस्था की जाएगी, जितने मंदबुद्धि हैं उनको राज्य की तरफ से आश्रय दिया जाएगा। वे राज्य के द्वारा बनाए गए आश्रमों में रहें, आनंद से खाएं और मौज करें। उनका कोई कसूर नहीं है कि वे मंदबुद्धि हैं। सारे राज्य में उसने खबर निकाल दी।

हजारों दरख्वास्तें आ गईं कि हम मंदबुद्धि हैं, हमको राज्य की सहायता मिलनी चाहिए। राजा बहुत परेशान हो गया। उसे कल्पना भी न थी कि उसके राज्य में इतने मंदबुद्धि हैं। रोज हजारों दरख्वास्तें आती ही गईं। शायद ही कोई आदमी ऐसा हो जिसने दरख्वास्त न दी हो। कौन इतना नासमझ था? राज्य खाने, कपड़े और रहने की मुफ्त व्यवस्था कर रहा था। राजा घबड़ा गया, उसने सोचा था कि होंगे सौ-पचास, हजार, दो हजार आदमी। तो उसने अपने मंत्रियों को कहा, यह तो बड़ी मुश्किल हो गई। यह कैसे तय होगा कि कौन मंदबुद्धि है? उसके मंत्रियों ने कहा, हर चीज के रास्ते हैं, इंतजाम हो जाएगा। जिन लोगों ने दरख्वास्तें दी हैं उनको खबर कर दी जाए कि वे आ जाएं, उनकी परीक्षा होगी। अगर वे मंदबुद्धि सिद्ध हुए तो राज्य उन्हें शरण देगा। और नहीं सिद्ध हुए तो वापस लौटा दिए जाएंगे। जिन लोगों ने सबसे पहले दरख्वास्त दी थी उनमें से एक हजार लोग बुलवा लिए गए। मंत्रियों ने बड़ी होशियारी का काम किया। उन्होंने घास-फूस के छोटे-छोटे झोपड़े बनाए एक हजार लोगों के रहने के लिए। और उन हजार लोगों को उनमें ठहरा दिया। और रात में उन झोपड़ों में आग लगा दी। जैसे ही आग लगी, लोग बाहर भागे। लेकिन चार आदमी ऐसे भी थे जो कंबल ओढ़ कर अंदर और ठीक से सो गए। जब आग लगी और उनके पड़ोसियों ने उनसे कहा, भागो, आग लगी है, तो उन्होंने कंबल ओढ़ लिया और सो गए। उन्होंने कहा कि अगर किसी की होगी इच्छा तो हमको निकाल बाहर कर दे। आग लगी है तो बाहर कौन जाए, सम्हल कर यहीं सो जाओ। वे चार आदमी चुन लिए गए, वे मंदबुद्धि थे। उनमें आग का भी भय नहीं था। वे और कंबल सौंड़ कर आराम से वहीं ओढ़ कर सो गए थे।

मंदबुद्धि होना और बात है, भयरहित होना और बात है। इसलिए जो मंदबुद्धि हैं, उनको अगर इस तरह के भय से मुक्त होना हो कि ट्रेन के सामने खड़े हो जाएं, या बस के सामने,

या सांप को गले में लटका लें, तो मंदबुद्धियों के लिए यह बहुत आसान है, इसमें कोई कठिनाई नहीं है।

लेकिन अभय का अर्थ मंदबुद्धि नहीं है। अभय का अर्थ संवेदनशून्यता नहीं है। अभय का दूसरा अर्थ है। अभय का अर्थ है, मानसिक तल पर हमने जो भय पाल रखे हैं, उनसे मुक्त हो जाना। हमने कौन से भय पाल रखे हैं? हमने बहुत से भय पाल रखे हैं। मानसिक तल पर हम इतने ज्यादा भयभीत हैं जिसका कोई हिसाब नहीं। आप जब मंदिर में जाकर प्रणाम करते हो तो किस कारण से करते हो? कोई भय काम कर रहा है।

मेरे एक मित्र हैं, वे नियमित जिस मंदिर के सामने से भी निकलें, हाथ जोड़े बिना नहीं रह जाते थे। मेरे साथ एक दिन एक सड़क पर से निकले, कोई तीन मंदिर आए। उन्होंने हर मंदिर के सामने हाथ जोड़े, मेरी वजह से थोड़ा संकोच किया लेकिन फिर भी जैसे ही मेरी आंख बची उन्होंने जल्दी से हाथ जोड़ लिए। मैंने उनसे बात की कि यह क्या कर रहे हैं? उन्होंने कहा, मुझे ऐसा भय लगता है कि अगर मैंने हाथ न जोड़े तो भगवान नाराज हो जाए। और एक दिन आपकी बात मान कर मैं एक मंदिर के सामने से बिना हाथ जोड़े निकल गया। मैंने बड़ी हिम्मत की, मेरे माथे पर पसीना आ गया। मैंने बड़ी हिम्मत की और मैंने कहा कि आज मैं देखूं तो निकल कर क्या होता है? लेकिन मैं दस कदम से आगे नहीं जा सका, दस कदम पर जाकर मुझे ऐसी घबड़ाहट होने लगी कि मुझे लगा कि पता नहीं क्या हो जाए? मैं वापस लौटा, मैंने ठीक से हाथ जोड़े और क्षमा मांगी कि ऐसी भूल अब कभी न करूंगा।

ये मानसिक भय हैं, ये साइकोलाजिकल फियर्स हैं। ये सीखे हुए हैं, ये बिलकुल झूठे हैं, ये सिखाए गए हैं। और ऐसे भयभीत चित्त को ही हम धार्मिक कहते रहे हैं। यह तो बिलकुल धार्मिक नहीं है, यह तो जरा भी धार्मिक नहीं है। ऐसे भय को चित्त में खोजना जरूरी है।

हमारी मान्यताएं, हमारे विश्वास, हमारी बिलीफस, सब भय पर खड़ी हुई हैं। हमारे सिद्धांत, हमारा तथाकथित ज्ञान, हमारा पंथ, हमारा संप्रदाय, हमारी पूजा, हमारी प्रार्थना, इसी तरह के भय पर खड़ी हुई हैं। ये भय चित्त को रुग्ण करते हैं, ये भय चित्त को कमजोर करते हैं, ये भय चित्त को शक्तिहीन करते हैं और इन भय से घिरा हुआ व्यक्ति धीरे-धीरे विक्षिप्त हो सकता है, मुक्त नहीं हो सकता।

यह जाल भय का तोड़ना जरूरी है, लेकिन हमको भय लगेगा कि अगर हमने यह जाल तोड़ा तो फिर हम धार्मिक न रह जाएंगे, फिर तो हम अधार्मिक हो जाएंगे। यह भी हमें सिखाया गया है कि इन भय से जो भयभीत होता है, वही आदमी रिलीजस, वही आदमी धार्मिक है, वही अच्छा आदमी है। जो इनको तोड़ देता है, वह आदमी बुरा हो जाता है। यह बात गलत है।

असल में जो इनको तोड़ता है, इन भय के जाल को जो तोड़ देता है, वही इन जाल के भीतर छिपी हुई आत्मा को जानने में समर्थ हो पाता है। क्योंकि भय को तोड़ते ही एक इतनी बड़ी शक्ति उसके भीतर जन्मती है, एक इतना बड़ा साहस उसके भीतर पैदा होता है,

एक इतना बल उसके भीतर मुक्त होता है। यह भय के जाल के भीतर बड़ी शक्ति दबी बैठी है, जो उठ नहीं पाती, जो खड़ी नहीं हो पाती। विवेक जाग्रत नहीं हो पाता, विचार मुक्त नहीं हो पाता है। इन भय से ही हम बंधे रह जाते हैं, अटके रह जाते हैं। ये भय हमें हिलने भी नहीं देते। इन भय की दीवाल में हम आंख भी नहीं उठा सकते ऊपर। कहीं देख भी नहीं सकते। हर चीज में भय लगता है कि कहीं यह न हो जाए। ये जो भय हैं कैसे-कैसे हैं?

मैंने सुना है, हिंदुओं के ग्रंथों में लिखा हुआ है और वैसा ही जैनों के ग्रंथों में भी लिखा हुआ है। मैंने सुना है कि हिंदुओं के ग्रंथों में लिखा है कि अगर पागल हाथी तुम्हारे पीछे दौड़ता हो और जैन मंदिर आ जाए तो तुम पागल हाथी के पैर के नीचे दब कर मर जाना लेकिन जैन मंदिर में मत जाना। और यही बात जैन ग्रंथों में भी लिखी हुई है कि अगर हिंदू मंदिर आ जाए और पागल हाथी पीछे आता हो तो तुम उसके पैर के नीचे दब कर मर जाना वह बेहतर है लेकिन हिंदू मंदिर में प्रवेश मत करना, वह बड़ा पापपूर्ण है। ऐसे-ऐसे भय हैं।

एक जैन साधु मेरे पास ठहरे। उन्होंने सुबह उठ कर ही मुझसे कहा, जैन मंदिर कहां है, मैं वहां जाना चाहता हूं। मैंने उनसे कहा, वहां जाकर क्या करिएगा? उन्होंने कहा, मैं वहां एकांत में आत्म-चिंतन करूंगा, ध्यान करूंगा, सामायिक करूंगा। मैंने उनसे कहा, मेरे पास जहां आप ठहरे हैं, जितनी शांति और एकांत है, उतनी शांति और एकांत में यहां का मंदिर नहीं है। क्योंकि मंदिर जो भीड़ बनाती है वह अपने आस-पास ही बनाती है। तो जहां यहां भीड़ रहती है, वहीं वह मंदिर है। वहां बहुत शोरगुल है, वहां क्या करिएगा? यहां बहुत एकांत है। वे बोले कि नहीं, फिर भी यह रहने का मकान है, इसमें लोग रहते हैं। मंदिर में कोई रहता नहीं, इसलिए उसकी पवित्रता दूसरी है। मैं वहीं जाऊं। तो मैंने उनसे कहा, हमारे पड़ोस में ही एक चर्च है, वहां भी कोई नहीं रहता, आप उस चर्च में चले चलिए। उन्होंने कहा, चर्च! आप कैसी बातें करते हैं? मैं जो आपसे पूछ रहा हूं उसका उत्तर दीजिए कि जैन मंदिर कहां है? आप दूसरी बातें मत करिए।

मैंने कहा, उस चर्च में कोई भी नहीं रहता। और आज चूंकि इतवार नहीं है, रविवार नहीं है इसलिए वहां कोई भी नहीं होगा, आज पादरी भी सिनेमा देखने गया होगा। रविवार को वहां लोग होते हैं तब पादरी भी वहां रहता है। क्योंकि मैं कई दफा जब रविवार नहीं होता वहां जाता हूं, मुझे पादरी भी नहीं मिलता। तो वहां कोई भी नहीं होगा, एकदम एकांत, बड़ी शांति में वह जगह है, चले चलिए।

लेकिन चर्च शब्द भय पैदा करता है। जैन शब्द प्रलोभन पैदा करता है, वह अपना मंदिर है, अपने भगवान का। यह दूसरों का मंदिर है, ऐसे भगवानों का जिनका होना भी तय नहीं। यहां जाने में कोई अर्थ नहीं है, कोई लाभ नहीं है। वही ईसाई से कहिए, तो जैन मंदिर का सवाल हो जाएगा। वही हिंदू से कहिए, मुसलमान से कहिए।

ये सारे भय हैं हमारे भीतर। ये जो मानसिक तल पर भय हैं, ये जो साइकोलाजिकल फियर्स हैं, क्या इनके रहते हुए कोई आदमी धार्मिक हो सकता है? नहीं हो सकता। यह जाल टूट

जाना चाहिए। और यह जाल टूटना बहुत कठिन नहीं है। यह असंभव तो है ही नहीं, कठिन भी नहीं है, बहुत सरल है।

असल में यह जाल कोई ऐसा जाल नहीं है जिसकी वास्तविक जंजीरें हों, केवल शब्दों की जंजीरें हैं। और शब्दों की जंजीरें कागजों से भी कमजोर हैं। इनको कोई देख ले तो इनसे मुक्त हो जाता है। इनको कोई समझ ले तो इनसे मुक्त हो जाता है। इनकी अंडरस्टैंडिंग ही इनसे छुटकारा बन जाती है, इनको तोड़ना नहीं पड़ता।

एक दफा अपने मन में यह देख लें कि मेरे चित्त में कौन-कौन से मानसिक भय बैठे हुए हैं? उनको देख लेना, उनको पहचान लेना, उनको जान लेना ही उनसे छुटकारा है। उनको जानने के बाद उनका कोई बंधन नहीं रह जाएगा, क्योंकि आप खुद उन पर हंसने लगेंगे कि यह क्या पागलपन है? यह क्या नासमझी है? यह मैं क्या कर रहा हूं? यह सब मैंने कौन सा जाल मन के ऊपर रच रखा है? अगर आप एक बार अपने मन के इस जाल को देख लेंगे, तो दिखाई पड़ेगा, एकदम काल्पनिक है यह जाल। इसमें आप बंधे हैं केवल इसलिए कि इस जाल को आपने सत्य समझ रखा है। और अगर आपको यह दिखाई पड़ जाए यह असत्य है तो आप छूट गए। सत्य समझा है इसलिए बंधे हैं। समझ बांध रही है। और कोई जाल नहीं है जो बांध रहा हो।

एक छोटी सी कहानी कहूं। उससे शायद मेरी बात खयाल में आ सके।

एक रात अंधेरी रात में एक बड़ा काफिला एक रेगिस्तानी सराय में आकर ठहरा। कोई सौ ऊंट थे उस काफिले के पास। आधी रात हो गई थी। शायद वे रास्ता भटक गए थे, और सांझ को पहुंचने वाले थे लेकिन रात को पहुंचे। सभी थके हुए थे। उन्होंने जल्दी-जल्दी खूंटियां गाड़ीं, रस्सियां बांधीं और अपने ऊंटों को बांधा, लेकिन शायद इस जल्दबाजी में एक खूंटी और एक रस्सी खो गई, या कहीं रास्ते में गिर गई। निन्यानबे ऊंट तो बांध दिए गए लेकिन एक ऊंट बिना बंधा रह गया। आधी रात हो गई थी, वे सो जाना चाहते थे और ऊंट को बिना बंधा छोड़ना ठीक नहीं था। रात अंधेरी थी और वह भटक सकता था। तो उन्होंने सराय के मालिक को जाकर कहा कि अगर एक खूंटी और एक रस्सी हमें मिल जाए तो बड़ी कृपा हो। एक ऊंट हमारा बिना बंधा रह गया है। हमारी खूंटी कहीं खो गई या गिर गई। रस्सी भी हमारे पास नहीं है। निन्यानबे ऊंट बांध दिए गए हैं, एक बिन बंधा है।

उस सराय के मालिक ने कहा: मैं तो बहुत गरीब हूं, और यहां कोई खूंटी और कोई रस्सी नहीं हैं। लेकिन हां, एक तरकीब बताता हूं, बांध दो, जाओ खूंटी गाड़ दो, रस्सी बांध दो और ऊंट से कहो, सो जाओ। उन लोगों ने कहा, आप बड़े पागल मालूम पड़ते हैं। रस्सी और खूंटी होती तो हम आपके पास आते क्यों? रस्सी बांध दें और खूंटी गाड़ दें! आपने बड़ी अच्छी बात बताई, लेकिन हमारे पास है नहीं। उसने कहा कि जो नहीं है उसी को गड़ा दो और जो नहीं है उसी को बांध दो। झूठी खूंटी ठोंक दो जमीन में, अंधेरे में ऊंट को समझ में पड़ जाए कि खूंटी ठोंकी गई। और झूठी रस्सी उसके गले में हाथ फेर दो और बांध दो और कह दो, बैठ जाओ। लेकिन उन लोगों ने कहा, विश्वास नहीं पड़ता।

वह बूढ़ा हंसा कि तुम विश्वास नहीं करते ऊंट के बाबत, मैं आदमियों को ऐसी खूंटियों से बंधे देखता हूं जो नहीं है। तुम जाओ, कोशिश करो। ऊंट तो ऊंट है आदमी राजी हो जाता है। वह गया, मजबूरी थी, जाना पड़ा ऊंट के पास। उनके पास नहीं थी खूंटियां। अब बूढ़े ने कहा था तो देख लें यह भी करके। उन्होंने खूंटी ठोंकी, जैसे कि असली खूंटी ठोंकी जाती है। आवाज की, गड्ढा किया, ऊंट खड़ा अंधेरे में देखता रहा, खूंटी ठोंकी जा रही थी। फिर उन्होंने ऊंट के गले में हाथ डाला और जैसे रस्सी बांधी जाती थी वैसी कोशिश की। ऊंट ने समझा होगा रस्सी बांध दी गई है और फिर उन्होंने कहा: बैठ जाओ और ऊंट बैठ गया। और वे जाकर सो गए। और सुबह वे उठे और काफिला नई यात्रा पर जाने को हुआ। तो उन्होंने निन्यानबे ऊंटों की खूंटियां निकाल दीं, रस्सियां खोल लीं और उनको मुक्त कर दिया। लेकिन सौवें ऊंट की न तो कोई खूंटी थी न रस्सी, उसको क्या खोलना? उन्होंने निन्यानबे ऊंट तो खोल दिए, वे ऊंट चलने को राजी हो गए, लेकिन सौवां ऊंट बैठा रहा। उन्होंने उसे बहुत धक्के दिए, बहुत आवाज की कि उठो लेकिन वह उठने को राजी नहीं हुआ। कैसे उठता? उसकी खूंटी बंधी थी।

वे बड़े हैरान हुए। समझे कि यह बूढ़ा सराय का जो मालिक है, क्या कोई जादूगर है? एक तो यही विश्वास की बात नहीं थी कि झूठी खूंटी से ऊंट राजी हो जाएगा। राजी हो गया और हद्द हो गई अब वह उठता भी नहीं है। वे वापस गए और उन्होंने उस बूढ़े से कहा कि माफ करिए, अब उस ऊंट को उठाइएगा। वह तो बैठे ही रह गया। आपने क्या कर दिया? उसने कहा: तो मेरे पागल दोस्तो, पहले जाकर खूंटी उखाड़ो, रस्सी खोलो। उन्होंने कहा, लेकिन खूंटी है नहीं, रस्सी है नहीं। उसने कहा, जिस भांति रात ठोंकी थी उसी भांति उखाड़ो। जो नहीं थी अगर वह ठोंकी जा सकती है तो जो नहीं है वह निकालनी भी पड़ेगी, जाओ। मजबूरी थी, उन्हें जाना पड़ा। वे गए, उन्होंने जाकर खूंटी निकाली, रस्सी खोली, ऊंट उठ कर खड़ा हो गया। वह यात्रा पर राजी हो गया।

उस बूढ़े आदमी ने ठीक कहा था, ऊंट तो ऊंट आदमी भी राजी हो जाते हैं। हम सब राजी हो गए हैं। और ऐसी खूंटियां हमारे मन पर हैं जिनका कोई अस्तित्व नहीं। ऐसी रस्सियां हमारे मन पर हैं जिनकी कोई सत्ता नहीं, जिनका कोई एक्झिस्टेंस नहीं।

लेकिन आप पूछेंगे, उखाड़ें कैसे इनको? इनको निकालें कैसे?

जरूर जिस भांति इनको गड़ाया है उसी भांति इनको निकालना भी पड़ेगा। जिस भांति इनको ठोंका है उसी भांति तोड़ना भी पड़ेगा। कैसे ठोका है इन खूंटियों को? कौन सी सीक्रेट है इनके ठोकने की? कौन सा टेक्नीक? कौन सी तरकीब है? तरकीब यह है कि हमने इन भयों को सत्य मान लिया इसलिए ये हमारे ऊपर ठुक गए। इनको सत्य मान लेना इनका सीक्रेट है। जिस चीज को हम सच मान लेंगे उससे हम बंध जाएंगे। जिस चीज को हम असत्य जान लेंगे उससे हम मुक्त हो जाएंगे। सत्य मान लेना, मान लेना हमारा कारण है इनसे बंधे होने का। विश्वास कारण है हमारा इनसे बंधे होने का।

तो थोड़ा आंख खोल कर देखें कि इन्हें मानने की कोई वजह है? क्या कोई वजह है उस मूर्ति को भगवान मानने की जिसको हम भगवान मानते रहे? कोई भी तो वजह नहीं है सिवाय इसके कि और लोग मानते हैं। कोई भी तो वजह नहीं है सिवाय इसके कि और लोग मानते हैं। और मैं भी उन लोगों में पैदा हुआ हूं जो मानते हैं और बचपन से उन्होंने मुझे सिखा दिया है कि मानो।

उन्नीस सौ सत्रह में रूस में सारे लोग आस्तिक थे। उन्नीस सौ सत्रह में क्रांति हो गई। वहां जो लोग हुकूमत में आए वे नास्तिक थे। उन्होंने शिक्षा देनी शुरू की--न कोई ईश्वर है, न कोई आत्मा है, न कोई धर्म है, न कोई स्वर्ग, न कोई नरक, न कोई मोक्ष, न कोई पाप, न कोई पुण्य, कुछ भी नहीं है। निरंतर पंद्रह-बीस साल की शिक्षा के बाद आज रूस के बच्चे से जाकर पूछिए, ईश्वर है?

मेरे एक मित्र रूस में थे, उन्होंने पूछा एक छोटे से स्कूल में बच्चों से, ईश्वर है? वे हंसने लगे और उन्होंने कहा, था, है नहीं। पहले था, उन्नीस सौ सत्रह के पहले था। क्रांति के पहले था। जमाना हुआ खतम हो गया, अब नहीं है। और जहां अज्ञान है, जहां अभी क्रांति नहीं हुई वहां अभी भी है, बहुत जल्दी वहां भी नहीं रह जाएगा।

जो उनको सिखाया वे उसे दोहरा रहे हैं। उन्होंने पुरानी खूंटियां तोड़ दीं, नई खूंटियां गाड़ लीं। कल तक वे बाइबिल को मानते थे, अब वे दास कैपिटल को मानते हैं। कल तक क्राइस्ट का जयजयगान करते थे, अब वे माक्र्स और लेनिन का जयजयगान करते हैं। कल तक वे क्राइस्ट के चर्च के आस-पास इकट्ठे होते थे, अब वे लेनिन की कब्र के आस-पास इकट्ठे होते हैं। बात वही है, खूंटियां बदल गईं हैं, अब वे दूसरी खूंटियां गड़ गई हैं, अब वे उनका जयजयकार कर रहे हैं। और सोचते होंगे की ये खूंटियां सच हैं। सच हैं इसलिए बांध लेती हैं। हम दूसरी तरह की खूंटियों में बंधे हैं।

दुनिया में कई तरह की खूंटियां हैं--लाल रंग की, हरे रंग की, सफेद रंग की; हिंदू की, मुसलमान की, जैन की, ईसाई की, न मालूम कितने प्रकार की खूंटियां हैं। रंग-बिरंगी खूंटियां हैं। और सौभाग्य या दुर्भाग्य से जो जिस खूंटे के घेरे में पैदा हो जाता है उसी से बंध जाता है। और बंधने का कुल कारण इतना है कि बचपन से सीख लेता है कि यह सच है। सत्य का कोई पता नहीं और हम मान लेते हैं कि यह सत्य है तो बंधन खड़ा हो जाता है। फिर कैसे इस खूंटी को उखाड़ दें?

एक रास्ता तो यह है जो अब तक जारी रहा है, वह यह है कि मैं आपके पास दूसरी खूंटी लेकर आऊं और कहूं कि महाशय यह लाल खूंटी बिलकुल खराब है, यह हरी खूंटी बहुत अच्छी है, इसको फेंकिए यह खूंटी बिलकुल रद्दी है, सड़ चुकी, यह अब काम करने वाली नहीं है, यह खूंटी नई और ताजी और अच्छी है। एक रास्ता तो यह रहा है कि मैं दूसरी खूंटी लेकर आपके पास आऊं। अगर आप मुसलमान हैं तो मैं हिंदू की खूंटी लेकर आऊं। अगर आप हिंदू हैं तो मैं ईसाई की खूंटी लेकर आऊं। अगर आप जैन हैं तो मैं बौद्ध की खूंटी लेकर आऊं और आपकी खूंटी बदलवा दूं, दूसरा सब्स्टीटयूट आपको दे दूं। यह आज तक

हुआ है। खूंटी से आदमी मुक्त नहीं हुआ है, एक खूंटी से होता है तो दूसरी खूंटी से बंध जाता है। लेकिन ऐसा नहीं होता कि वह किसी खूंटी से बंधा हुआ न रह जाए।

मैं कोई दूसरी खूंटी लेकर आपके पास नहीं आया हूं। मैं आपसे यह नहीं कहता कि वह खूंटी बुरी है जिससे आप बंधे हैं, मैं एक खूंटी आपको देता हूं इससे आप बंध जाएं। मैं आपसे यह कहने आया हूं, खूंटी से बंधा होना बुरा है। कोई खूंटी-वूंटी का बुरा सवाल नहीं है, खूंटी से बंधा होना बुरा है। चाहे वह कोई भी खूंटी हो। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता--हिंदू की हो, मुसलमान की, जैन की, ईसाई की, कम्युनिस्ट की, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। चित्त बंधा हुआ हो यह बुरी बात है। क्योंकि बंधा हुआ चित्त और असत्य से बंधा हुआ चित्त--नहीं जानता ऐसी चीजों से बंधा हुआ चित्त--वहां तक नहीं पहुंच सकता जहां ज्ञान है, जहां सत्य है, जहां परमात्मा है, जहां जीवन का मूल उत्स है वहां नहीं पहुंच सकता।

तो दिखाई तो पड़ेगा कि हम परमात्मा की पूजा कर रहे हैं लेकिन हम किसी रंग की खूंटी की पूजा करते रहेंगे। और दिखाई तो पड़ेगा हम मंदिरों में जा रहे हैं, हम मंदिरों में कभी नहीं गए क्योंकि मंदिरों में जाने वाला मन ही हमारे पास नहीं है जो मुक्त हो, खुला हो, उन्मुक्त हो।

पहली बात है, स्वतंत्र चित्त चाहिए सत्य को जानने को। स्वतंत्रता सीढ़ी है सत्य की। स्वतंत्र जिसका चित्त नहीं, सत्य, सत्य उसके लिए नहीं हो सकता। फ्रीडम चाहिए।

किससे फ्रीडम? किससे स्वतंत्रता? उन खूंटियों से जो हैं ही नहीं। उन रस्सियों से जो झूठी हैं, जिनकी कोई सत्ता नहीं, कोई अस्तित्व नहीं। मन के भय, मन के विश्वास, मन के सिद्धांत हमें बांधते हैं, क्योंकि हम मानते हैं कि वे सत्य हैं। खोजें और देखें तो दिखाई पड़ जाएगा कि हमने कभी उन्हें माना था, हमने उन्हें जाना नहीं है। जिसे हमने माना था, वह अज्ञान है। जिसे हमने नहीं जाना, उसे मानने का कोई भी कारण नहीं है। खाली हो जाएंगे तब मान्यताओं से आप, टूट जाएंगे जाल, भय से मन मुक्त हो जाएगा और तब वह ऊर्जा पैदा होगी, वह शक्ति, वह बल, वह साहस, वह आत्म-चेतना जन्मेगी। इन भय के जाल से टूट जाते ही जो सेतु बन जाती है, ब्रिज बन जाती है परमात्मा तक पहुंचने का।

सुबह मैंने एक सूत्र की बात की थी, विवेक के जागरण की और विश्वास से मुक्त होने की। संध्या मैंने दूसरे सूत्र की आपसे बात की है, भय से मुक्त होने की और अभय में प्रतिष्ठित होने की। शेष कुछ सूत्रों की बात आने वाली चर्चाओं में मैं आपसे करूंगा।

अंत में इतना ही कहूंगा, मेरी बातों पर विश्वास न ले आएं कि मैं जो कह रहा हूं वह ठीक है। हो सकता है, जो मैं कह रहा हूं वह बिलकुल गलत है। हो सकता है मैं किसी तरकीब से कोई नई खूंटी गाड़ने की कोशिश कर रहा हूं और आप उसमें पकड़ जाएं, आप उसमें जकड़ जाएं। इसलिए मुझसे सावधान रहने की जरूरत है। मैं जो बात कह रहा हूं उसमें सबसे ज्यादा जरूरी है कि मुझसे सावधान रहें। कोई मेरी खूंटी आपके मन में न गड़ जाए। सोचें, विचारें मैंने जो कहा है। रात सोते वक्त थोड़ा उस पर खयाल करें कि मैंने क्या कहा है। और अपने भीतर खोजें कि कहीं सच में वैसे भय आपके भीतर तो नहीं हैं जो झूठे हैं, जिनको

आप नहीं जानते, जिनसे आप भयभीत हैं, परेशान हैं और जो आपके जीवनचर्या को प्रभावित कर रहे हैं? अगर ऐसे भय आपको दिखाई पड़ जाएंगे, तो आपको कुछ और नहीं करना होगा, उनका दर्शन ही उनकी मृत्यु हो जाएगी। आपने उनको देखा कि वे गए। जैसे कोई आदमी एक दीये को जला कर किसी अंधेरे कमरे में जाए अंधेरे को खोजने तो दीये को जला कर ले जाएगा तो अंधेरा उसे मिलेगा? वह नहीं मिलेगा। क्योंकि दीये की मौजूदगी अंधेरे का अंत है।

ऐसे ही जो भी भय हमारे चित्त में हैं वे अंधेरे के निवासी हैं। जब आप बोधपूर्वक उनकी खोज में दीया जला कर जाएंगे खोजने कि वे कहां हैं, तो आपको हंसी आएगी, वे अंधेरे के वासी आपको नहीं मिलेंगे।

एक बार ऐसा हुआ, अंधेरे ने जाकर भगवान के पास...और उससे कहा कि तुम क्यों अंधेरे के पीछे पड़े हुए हो? उसने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? सूरज ने कहा, कैसा अंधेरा? कौन अंधेरा? मैं तो जानता भी नहीं। मेरा आज तक उससे मिलना नहीं हुआ। आप उसे मेरे सामने बुला दें और वह मेरे सामने शिकायत कर दे तो मैं माफी मांग लूं और आगे के लिए पहचान लूं कि यह कौन है, तो उसका पीछा न करूं। तब से भगवान भी हार गए हैं, अंधेरे के लिए कोशिश करते हैं सूरज के सामने लाने की, अभी तक ला नहीं पाए। वे कभी नहीं ला पाएंगे। क्योंकि सूरज की मौजूदगी अंधेरे का अंत है। वह सामने खड़ा नहीं हो सकता।

जब हम बोधपूर्वक भीतर चित्त में खोजने जाएंगे कौन-कौन से भय हमें पकड़े हुए हैं? जब आप दीया जला कर विचार का खोजने जाएंगे आप हैरान हो जाएंगे, वे भय गए।

वे खूंटियां वैसी थीं जो किन्हीं समझदार व्यापारियों ने आपके लिए बांध दी थीं और आपको उसके साथ बांध दिया था। समझदार व्यापारियों का डर था कि कहीं आप उनके घेरे से भटक न जाओ। वे जो समझदार व्यापारी थे ऊंट के मालिक, उनको भय था कहीं ऊंट भटक न जाए, कहीं दूसरे जत्थे में शामिल न हो जाए, कहीं कोई इसे ले न जाए।

मनुष्य के जीवन में भी कुछ समझदार व्यापारी पैदा हो गए और उन्होंने आदमी के चित्त पर खूंटियां बांध दीं ताकि कोई आदमी उनके घेरे, उनके फोल्ड के बाहर न चला जाए। हिंदू के बाहर न चला जाए, मुसलमान के बाहर न चला जाए। झूठी खूंटियां गड़ा दीं, झूठे जाल बुन दिए भय के और उनमें आदमी बंद है।

जो आदमी उनमें बंद है, वह आत्मघाती है, वह अपना दुश्मन है, वह अपनी आत्मा को अपने हाथ से खो रहा है। जो उनसे मुक्त होता है उसी को आत्मा की गरिमा और गौरव उपलब्ध होता है। वही ठीक अर्थों में मनुष्य बनता है।

वह कैसे मनुष्य बन सकता है, उसकी कुछ और चर्चा आने वाले दो दिनों में मैं आपसे करूंगा।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे हुए परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

अंतर की खोज

पांचवां प्रवचन

मेरे प्रिय आत्मन्!

बहुत से प्रश्न मेरे पास आए हैं। अनेक प्रश्न एक जैसे हैं, इसलिए कुछ थोड़े से प्रश्नों में सभी प्रश्नों को बांट कर आपसे चर्चा करूंगा तो आसानी होगी।

मैंने कल कहा: विश्वास धर्म नहीं है, वरन विचार और विवेक धर्म है। श्रद्धा अंधी है। और जो अंधा है वह सत्य को नहीं जान सकेगा।
इस संबंध में बहुत से प्रश्न पूछे गए हैं और उनमें पूछा गया है कि यदि हम श्रद्धा न रखेंगे, यदि हम विश्वास न रखेंगे, तब तो हमारा मार्ग भटक जाएगा।

यह वैसा ही है जैसे एक अंधे आदमी को हम कहें कि तुम अपने हाथ में जो लकड़ी लिए घूमता है, अपनी आंखों का इलाज करवा ले और इस लकड़ी को फेंक दे, तो वह अंधा आदमी कहे, माना मैंने कि आंखों का इलाज तो मुझे करवा लेना है लेकिन लकड़ी को अगर मैं फेंक दूंगा तो भटक जाऊंगा। बिना लकड़ी के तो मैं चल ही नहीं पाता हूं। निश्चित ही अंधा आदमी बिना लकड़ी के नहीं चल पाता है लेकिन आंख वाले आदमी को लकड़ी की कोई भी जरूरत नहीं है। और जो अंधा आदमी यह आग्रह करेगा कि मैं तो लकड़ी के बिना चलूंगा ही नहीं, वह इस बात को भूल ही जाएगा कि आंख की जगह लकड़ी कोई सब्स्टीटयूट नहीं है, कोई परिपूर्ति नहीं है। लेकिन यह सीधी सी बात भी हमें दिखाई नहीं पड़ती है।
एक छोटी सी कहानी कहूं, उससे शायद मेरी बात समझ में आए।
एक बूढ़ा आदमी था, उसकी उम्र कोई सत्तर पार कर गई थी तब उसकी दोनों आंखें चली गईं। उसके आठ लड़के थे, पत्नी थी, आठ लड़कों की बहुएं थीं। उन सबने उसे समझाया, चिकित्सक कहते थे कि आंखें ठीक हो सकती हैं, लेकिन उस बूढ़े आदमी ने कहा, मुझे आंखों की जरूरत क्या है? आठ मेरे लड़के हैं, उनकी सोलह आंखें; आठ मेरी बहुएं हैं, उनकी सोलह आंखें; मेरी पत्नी है, उसकी दो आंखें, ऐसे मेरे घर में चौंतीस आंखें हैं। तो जिसके घर में चौंतीस आंखें हों उसके पास अगर दो आंखें न भी हुईं तो फर्क क्या पड़ता है? ये चौंतीस आंखें क्या मेरा काम न कर सकेंगी? और अब मैं मैं बूढ़ा हुआ, अब मुझे आंखों की जरूरत भी क्या है?
वह अपनी बात पर अड?ा रहा। आखिर समझाने वाले हार गए और बात बंद हो गई। लेकिन इसके कोई दो महीने बाद ही उस बूढ़े आदमी के भवन में आग लग गई और तब वे चौंतीस आंखें बाहर निकल गईं। जब आग लगी तो उनमें से किसी को भी यह खयाल न आया कि एक बूढ़ा आदमी भी घर में है जिसके पास आंखें नहीं हैं। जब आग लगी तो अपने

प्राण बचाने जरूरी हो गए। और अपनी आंखें अपने प्राण बचाने के काम में आ गईं। जब वे सब बाहर पहुंच गए सुरक्षित तब उन्हें खयाल आया कि घर में बूढा आदमी भी है जो भीतर रह गया, लेकिन तब तक देर हो गई थी, लपटों ने मकान घेर लिया था, धू-धू करके मकान जल रहा था, अब भीतर जाना कठिन था। वहां भीतर वह बूढा आदमी जब जलने लगा, तब उसे भी यह खयाल आया, लेकिन तब बहुत देर हो गई थी। कि जब मकान में आग लगी हो तो अपनी आंखों के अतिरिक्त और किसी की आंखें काम नहीं आ सकतीं। लेकिन तब बहुत देर हो गई थी। तब मकान जल रहा था और उस बूढे आदमी को उसी मकान में जल जाना पड़ा।

जीवन के मकान में तो रोज ही आग लगी है। जीवन का मकान तो प्रतिक्षण, प्रतिपल जल रहा है, उसमें किसी दूसरे की आंख काम नहीं आ सकती। अपनी आंख ही काम आ सकती हैं इस जीवन के जलते हुए मकान से बाहर ले जाने के लिए। लेकिन फिर भी वह बूढा आदमी तो जिन चौंतीस आंखों पर विश्वास किया था वे उसके सामने थीं, मौजूद थीं। हम तो उन आंखों पर विश्वास किए हैं, कोई आंखें दो हजार साल पहले समाप्त हो गईं, कोई ढाई हजार साल पहले, कोई पांच हजार साल पहले। कोई राम की आंखों पर विश्वास किए हुए है, कोई कृष्ण की आंखों पर, कोई महावीर की, कोई बुद्ध की, कोई क्राइस्ट की, कोई मोहम्मद की, वे कोई भी आंखें मौजूद नहीं हैं। उन आंखों ने जरूर उन लोगों को बचा लिया होगा जिनकी वे आंखें थीं। लेकिन इस भूल में कोई न पड़े की वे आंखें मेरे काम आ सकती हैं। मेरे काम मेरी आंखें आ सकती हैं। मेरी जिंदगी है, मेरी मौत है, मेरा दुख है, मेरा अज्ञान है, मेरा ही प्रकाश भी चाहिए जो उसे मिटा दे।

आपके लिए कोई मर सकता है? आपकी जगह कोई मर सकता है? और कोई दूसरा मर भी जाए तो मृत्यु का आपको अनुभव हो सकता है? आपकी जगह कोई प्रेम कर सकता है? आप किसी को अपनी जगह प्रेम करने दें और आपको प्रेम का अनुभव हो जाए? हम जानते हैं यह नहीं हो सकता। लेकिन जहां तक परमात्मा का संबंध है हम इस खयाल में होते हैं कि दूसरे की आंखों से उसे देखा जा सकता है। प्रेम भी दूसरे की आंखों से नहीं किया जा सकता, तो परमात्मा कैसे दूसरे की आंखों से देखा जा सकेगा?

अपनी आंख चाहिए। लेकिन सच्चाई यह है कि चूंकि परमात्मा का हमारे मन में कोई मूल्य नहीं है। इसलिए हम सोचते हैं कि दूसरे की आंख से भी काम चल जाएगा। जिंदगी में हम भलीभांति जानते हैं, अपने पैर चलाते हैं, अपनी आंखें दिखलाती हैं। लेकिन चूंकि परमात्मा का हमारे मन में कोई बहुत मूल्य नहीं है, इसलिए हम सोचते हैं, दूसरे की आंख से भी काम चल जाएगा। सच यह है कि शायद हमारे भीतर गहरी प्यास नहीं है परमात्मा को जानने की। नहीं तो यह असंभव था कि हम दूसरे पर विश्वास करके बैठे रहें। अगर प्यास गहरी होती तो हम अपनी आंख खोजते। और जो मैंने कल आपसे कहा है उसका केवल इतना ही मतलब है। विचार आपकी आंख है, विवेक आपकी आंख है। विश्वास आपकी आंख नहीं किसी और की है।

जो मेरा जोर था वह इस बात पर था कि विश्वास के द्वारा आप किसी और के माध्यम से सत्य को देखते हैं। यह प्रक्रिया गलत है। सत्य को सीधा देखा जा सकता है। सीधा और प्रत्यक्ष, किसी और के माध्यम से नहीं। विश्वास किसी और का सहारा लेता है, किसी और के माध्यम से देखता है। और क्या परिणाम होता है ऐसे विश्वास का? और ऐसे विश्वास और अंधेपन में लिए गए निष्कर्ष कैसे होते हैं?

रामकृष्ण एक कहानी कहते थे। रामकृष्ण कहते थे, एक अंधा आदमी था एक गांव में और उस अंधे आदमी के मित्रों ने एक बार उसे दावत दी और बहुत ही स्वादिष्ट खीर बनाई। उस अंधे ने उसे खाया और उसने पूछा, मेरे मित्रो, यह किस चीज से बनी है? उसके मित्रों ने कहा, यह दूध से बनी है। वह अंधा आदमी पूछने लगा, दूध कैसा होता है? वे मित्र उसी तरह के नासमझ रहे होंगे जिस तरह के उपदेशक अक्सर होते हैं। वे उसे समझाने बैठ गए कि दूध कैसा होता है। एक मित्र ने कहा, दूध होता है शुभ्र, सफेद। उस अंधे आदमी ने कहा, मैं समझा नहीं कि यह शुभ्र और सफेद क्या है। यह शब्द तो मैंने सुना है, लेकिन क्या है यह शुभ्रता? यह सफेदी क्या है? कैसी होती है? तो उन मित्रों ने कहा, तुमने बगुला देखा है? बगुले के सफेद पंख देखे हैं? ठीक बगुले के पंखों जैसी सफेदी होती है शुभ्र।

वह अंधा आदमी बोला, यह और मुश्किल हो गई। अभी मैं यह नहीं समझ पाया था कि दूध कैसा होता है, अभी यह नहीं समझ पाया था कि सफेदी कैसी होती है और एक नया प्रश्न तुमने खड़ा कर दिया यह बगुला कैसा होता है? मैं तो जानता नहीं बगुला। कुछ इस भांति बताओ कि पहेली हल हो जाए, तुम तो मेरी पहेली को और उलझाते चले जाते हो। पुराने प्रश्न तो पुरानी जगह खड़े हैं और नये प्रश्न खड़े हो जाते हैं। तुम्हारा उत्तर नया प्रश्न बन जाता है। कुछ ऐसा समझाओ कि मैं समझ सकूं।

वे चिंता में पड़े। और एक मित्र उसके पास गया, उस अंधे मित्र के पास सरका, उसने अपना हाथ उसके बगल में ले गया और कहा, मेरे हाथ पर हाथ फेरो, बगुले की गर्दन इसी की भांति होती है, झुके हुए हाथ की तरह। उस अंधे आदमी ने उस मित्र के हाथ पर हाथ फेरा, वह खुशी से प्रसन्न हो उठा और उसने कहा, मैं समझ गया, मैं समझ गया, दूध झुके हुए हाथ की भांति होता है।

वे मित्र हैरान हो गए इस नतीजे पर! लेकिन जहां तक अंधे का सवाल है क्या उसके लॉजिक में कोई भूल है? उसके तर्क में कोई गलती है? उसने पूछा था, दूध कैसा होता है? कहा, सफेद। उसने पूछा था, सफेद कैसा होता है? कहा, बगुले की भांति। उसने पूछा, बगुला कैसा होता है? बताया उसकी गर्दन होती है झुके हाथ की भांति। उसने नतीजा लिया कि दूध झुके हुए हाथ की भांति होता है।

अंधे आदमी को रंग समझाने का यही मतलब हो सकता है और क्या मतलब होगा? उसके पास अपनी तो कोई आंख नहीं कि वह देख सके। वह तो अंधा है केवल विश्वास कर सकता है। और जो शब्द उसे बताए जाएंगे उनका अर्थ वह क्या लेगा? उनका अर्थ भी वह अपने अंधेपन के अनुसार ही ले सकता है।

तो इस भ्रम में न रहें कि कृष्ण ने जो कहा है वही आपने सुन लिया होगा। इस भ्रम में भी न रहें कि क्राइस्ट ने जो कहा है वही आप समझ गए होंगे। इस भ्रम में भी न रहें कि महावीर को आप पहचान गए होंगे कि उन्होंने क्या कहा है। उन्होंने जो आंख से देख कर कहा है वह हमने अपने अंधेपन में वैसा ही सुना होगा जैसा उस अंधे ने दूध के संबंध में सुना है। और वे ही हमारे विश्वास बन गए हैं।

वे विश्वास हमारे जीवन को कहां ले जाएंगे? अगर यह अंधा आदमी दूध की तलाश में निकल जाए और लोगों से पूछे कि झुके हुए हाथ जैसा दूध मुझे चाहिए, तो इस जमीन पर यह कहीं खोज पाएगा? इसका सारा जीवन इसके इस विश्वास के कारण गलत हो जाएगा। लेकिन इसमें भूल अंधे आदमी की नहीं थी, इसमें भूल उन मित्रों की थी जिन्होंने उसे समझाया।

अगर वे मित्र थोड़े भी समझदार होते तो उन्होंने यह समझाने की कोशिश न की होती। बल्कि उन्होंने कोशिश की होती कि इस अंधे आदमी की आंख ठीक हो जाए। उन्होंने इसके आंख के इलाज का उपाय किया होता। वे इसे किसी चिकित्सक के पास ले गए होते और कहते कि दूध को हम न समझाएंगे क्योंकि समझाने का कोई रास्ता नहीं है। और दूध को हम समझा भी देंगे तो तुम जान न सकोगे, केवल विश्वास कर सकोगे, और विश्वास बहुत गलत हो जाता है। तो हम तुम्हारी आंख की चिकित्सा के लिए ले चलते हैं। अगर वे मित्र उसके साथी होते और उससे प्रेम करते होते और समझदार होते तो उन्होंने उसका उपचार किया होता, उसे उपदेश न दिया होता।

इस जमीन पर जो लोग जानते हैं उनके लिए धर्म एक उपदेश नहीं एक उपचार है, एक चिकित्सा है, आंखों का खोलना है। विश्वास करना नहीं विवेक का जगाना है। वह जो भीतर सोया हुआ विवेक है अगर वह जाग जाए तो आप देख सकेंगे कि परमात्मा क्या है और कैसा है, सत्य क्या है और कैसा है, जीवन का अर्थ क्या है, वह आप देख सकेंगे। और आप देख सकें इसीलिए मैं कह रहा हूं कि आप माने नहीं, क्योंकि जो मान लेता है उसकी खोज बंद हो जाती है।

जो नहीं मानता और जो इस बात पर अडिग रहता है कि जब तक मैं न जान लूंगा तब तक मैं नहीं मानूंगा, उसके प्राण आंदोलित रहते हैं, उसकी चेतना बेचैन रहती है, उसके भीतर एक अतृप्ति, एक डिस्कंटेंट निरंतर उसे धक्के देता रहता है कि मैं खोजूं और जानूं। लेकिन जो आदमी मान कर बैठ जाता है उसकी यात्रा बंद हो जाती है। उसके भीतर की अतृप्ति समाप्त हो जाती है। वह संतुष्ट हो जाता है। वह मान लेता है, ईश्वर है। वह मान लेता है, आत्मा है। वह सब मान लेता है और चुप हो जाता है।

जो मान लेता है उसके भीतर की खोज का अंत हो जाता है। लेकिन जो यह समझता रहता है कि मैं अभी नहीं जानता, मैं अज्ञान में हूं, मुझे कुछ भी पता नहीं है, जो इस स्थिति को ताजा रखता है कि मैं नहीं जानता हूं, मैं अज्ञान में हूं, उसका अज्ञान उसके भीतर एक क्रांति बन जाता है, उसकी एक पीड़ा बन जाती है, उसका अज्ञान उसे धक्के देता है,

उसकी आत्मा को जगाता है। क्योंकि कोई भी आदमी अज्ञान से तृप्त नहीं हो सकता, सहमत नहीं हो सकता, उसे बदलना चाहता है।

उसी बदलाहट की चेष्टा में से निकलती है साधना। उसी अतृप्ति से निकलता है अन्वेषण। उसी बेचैनी और अशांति में से पैदा होती है खोज। और वही खोज एक दिन पहुंचा देती है। वही प्यास एक दिन प्राप्ति तक ले जाने का मार्ग बन जाती है।

इसलिए मैं कहता हूं: विश्वास न करें, विचार करें; श्रद्धा न करें, सोचें, जीवन की समस्या को सोचें। अपनी तरफ से खुद, निजी खोज को जारी करें, वही खोज, वही खोज आपको व्यक्तित्व देगी, आत्मा देगी, वही खोज आपको कहीं ले जाने वाली बन सकती है। इसलिए मैंने कल आपसे कहा कि विश्वास नहीं, विचार।

विश्वास में तो हम सब हैं, हजारों वर्ष से हैं। और जमीन की क्या हालत हो गई है? आदमी के समाज की क्या हालत हो गई है? विश्वास में तो हम पाले गए हैं। दस हजार साल से आदमी विश्वास में ही पाला-पोसा गया है। परिणाम क्या है? परिणाम आदमी की तरफ देखिए क्या है? इससे ज्यादा और कोई विकृति हो सकती है? इससे ज्यादा और कुछ, और कुछ विनष्ट हो सकता है? इससे ज्यादा और कोई नारकीय जिंदगी हो सकती है जो हमने बना ली है।

पृथ्वी को हमने एक नरक में परिवर्तित कर दिया है। घृणा और हिंसा और असत्य और बेईमानी, वे सब हमारे जीवन में घर कर गए हैं। और इन सबकी शुरुआत किस बात से होती है? शायद लोग आपको कहें कि इसकी शुरुआत नास्तिकों ने करवा दी; शायद वे आपसे कहें कि ये भौतिकवादी, ये मैटीरियलिस्ट, वैज्ञानिक, इन सबने यह सब खराबी करवा दी है।

गलत कहते हैं ऐसे लोग, झूठ, सरासर झूठ कहते हैं। यह तो वैसे ही है जैसे मेरे घर का दीया बुझ जाए और मैं जाकर कहूं कि अंधेरा आ गया और उसने मेरे दीये को बुझा दिया। नहीं साहब, अंधेरा आकर दीये को नहीं बुझाता है, दीया जब बुझ जाता है तभी अंधेरा आता है।

दुनिया में जो मैटीरियलिज्म है, उसके कारण धर्म का दीया नहीं बुझ गया है, धर्म का दीया बुझ चुका है इसलिए मैटीरियलिज्म है, इसलिए इतनी भौतिकता है। यह भौतिकवाद का परिणाम नहीं है कि धर्म मिट गया है, धर्म नहीं है इसलिए भौतिकवाद है। यह तो इतनी गड़बड़ और बेचैनी और दुख भरी बात है। कोई अगर यह कहता है कि भौतिकवादियों के कारण, नास्तिकों के कारण, वैज्ञानिकों के कारण, कम्युनिस्टों के कारण दुनिया से धर्म मिट गया, इससे ज्यादा झूठी और बेहूदी बात नहीं हो सकती। इसका मतलब यह है कि धर्म बहुत कमजोर है और भौतिकवाद बहुत ताकतवर है। यह बिलकुल उलटी बात है।

भौतिकवाद क्या धर्म के दीये को बुझाएगा? वह तो आता ही तब है जब धर्म का दीया मौजूद नहीं होता है। वह तो अंधेरे की तरह है। घर का दीया बुझ जाए और हम अंधेरे को गालियां देते रहें कि अंधेरा बहुत बुरा है, इसने आकर दीया बुझा दिया। तब तो फिर दीया

जलाने की कोई आशा न रह जाएगी। क्योंकि दीया जलाने के लिए जरूरी होगा कि अंधेरे को निकाल कर हम बाहर कर दें, तब दीया जल सकता है, नहीं तो दीया नहीं जलेगा। और अगर हम अंधेरे को निकालने में लग गए, तो हम तो मिट जाएंगे अंधेरा नहीं निकल सकता। अंधेरे को निकालने का कोई भी उपाय नहीं है। या अंधेरा बढ़ जाए और हम धक्के दें, तो अंधेरा निकलेगा?

अंधेरा न तो लाया जा सकता है और न निकाला जा सकता है। क्यों? क्योंकि वस्तुतः अंधेरा है ही नहीं। अगर होता तो हम उसे ला भी सकते थे और निकाल भी सकते थे। वह है ही नहीं, वह केवल प्रकाश की गैर-मौजूदगी है, एब्सेंस है। उसका अपना कोई होना नहीं, उसका अपना कोई एक्झिस्टेंस नहीं, उसकी अपनी कोई सत्ता नहीं।

प्रकाश हो तो अंधेरा नहीं है और प्रकाश न हो तो उस न होने का नाम ही अंधेरा है, अंधेरे की अपनी कोई सत्ता नहीं है। इसलिए हम प्रकाश जला सकते हैं, प्रकाश बुझा सकते हैं लेकिन न तो अंधेरा जला सकते हैं और न अंधेरा बुझा सकते हैं। अंधेरे के साथ कुछ भी नहीं किया जा सकता।

तो भौतिकवादियों के कारण और नास्तिकों के कारण दुनिया में यह विकृति नहीं आ गई। यह विकृति आ गई है धर्म का दीया बुझा हुआ है इसलिए। और धर्म का दीया क्यों बुझा हुआ है? धर्म का दीया इसलिए बुझा हुआ है कि उसमें तेल की जगह पानी भर दिया है। उसमें विचार और विवेक की जगह श्रद्धा भर दी है। विवेक का तेल होता तो दीये की ज्योति जलती। श्रद्धा का पानी भर दिया है। असल में श्रद्धा का पानी भरना आसान है, मुफ्त मिल जाता है, गली-कूचे में हर जगह मिल जाता है। तेल में तो कुछ मूल्य चुकाना पड़ता है। विवेक में तो जीवन का मूल्य चुकाना पड़ता है, श्रम करना पड़ता है। श्रद्धा मुफ्त मिल जाती है। विश्वास मुफ्त मिल जाता है। विचार में तो श्रम और सामर्थ्य लगानी पड़ती है। इसलिए श्रद्धा और विश्वास का पानी भर दिया है डबरों से लाकर। अब दीया बुझ न जाए तो क्या हो? विश्वास के पानी ने धर्म का दीया बुझा दिया है। विवेक का तेल हो तो धर्म का दीया जल सकता है।

इसलिए मैंने कल आपसे कहा, छोड़ें विश्वास को और जगाएं विवेक को। और ठीक से स्मरण रखें कि जो विश्वास को छोड़ता है केवल उसका ही विवेक जग सकता है। जो विश्वास को पकड़ता है, उसका विवेक नहीं जग सकता। क्योंकि विश्वास को पकड़ने का मतलब यह है, अगर इसे ठीक से पहचानेंगे, विश्वास पकड़ने का अर्थ है कि मुझे स्वयं पर विश्वास नहीं है। विश्वास आत्म-अविश्वास का नाम है। जब मैं दूसरे पर विश्वास करता हूं, उसका मतलब है मुझे अपने पर विश्वास नहीं है। अगर मैं राम पर विश्वास करता हूं और कृष्ण पर और महावीर पर और बुद्ध पर, उसका मतलब क्या है? उसका मतलब है मुझे अपने पर विश्वास नहीं है।

बुद्ध जिस दिन मरे, उनका एक शिष्य और प्यारा भिक्षु आनंद रोने लगा, उसकी आंखों में आंसू भर गए, बुद्ध को विदा का क्षण आ गया था और बुद्ध ने कहा था अंतिम बात पूछनी

हो तो पूछ लो। आनंद रोने लगा। तो बुद्ध ने कहा, आनंद अपनी आंख से आंसू पोंछ ले। क्योंकि अगर तू यह सोचता हो कि मेरे रहने से तेरे जीवन में प्रकाश था तो तू भूल में है। अपना दीया खुद बन। अपना प्रकाश खुद बन। दूसरे का प्रकाश किसी को प्रकाशित नहीं करता है। इसलिए मेरे विदा होने से कोई अंतर नहीं आता। तू दुखी मत हो। क्योंकि आनंद रोने लगा और कहने लगा, अब आप चले जाएंगे तो अंधकार हो जाएगा। बुद्ध ने कहा, तू भूल में है। अगर अंधकार है तेरे लिए तो मेरे होने से भी अंधकार होगा और अगर प्रकाश है तेरे भीतर तो मेरे न हो जाने से भी कोई फर्क नहीं पड़ता। और मेरी ज्योति को अपनी ज्योति समझने के भ्रम में मत रहना। खुद का दीया जला, खुद की ज्योति जला। वही साथी है, वही है साथी। किसी और का दीया साथी नहीं हो सकता है। इसलिए मैंने कहा कि विवेक और विचार, विश्वास नहीं।

इस संबंध में एक प्रश्न और पूछा है।
पूछा है कि विश्वास तो सिखाना ही पड़ेगा बच्चे को। छोटे बच्चों को अगर हम विश्वास न सिखाएंगे तो उनको कुछ भी नहीं सिखा सकेंगे।

मैंने यह नहीं कहा है कि बच्चे को आप यह न सिखाएं कि रास्ते पर बाएं चलना चाहिए, यह मैंने नहीं कहा है। यह मैंने नहीं कहा है कि स्वतंत्रता का यह अर्थ है कि रास्ते पर जहां चलना हो वहां चलो, यह मैंने नहीं कहा है। रास्ते पर बाएं चलना बिलकुल कामचलाऊ बात है, सत्य का उससे कोई संबंध नहीं है, हम जीवन के व्यवहार मात्र की बात है। हिंदुस्तान में हम बाएं चलते हैं और अमेरिका में दाएं चलते हैं, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वहां की सड़कों पर लिखा है, दाएं चलो, यहां की सड़कों की पर लिखा है, बाएं चलो। ये कामचलाऊ बातें हैं, ये कोई सत्य नहीं है। ये जीवन के लिए उपयोगी हैं।

पूछा है कि अगर हम बच्चे को न बताएं कि कौन तुम्हारा पिता है? कौन तुम्हारी मां है?

ये भी कामचलाऊ बातें हैं। ये भी बाएं और दाएं चलने से ज्यादा इनका मूल्य नहीं है। अगर एक बच्चे को बचपन से ही उसका झूठा पिता बता दिया जाए कि वह तुम्हारा पिता है, तो उससे भी काम चल जाएगा। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। जीवन भर काम चल सकता है। ऐसे तो कौन किसका पिता है, सारी बातें कामचलाऊ हैं।
बुद्ध बारह वर्षों के बाद अपने घर वापस लौटे थे। तो उनके पिता क्रुद्ध थे, गुस्से में थे। बारह साल पहले वह लड़का उन्हें छोड़ कर चला गया। एक ही लड़का था। बारह साल बाद उनके लड़के की कीर्ति सब तरफ फैल गई थी। लेकिन पिता का क्रोध समाप्त नहीं हुआ था। दूर-दूर से खबरें आने लगी थीं कि उनका लड़का कुछ और हो गया, ज्योतिर्मय हो गया, प्रबुद्ध हो गया। लाखों लोग उसे स्वीकार किए हैं। हजारों भिक्षु उसके पीछे चल पड़े हैं। उसने एक नया

रास्ता तोड़ दिया है परमात्मा तक जाने का। लेकिन ये खबरें बुद्ध के पिता के क्रोध को न तोड़ सकीं।

आखिर बुद्ध का आगमन फिर उस गांव में हुआ जिसमें वे पैदा हुए थे। बारह साल बाद पिता उनके गांव के बाहर उन्हें लेने गए। पूरा गांव लेने गया। पिता ने जाते से ही पहली बात यही कही कि सिद्धार्थ तू वापस लौट आ, मेरे दरवाजे अभी भी खुले हैं, पिता का प्रेम बहुत बड़ा है, तूने चोट तो बहुत पहुंचाई कि तू घर छोड़ कर चला गया, मेरे बुढ़ापे में अकेला लड़का है तू, लेकिन अभी भी वापस लौट आ, मैं तेरी प्रतीक्षा करता हूं, आखिर मैं तेरा पिता हूं और तुझे माफ कर दूंगा, मेरे द्वार खुले हैं, तू वापस लौट चल। यह शोभा नहीं देता कि मेरा लड़का भिक्षा का पात्र लिए हुए सड़कों पर चले।

बुद्ध ने क्या कहा? बुद्ध ने अपने पिता से कहा, मुझे ठीक से तो देखें, जो लड़का आपके घर से गया था वही वापस लौटा है या मैं दूसरा मनुष्य होकर आया हूं? मुझे एक बार ठीक से तो देख लें। इन बारह वर्षों में गंगा में बहुत पानी बह गया। मैं वही नहीं हूं। लेकिन पिता तो, क्रोध से उनकी आंखें धुंधली हो रही थीं, उन्होंने कहा, क्या तू मुझे यह भी सिखाएगा कि मैं अपने लड़के को नहीं पहचानता? मैंने ही तुझे पैदा किया, मेरा ही खून तेरी नसों में है।

बुद्ध ने कहा, भूलते हैं आप। गलती में हैं आप। मैं आपके द्वारा पैदा तो हुआ, लेकिन आप मेरे बनाने वाले नहीं हैं। मैं आपके रास्ते से दुनिया में तो आया, लेकिन रास्ता निर्माता नहीं होता है।

मैं जिस रास्ते से चल कर अभी इस गांव तक आया हूं अगर वह रास्ता कहने लगे कि तुम मेरे ऊपर चले थे, मैं तुम्हें भलीभांति जानता हूं, तो जैसी भूल हो जाएगी वैसी पिता और मां भी भूल कर जाते हैं। बच्चे उनसे होकर आते हैं लेकिन उनसे पैदा नहीं होते। पैदा होने का सूत्र बहुत गहरा है। मां-बाप उसमें उपकरण से ज्यादा नहीं, इंस्ट्रूमेंट से ज्यादा नहीं है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। ये कोई बड़ी सच्चाइयों की खोजें नहीं हैं। तो आप कह दें कि कौन पिता है, कौन मां। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। जिंदगी की कामचलाऊ बातों के लिए विश्वास काम दे सकता है, क्योंकि जिंदगी खुद एक सपना है, उसमें झूठे विश्वास काम दे सकते हैं। लेकिन जो जीवन के सत्य को खोजने निकला हो, सत्य को खोजने निकला हो, उसके आधार विश्वास पर नहीं रखे जा सकते, क्योंकि विश्वास असत्य है। और सत्य की खोज असत्य से शुरू नहीं की जा सकती। सत्य की खोज तो सत्य से ही शुरू करनी होगी। और पहला सत्य यही है कि हम नहीं जानते जीवन को, हम नहीं जानते परमात्मा को, हम नहीं जानते आत्मा को, सुनी हुई बातें हैं ये लेकिन हमारा जानना नहीं है। यह पहला सत्य है। इस अज्ञान का बोध पहला सत्य है। और विश्वास इस बोध को मिटा देते हैं, जो सबसे बड़ी खतरनाक बात है। वे इस बोध को मिटा देते हैं कि मैं नहीं जानता हूं, बल्कि इस अहंकार को पैदा कर देते हैं कि मैं जानता हूं। पंडित में यही अहंकार तो प्रगाढ़ हो जाता है कि मैं जानता हूं।

मैं जानता हूं। क्या जानते हैं हम? राह पर पैर के नीचे जो कंकड़-पत्थर पड़े हैं उनको भी नहीं जानते। द्वार पर जो वृक्ष लगे हैं उनको भी नहीं जानते। आकाश में जो तारे निकलते हैं उनको भी नहीं जानते। पास-पड़ोस में जो लोग बैठे हैं उनको भी नहीं जानते। एक पिता अपने पुत्र को नहीं जानता। एक पति अपनी पत्नी को नहीं जानता। एक मां अपने बेटे को नहीं जानती। एक भाई अपने भाई को नहीं जानता। क्या जानते हैं हम? जीवन है इतना रहस्यपूर्ण, कुछ भी नहीं जानते हैं हम। लेकिन विश्वास इस भ्रम को पैदा कर देते हैं कि हम जानते हैं।

एक आदमी ईश्वर तक के संबंध में दावे से बोलने लगता है कि मैं जानता हूं--कि उसके चार मुंह हैं, कि दो मुंह हैं, कि कितने हाथ हैं, कहां रहता है, कहां नहीं रहता, यह सब मैं जानता हूं। एक कंकड़ को भी हम जानते नहीं। एक पत्ते को भी हम जानते नहीं। हवा के एक झोंके को भी हम जानते नहीं। जीवन बिलकुल रहस्यपूर्ण है और हमारा अज्ञान है गहन। लेकिन विश्वास के द्वारा, किताबों से सीखे गए शब्दों के द्वारा यह इल्युजन पैदा हो जाता है, यह भ्रम पैदा हो जाता है कि मैं जानता हूं। और धर्म की खोज में, सत्य की खोज में यह भ्रम सबसे बड़ी बाधा है। क्योंकि जिसे यह खयाल पैदा हो गया कि मैं जानता हूं, उसका सीखना बंद हो गया, उसकी लघनग बंद हो गई। अब वह सीखेगा नहीं, क्योंकि वह जानता है।

इसलिए तथाकथित पंडित जो तोतों की भांति सारे ग्रंथों को रट लेते हैं उनका सीखना हमेशा के लिए बंद हो जाता है। वे मर गए। अब उनकी जिंदगी में कोई सीखना नहीं है, कोई गति नहीं है।

इसलिए मैंने कहा कि विश्वास नहीं, विचार। विचार करेगा मुक्त, खोलेगा द्वार, सीखने के द्वार खोल देगा, रास्ते उन्मुक्त करेगा। इस अहंकार को तोड़ देगा कि मैं जानता हूं और इस विनम्रता को, इस ह्यूमिलिटी को पैदा करेगा कि मैं नहीं जानता हूं।

जिस दिन आपको यह सच में दिखाई पड़ जाए कि मैं नहीं जानता हूं, उस दिन आपके भीतर एक धार्मिक आदमी का जन्म हो गया। क्योंकि न जानने का भाव आपको विनम्र कर देगा। न जानने का भाव आपको निर-अहंकारी कर देगा। न जानने का भाव आपके आग्रह, पंथ, संप्रदाय तोड़ देगा, आप खड़े हो जाएंगे और कहेंगे कि मैं तो नहीं जानता हूं। छोटे बच्चे की तरह एक सरलता, एक इनोसेंस इस भाव के साथ पैदा होगी। और वह सरलता इतनी बहुमूल्य है कि उसके समक्ष दूसरों के द्वारा सीखे गए विश्वास दो कौड़ी के भी नहीं है। उस निर्दोष स्थिति में ही, उस इनोसेंस में ही, जीवन सत्य की तरफ आंखें उठ सकती हैं। इसलिए मैंने कहा कि विश्वास नहीं, विचार।

और कुछ दूसरे प्रश्न मित्रों ने पूछे हैं।

कुछ मित्रों ने पूछा है कि अगर श्रद्धा नहीं तब तो भक्ति के लिए भी कोई जगह नहीं रह जाएगी।

एक और मित्र ने अगस्तीन का एक उद्धरण दिया है और पूछा है: अगस्तीन ने कहा है, श्रद्धा का अर्थ है उन चीजों में विश्वास जो दिखाई नहीं पड़तीं, और जो आदमी ऐसा विश्वास कर लेता है, परिणाम में उसे वे चीजें फिर दिखाई पड़ने लगती हैं जो कि पहले दिखाई नहीं पड़ती थीं।
और भी दोत्तीन प्रश्न इस तरह श्रद्धा और भक्ति के लिए पूछे गए हैं।

सबसे पहली बात तो मैं आपसे यह कहूं, यह अगस्तीन का वाक्य बहुत सही है लेकिन उस अर्थों में नहीं जिसमें अगस्तीन ने कहा होगा, बल्कि और दूसरे अर्थों में। निश्चित ही जो चीजें नहीं दिखाई पड़तीं उनमें अगर विश्वास कर लें तो धीरे-धीरे वे दिखाई पड़ सकती हैं। लेकिन दिखाई पड़ने से यह मत समझ लेना कि वे हैं। आपके विश्वास ने यह भ्रम पैदा किया है उनके दिखाई पड़ने का। वे चित्त के प्रोजेक्शन हैं। खुद मन की ही कल्पनाएं हैं। जरूर दिखाई पड़ने लगेंगी विश्वास करने से, लेकिन दिखाई पड़ने से यह मत सोच लेना कि वे हैं। वे विश्वास के द्वारा पैदा हो गई हैं। बाहर पैदा नहीं हो गई हैं, केवल चित्त में पैदा हो गई हैं। थोड़ी इस बात को समझें तो ये खयाल में आ सकती हैं।
जो लोग बहुत भावप्रवण हैं, बहुत इमोशनल हैं, उन्हें इस तरह की चीजें देख लेना बहुत आसान है। जो लोग चित्त से बहुत कमजोर हैं, उन्हें भी इस तरह की चीजें देख लेना बहुत आसान है। चित्त जितना कमजोर हो उतनी कल्पनाओं को साकार रूप में देख लेना आसान है। दुनिया के कवि, चित्रकार या इस तरह के भावप्रवण लोग ऐसी चीजें देखते रहते हैं जो आपको बिलकुल दिखाई नहीं पड़तीं।
लियो टाल्सटाय का नाम आपने सुना होगा। रूस के बड़े विचारशील लेखकों में से एक, बहुत भावप्रवण। एक रात वोल्गा के किनारे दो बजे रात अंधेरे में पुलिस के द्वारा टाल्सटाय पकड़ा गया। वोल्गा के ऊपर एक ब्रिज पर हमेशा खतरा रहता था। वह आत्महत्या करने वालों का अड्डा था। वहां निराश और दुखी लोग जाकर कूद जाते और आत्महत्या कर लेते। तो वहां एक पुलिस के सिपाही का हमेशा पहरा रहता था। रात थी आधी, टाल्सटाय वहां घूमता हुआ देखा गया। उस पुलिस के आदमी ने दो-चार बार देखा फिर वह आया, उसने टाल्सटाय के कंधे पर हाथ रखा और कहा कि महानुभाव! इरादे ठीक नहीं मालूम पड़ते हैं, यहां किसलिए इतनी रात को आप मौजूद हैं?
टाल्सटाय बोला, मेरे मित्र, तुम थोड़ी देर से आए जिसको कूदना था वह कूद चुका, मैं तो केवल उसको विदा करने आया था। वह कांस्टेबल तो घबड़ा गया। उसने कहा कि मैं मौजूद हूं, अभी तो मुझे कोई भी दिखाई नहीं पड़ा कि कूदा हो। कौन कूदा है? तो टाल्सटाय ने कहा, पावलोवना नाम की स्त्री, नहीं पहचानते हो? फलां-फलां आदमी की पत्नी थीं, नहीं पता है? फलां-फलां मोहल्ले में रहती थीं, नहीं खयाल है?
उस आदमी ने कहा, भाई, मेरे साथ चलो थाने और वहां जाकर सब बात लिखा दो। वे दोनों थाने की तरफ चले। रास्ते में अचानक टाल्सटाय हंसने लगा, तो उसने पूछा, क्यों

हंसते हैं? उसने कहा, बस अब रहने दो, मैं जाता हूं। असल में थोड़ी भूल हो गई। मैं एक उपन्यास लिख रहा हूं और उसमें एक पावलोवना नाम की स्त्री है, वह आज, जहां तक उपन्यास पहुंचा है वहां वोल्गा में कूद कर आत्महत्या कर लेती है। और मैं इतना अभिभूत हो गया उसकी आत्महत्या से कि घर से उठ कर ब्रिज पर चला आया। और मैं भूल गया तुमसे कहना, अब मुझे खयाल आता है कि वह किसी सच्चे आदमी की बात नहीं, मेरी ही कल्पना की बात है। मैं घर वापस जाता हूं।

टाल्सटाय एक दफा सीढ़ियां चढ़ रहा था, एक छोटी सी लाइब्रेरी जा रहा था, ऊपर संकरी सीढ़ियां थीं, दो आदमी निकल सकते थे। वह खुद चढ़ रहा था और उसके साथ एक औरत और चढ़ रही थी, वह भी उसके उपन्यास की एक पात्र, जिससे वह बातचीत करता हुआ ऊपर चढ़ रहा था। कवि और पागल अक्सर यह करते रहते हैं। उन लोगों से बातें करते हैं जो कहीं भी नहीं हैं। ऊपर चढ़ रहा था। ऊपर से एक आदमी नीचे उतर रहा था। सीढ़ियां थीं संकरी और दो ही निकल सकते थे, तीन के लायक जगह न थी, बीच में थी औरत। और यह उन्नीस सौ सत्रह की क्रांति के पहले की बात है। अब तो रूस में औरत को धक्का दे सकते हैं, तब धक्का नहीं दे सकते थे। तो ऊपर से एक आदमी उतर रहा है, कहीं धक्का न लग जाए, बीच में औरत है, तो टाल्सटाय बचा जगह करने को और सीढ़ियों से नीचे गिर पड़ा और टांग तोड़ ली और तीन महीने अस्पताल में रहा। वह दूसरा आदमी नीचे उतरा, उसने कहा, बड़ी हैरानी की बात है, आप हटे क्यों? हम दो के लायक काफी जगह थी। टाल्सटाय ने कहा, दो होते थे तो ठीक था, वहां तीन थे, वहां एक औरत और थी। कोई औरत, कोई औरत दिखाई नहीं पड़ रही? टाल्सटाय हंसा और उसने कहा, तुम्हें दिखाई नहीं पड़ेगी और अब टांग टूट जाने से मुझको भी दिखाई नहीं पड़ रही। लेकिन जब तक मैं सरका तब मेरे साथ थी और भ्रम हो गया और मैं सरक गया उसको बचाने को और टांग टूट गई।

अगर दुनिया के कवियों और साहित्यिकों का जीवन पढ़ेंगे, तो आपको दिखाई पड़ेगा कि उनमें से अधिक लोग अपने पात्रों से बातचीत करते रहे हैं। वे पात्र उन्हें मौजूद मालूम पड़ते हैं कि हैं। अगर इन कवियों को सनक सवार हो जाए और ये भक्त हो जाएं तो इनको भगवान के दर्शन करने में देर लगेगी? इनको कोई देर न लगेगी। ये जिस प्रकार के भगवान चाहेंगे उस प्रकार के भगवान के दर्शन कर लेंगे। बांसुरी बजाने वाले भगवान चाहेंगे तो वे मौजूद हो जाएंगे और धनुर्धारी भगवान चाहेंगे तो वे मौजूद हो जाएंगे और सूली पर लटके क्राइस्ट को देखना चाहेंगे तो वे मौजूद हो जाएंगे। लेकिन जिस तरह इनके पात्र कल्पना के हैं इनके भगवान भी कल्पना के होंगे। आज तक जितने भी भगवान देखे गए हैं वे सभी कल्पना के हैं। क्योंकि भगवान कोई व्यक्ति नहीं है कि देखा जा सके। भगवान एक अनुभूति है, व्यक्ति नहीं कि देखा जा सके। इसलिए जिस प्रकार का भी भगवान देखा जाएगा, वह भगवान मनुष्य की कल्पना की सृष्टि है, उसका मेंटल क्रिएशन है। फिर अपने हाथ में है, मुरलीवालों

को देखना हो उनको देखें, और धनुर्धारी को देखना हो तो उनको देखें, और चतुर्मुखी भगवान को देखना हो तो उनको देखें।

और नीग्रो देखता है जिस भगवान के उसके ओंठ नीग्रो जैसे होते हैं और बाल नीग्रो जैसे होते हैं। और चीनी देखता है जिस भगवान को उसकी हड्डियां उभरी होती हैं और रंग पीला होता है। और हिंदू जिस भगवान को देखता है वह भारतीय शक्ल में होता है। और दुनिया में जो अपने भगवान को देखना चाहता है अपनी शक्ल में देख लेता है। अगर गधे और घोड़े भी भगवान को देखते होंगे तो अपनी शक्ल में देखते होंगे आदमी की शक्ल में नहीं। अगर पशु-पक्षी भगवान को देखते होंगे तो अपनी शक्ल में देखते होंगे आपकी शक्ल में नहीं। हमारी कल्पनाएं, हमारा रूप, हमारा निर्मित है यह भगवान जिसको हम श्रद्धा और भक्ति में देख लेते हैं। यह कोई साक्षात नहीं है सत्य का।

सचाई यह है कि जब तक कुछ भी दिखाई पड़ता है चित्त में, तब तक मन काम कर रहा है। और सत्य का या परमात्मा का, और स्मरण रखें, परमात्मा से मेरा अर्थ किसी रूप, किसी रंग से नहीं, किसी आकार से नहीं, बल्कि समस्त जीवन, समस्त अस्तित्व, यह जो टोटल एक्झिस्टेंस है, यह जो सारी चीजों के भीतर व्याप्त प्राण हैं इसके अनुभव से है। इसका कोई दर्शन नहीं हो सकता। इसका अनुभव हो सकता है।

एक आदमी को प्रेम का अनुभव हो सकता है, लेकिन कोई आदमी आकर सूरत में खबर करे कि आज रात मुझे प्रेम का दर्शन हुआ है, तो गड़बड़ हो गई बात।

प्रेम के दर्शन का क्या मतलब? प्रेम कोई आदमी है जिसका दर्शन हो जाएगा? कोई वस्तु है जिसका दर्शन हो जाएगा? प्रेम का अनुभव हो सकता है, दर्शन नहीं। प्रेम एक जीवंत अनुभूति है, एक एक्सपीरिएंस है। परमात्मा और भी गहरी अनुभूति है। परमात्मा का भी दर्शन नहीं हो सकता, अनुभव हो सकता है। परमात्मा दिखाई नहीं पड़ सकता। लेकिन परमात्मा को जाना जा सकता है। और जानने का रास्ता यह नहीं है कि आप कोई कल्पना करें। जानने का रास्ता यह है कि सब कल्पना छोड़ दें और शून्य हो जाएं। जब तक कोई कल्पना है तब तक उस कल्पना को जानने की कोशिश रहे, चेष्टा, श्रम, तो वह कल्पना जानी जा सकती है। और उसको जानने के उपाय हैं। कल्पना जानने के उपाय हैं।

सारी दुनिया के बहुत बड़ा धार्मिक लोगों का हिस्सा, साधु-संतों का हिस्सा, गांजा, अफीम, चरस पीता रहा है। अभी अमेरिका में मैस्कलीन और लिसर्जिक एसिड की हवा है। और उसको पीने वाले हक्सले ने कहा, उसका इंजेक्शन लगवाने वाले लोगों ने कहा कि जो कबीर को, मीरा को जो अनुभव हुए होंगे, वे हमको मैस्कलीन का इंजेक्शन लगाने से होते हैं। हमको भगवान दिखाई पड़ता है।

अगर हिंदू को मैस्कलीन का इंजेक्शन लगा दें तो कृष्ण दिखाई पड़ जाएंगे। और क्रिश्चियन को लगा दें तो क्राइस्ट दिखाई पड़ जाएंगे। जो कल्पना भीतर बैठी है, नशे की हालत में और जल्दी साकार हो जाती है। इसलिए दुनिया भर में साधु नशा करते रहे, यह आकस्मिक नहीं है, यह एक्सिडेंटल नहीं है। कल्पना को बल देने में नशा बड़ा सहयोगी है। जो लोग नशा

नहीं करते रहे, वे लोग उपवास करते रहे हैं। और यह बात जान लेना जरूरी है। दो ही तरह के वर्ग हैं दुनिया में साधुओं के, या तो नशा करने वाला या उपवास करने वाला। और आप हैरान होंगे, जो काम नशे से होता है वही उपवास से भी हो जाता है।

नशे से कुछ मादक द्रव्य शरीर में पहुंच जाते हैं, जो चित्त के होश को कम कर देते हैं। होश कम हो जाता है तो कल्पना जल्दी से साकार होने लगती है। बेहोशी में कल्पना साफ दिखाई पड़ने लगती है। बेहोशी में विचार बिलकुल नहीं रह जाता, इसलिए यह खयाल भी नहीं उठता कि जो मैं देख रहा हूं वह सच है या झूठ, यह विचार भी पैदा नहीं होता, जो दिखता है सच मालूम होता है।

सपने में रोज आप देखते हैं, सपना कभी आपको सपने के भीतर झूठ मालूम पड़ता है? कभी आपको ऐसा लगा कि यह मैं सपना देख रहा हूं, यह झूठ है? जागने पर लगता होगा, लेकिन सपने के भीतर सभी सपने सच मालूम पड़ते हैं। क्योंकि विचार नहीं होता निद्रा में, इसलिए जो दिखाई पड़ता है सच मालूम पड़ता है। विचार पूछता है कि जो है वह सच है या झूठ? और विचार न हो तो पूछने वाली कोई चीज आपके भीतर न रहेगी, फिर जो है वह सच है। नींद में आपका विचार सोया हुआ है। तो जो भी सपना दिखाई पड़ता है वह मालूम होता है सच है। जागने पर जब विचार जग आता है तब यह शक पैदा होता है कि अरे यह सपना झूठ था, लेकिन सपने में कभी सपना झूठ नहीं होता। ऐसे ही नशे के भीतर कभी नशे में दिखाई पड़ने वाली चीजें झूठ नहीं होतीं। नशे के द्वारा कल्पना तीव्र हो जाती है विचार मंदा हो जाता है। तो जो सपने की स्थिति होती है वह वास्तविक जागते हुए हो जाती है। उपवास से भी यही हो जाता है। उपवास से शरीर की शक्ति क्षीण हो जाती है। आपको गहरा बुखार आया हो और बहुत दिन खाना न मिला हो, तो आपको पता होगा, कैसी-कैसी कल्पनाएं दिखाई पड़ने लगती हैं। खाट आसमान में उड़ती हुई मालूम पड़ सकती है। देवतागण हवा में घूमते हुए दिखाई पड़ सकते हैं। भूत-प्रेत छायाओं में दिखाई पड़ सकते हैं।

शरीर हो जाता है कमजोर, चित्त हो जाता है कमजोर, कमजोर चित्त फिर विचार करने में असमर्थ हो जाता है कि जो है वह सच है या झूठ, फिर कल्पना साकार हो जाती है।

तो अगर तीस वर्ष तक, बीस वर्ष तक कोई किसी भगवान के रूप को बना कर जपता रहे, जपता रहे, जपता रहे; आंख बंद करके भगवान को देखता रहे, देखता रहे, देखता रहे; नशा करे, उपवास करे, रोए-धोए, छाती पीटे, नाचे-गाए, तो दस-बीस वर्षों में अगर ये भगवान दिखाई पड़ने लगें तो यह मत समझ लेना कि ये भगवान हैं इसलिए दिखाई पड़ते हैं। यह आदमी बड़ा मेहनती है इसने भगवान पैदा कर लिए। यह इसका श्रम है, यह इसकी कल्पना को दिया गया बल है। सारे चित्त को लगाई गई चेष्टा है, इसमें कहीं कोई भगवान नहीं है।

और इसलिए यह भी हो सकता है कि अगर तुलसीदास को, मीरा को और अगस्तीन को तीनों को इस कमरे में रात बंद कर दिया जाए, तो अगस्तीन को न राम दिखाई पड़ेंगे न

कृष्ण, दिखाई पड़ेंगे क्राइस्ट। मीरा को न क्राइस्ट दिखाई पड़ेंगे न राम, दिखाई पड़ेंगे कृष्ण। तुलसीदास को न दिखाई पड़ेंगे क्राइस्ट, न दिखाई पड़ेंगे कृष्ण, दिखाई पड़ेंगे राम। उसी एक कमरे में तीनों को तीन भगवान दिखाई पड़ेंगे और बाकी के दो भगवान दिखाई नहीं पड़ेंगे और सुबह वे विवाद करेंगे आपस में कि तुम्हारे भगवान तो थे ही नहीं, मेरे ही भगवान थे।
जो जिसने निर्मित कर लिया है वही दिखाई पड़ सकता है। आज तक धर्म के नाम पर बहुत तरह की कल्पनाएं प्रचलित रही हैं। और उन कल्पनाओं को अनुभव करने वाले लोग निश्चित इस खयाल में पड़ जाते हैं कि जो अनुभव हुआ वह सत्य का अनुभव है। और उनको कोई कसूर भी नहीं देता। जहां तक उनका संबंध है वे जो जानते हैं उनको बिलकुल ठीक मालूम पड़ता है, उसमें उनका कोई कसूर भी नहीं। कसूर है तो एक कि वे उस विचार की फैक्लिटी को सुला देते हैं, जो निर्णय कर सकती थी कि जो है वह सच है या झूठ।
विश्वास इसीलिए इतने जोर से थोपा जाता है ताकि आपके भीतर का विचार सो जाए। अगर भीतर विचार है तो फिर इस तरह की कल्पनाओं को अनुभव करना संभव नहीं है। इसलिए विचार की हत्या की कोशिश की जाती है। जब विचार मर जाता है, सपने देखना आसान हो जाता है। और उन सपनों में आनंद भी मिलेगा, आनंद भी आएगा। क्योंकि वे सपने खुद के द्वारा निर्मित हैं इसलिए दुखद नहीं हो सकते, सुखद ही होंगे। और भगवान का दर्शन हो गया है, यह बड़े आनंद की बात है। इससे अहंकार की इतनी बड़ी तृप्ति होती है जितनी किसी और चीज से नहीं होती।
मुझे भगवान का दर्शन हो गया, मैंने भगवान को पा लिया, मैं भगवान को जानने वाला हूं और कोई भी नहीं। इसलिए इन भगवान को जानने वाले लोगों से अगर पूछें कि वह दूसरा आदमी भी कहता है कि मैं भगवान को जानने वाला हूं, वे हंसेंगे, वे कहेंगे, गलती कहता है। जानने वाला तो मैं ही हूं और कोई नहीं जानने वाला है। इसलिए तो दुनिया भर के साधु-संत लड़ते हैं आपस में कि मैं जानने वाला हूं, दूसरा जानने वाला नहीं है।
अगर दुनिया कभी अच्छी हुई तो इस तरह के मस्तिष्क का इलाज होना चाहिए। यह मस्तिष्क विकृत है। यह मस्तिष्क स्वस्थ नहीं है।
तो न तो श्रद्धा और न भक्ति कहीं ले जाती है। ले जाता है सिर्फ ज्ञान। कोई और मार्ग नहीं है, और सारे मार्ग सिर्फ दिखाई पड़ने वाले मार्ग हैं। ज्ञान के अतिरिक्त, जागरण के अतिरिक्त, स्वयं की चेतना के पूरी तरह विकसित होने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है। बाकी मार्ग सिर्फ दिखाई पड़ते हैं। सिर्फ दिखाई पड़ते हैं, है नहीं। और वे दिखाई पड़ने वाले मार्ग आसान हैं, क्योंकि उन पर चलना नहीं होता केवल सपना देखना होता है, केवल कल्पना करनी होती है।
ज्ञान का मार्ग कठिन दिखाई पड़ता है, क्योंकि उस पर चलना होता है, जीवन को बदलना होता है, अग्नि से गुजरना होता है, प्राण को काट-काट कर विकसित करता होता है भीतर किसी चेतना को। न तो नींद काम दे सकती है, न नशा, न कोई सपने काम दे सकते हैं। इसलिए श्रद्धा के छूटने से अगर भक्ति छूटती हो तो बहुत अच्छा, वे दोनों जुड़े हैं। वह एक

ही चीज का विकास है। विश्वास और श्रद्धा जाएगा तो भक्ति के खड़े होने के लिए कोई जगह नहीं है। नींद चली जाए तो सपने के खड़े होने को कोई जगह नहीं रह जाती। श्रद्धा की नींद में भक्ति के सपने आते हैं। श्रद्धा की नींद न हो तो भक्ति के सपनों की कोई जगह नहीं है। और उस भ्रांति का जो जागरण है और उस जागरण में जो जाना और देखा गया है, वही सत्य है।

स्मरण रखें, जहां मैं पूरी तरह प्रबुद्ध हूं, पूरी तरह विचार और विवेक से युक्त, और जहां मेरे मन पर कोई तंद्रा, कोई मादकता, कोई नशा, कोई कल्पना नहीं, उस परिपूर्ण जागरण में ही मैं जो जानूंगा वही सत्य हो सकता है और कुछ सत्य नहीं हो सकता। ऐसी परिपूर्ण जागरण की जो अवस्था है वही ज्ञान है।

सोना चाहते हो, बात अलग; नींद लेना चाहते हो, बात अलग, तब भक्ति और श्रद्धा काम दे सकती है। तब भक्ति और श्रद्धा पुराने रास्ते हो गए। मैस्कलीन और लिसर्जिक एसिड भी काम दे सकते हैं। और भी ढंग के नशे हैं वे भी काम दे सकते हैं। नशा कर लें और सपने देखें।

लेकिन सपनों से कोई जीवन नहीं बदलता। सपनों से कोई क्रांति नहीं आती। सपनों से कोई भीतर बुनियादी फर्क नहीं पड़ता। आप वही के वही आदमी बने रहते हैं। यह जो, यह जो चित्त का परिपूर्ण क्रांति है, दि टोटल म्यूटेशन जो है, पूरी बदलाहट जो है, वह बदलाहट तो सिर्फ जागरण से होती है। और उस जागरण का प्राथमिक सूत्र है, विवेक और प्राथमिक शत्रु है, विश्वास। इसलिए विश्वास नहीं विवेक; निद्रा नहीं जागरण; बेहोशी नहीं होश, ये जितने विकसित होंगे उतना जीवन सत्य के निकट पहुंचना आसान हो जाता है।

अंतिम रूप से एक छोटे प्रश्न की और चर्चा करूंगा और फिर चर्चा बंद करूंगा।

कुछ मित्रों ने पूछा है कि मैंने कहा कि मंदिर में जाना धर्म नहीं है, मूर्ति की पूजा करना धर्म नहीं है, भगवान की स्तुति करना खुशामद है, अगर ऐसा है तब तो फिर धर्म कुछ बचता ही नहीं। विश्वास भी करना नहीं, पूजा भी करनी नहीं, प्रार्थना भी करनी नहीं, मंदिर भी जाना नहीं, तब तो फिर धर्म बचता नहीं।

लेकिन शायद मेरी बात समझ में नहीं आई। अगर मेरी बात समझ में आ जाए जो इन सबको छोड़ कर जो बच रहता है वही धर्म है। नहीं समझ में आई उसके कारण हैं। पहली बात, मैंने आपसे यह कहा कि मूर्ति को पूजना धर्म नहीं है, उसका क्या अर्थ? उसका यह अर्थ कि जो व्यक्ति मनुष्य निर्मित मूर्तियों से बंध जाता है वह उस परमात्मा को कभी नहीं जान सकेगा जो कि मनुष्य निर्मित नहीं है।

यह मूर्ति भगवान नहीं है। यह मूर्ति तो मनुष्य की बनाई हुई है। और मनुष्य क्या भगवान को बना सकता है? मनुष्य भगवान को बना सके तब तो बड़ा आश्चर्य पैदा हो जाए। मनुष्य अपने को मिटा ले तो भगवान को जान सकता है लेकिन भगवान को बना ले तब तो न

स्वयं को जान सकता है और न भगवान को जान सकता है। भगवान को पाने का रास्ता भगवान बनाना नहीं है बल्कि खुद को मिटाना है।
मनुष्य अपने को मिटा ले उसकी हम कल सुबह बात करेंगे कि वह कैसे अपने को मिटा ले, वह न हो जाए।

कल संध्या मैं जहां बोलने गया था, तो मेरे सामने ही एक तख्ती पर लिखा हुआ था: गॉड इज़ एवरीथिंग एंड मैन इज़ समथिंग। लिखा था: ईश्वर सब कुछ है और मनुष्य थोड़ा कुछ, समथिंग। गलत है यह बात। गॉड इज़ एवरीथिंग एंड मैन इज़ नथिंग। ईश्वर सब कुछ है, मनुष्य कुछ भी नहीं है।

यह समथिंग जानने का जो भ्रम है कि मैं कुछ हूं, यही अस्मिता, यही अहंकार, यही ईगो, मनुष्य कुछ है यह जानने का जो खयाल है, यह एकदम भ्रामक है। जिस दिन मनुष्य जान पाता है कि मैं तो कुछ भी नहीं हूं, उसी क्षण वह जान लेता है कि परमात्मा सब कुछ है। ये अनुभव एक साथ घटित होते हैं। जिस क्षण मनुष्य जानता है मैं कुछ भी नहीं हूं, उसी क्षण, तत्क्षण जान लेता है कि परमात्मा सब कुछ है। और जब तक वह जानता है मैं कुछ हूं, तब तक परमात्मा के द्वार बंद हैं, वे नहीं खुलेंगे। यह अहंकार बाधा बन जाएगा, रुकावट बन जाएगा।

और यही अहंकार बनाता है मंदिर, यही अहंकार गढ़ता है मूर्तियां, यही अहंकार निर्मित करता है संप्रदाय। इसीलिए तो संप्रदाय लड़ते हैं। अगर संप्रदाय धर्म होते तो लड़ाई कैसे संभव थी? लड़ाई तो वहीं होती है जहां अहंकार होता है, नहीं तो लड़ाई नहीं होती। जहां अहंकार है वहां युद्ध है, वहां संघर्ष है। अहंकार लड़ाता है। मैं कुछ हूं, आप भी कुछ हैं, फिर लड़ाई होनी जरूरी है। यह सारा का सारा खेल जो हमें दिखाई पड़ता है हम सोचते हैं धर्म है, इसलिए डर पैदा होता है। कौन से मंदिर में धर्म है? और अगर मंदिरों में धर्म हो तब जमीन पर बहुत धर्म होता है क्योंकि मंदिर बहुत हैं। मंदिरों की कोई कमी है? सारी पृथ्वी मंदिर, चर्चों और मस्जिदों से भरी है। धर्म कहां है लेकिन? अगर इनसे धर्म होता तो और हम थोड़े मंदिर और चर्च बना लें तो धर्म बढ़ जाए, लेकिन हालत उलटी है, जितने मंदिर बढ़ते हैं उतना अधर्म बढ़ता है। हालत उलटी है, मंदिर और चर्चों के बढ़ने से धर्म नहीं बढ़ा। इनमें जाने वाले लोग धार्मिक हैं? अगर इनमें जाने वाले लोग धार्मिक हैं तो वे कौन से मुसलमान थे जिन्होंने हिंदुओं की हत्या की? और वे कौन से हिंदू हैं जो मुसलमानों की हत्या करते हैं? वे कौन से कैथेलिक हैं जो प्रोटेस्टेंट को मारते रहे हैं? वे कौन से प्रोटेस्टेंट हैं जो उनके दुश्मन हैं? इन मंदिरों और मस्जिदों में जाने वाले लोग अगर धार्मिक हैं तो फिर ये धर्म के नाम पर इन मंदिरों और मस्जिदों से निकली हुई हत्याओं का ब्योरा कौन देगा? कौन करेगा यह हिसाब? इतनी हत्या फिर किसके सिर जाएगी?

नहीं साहब, यह मंदिर और मस्जिद में जाने वाला आदमी बड़ा खतरनाक है। यह किसी भी दिन आग लगवा सकता है। क्योंकि जिस दिन यह चुनता है कि यह मंदिर धर्म का है उसी दिन यह कहने लगता है कि दूसरा जो चर्च है और मस्जिद है वह धर्म की नहीं है। और जो धर्म का नहीं है उसको मिटाना इसका कर्तव्य हो जाता है। जिस दिन यह चुनाव करता है कि यह मस्जिद भगवान की है, उसी दिन यह कह देता है यह जो मंदिर है मूर्ति वाला यह भगवान का नहीं शैतान का है। इसकी च्वाइस, इसके चुनाव में घोषणा हो गई दूसरे के अधर्म होने की, अब लड़ाई शुरू होगी।

और यह जो आदमी एक मंदिर को सोचता है कि यहां जाने से मैं धार्मिक हो जाऊंगा, इससे ज्यादा बचकानी और चाइल्डीश कोई बात हो सकती है? एक आदमी तेईस घंटे अधार्मिक है और एक मकान की सीढ़ियां चढ़ता है और घंटे भर के लिए धार्मिक हो सकता है? क्या चेतना ऐसी कोई चीज है? गंगा बहती है हिमालय से और गिरती है सागर में। अगर कोई कहे कि काशी में आ कर गंगा पवित्र हो जाती है, पहले भी अपवित्र थी और आगे भी अपवित्र, सिर्फ काशी के घाट पर पवित्र हो जाती है। तो हम हंसेंगे कि यह पागल है। क्योंकि जो गंगा पीछे थी वही तो काशी के घाट से भी निकलेगी। और जो काशी के घाट से निकलेगी वही तो आगे भी जाएगी। आगे भी अपवित्र, पीछे भी अपवित्र, तो काशी के घाट पर पवित्र हो जाती है, कैसे हो सकता है? अगर यह नहीं हो सकता तो तेईस घंटा चेतना की जो गंगा अपवित्र थी वह एक घंटा मंदिर में पवित्र कैसे हो सकती है? वही तो चेतना है। वही तो धारा है। वही तो गंगा है। केवल मंदिर की सीढ़ियां चढ़ने से वह पवित्र हो जाएगी? गलती में हैं आप। यह आदमी दूसरों को तो धोखा दे ही रहा है, खुद को भी धोखा दे रहा है। अगर आंख बंद करके भीतर देखेगा तो पाएगा, वही चेतना चल रही है। वही हिसाब, वही पाप, वही हिंसा, वही हत्याओं की योजना चल रही है भीतर, वे ही सिक्के गिने जा रहे हैं।

एक आदमी मर रहा था एक बार। बहुत बड़ा धनपति था। बहुत बड़ा व्यवसायी था। मरणशय्या पर पड़ा था। आखिरी क्षण थे और चिकित्सकों ने कहा, आज का सूरज अंतिम होगा। सूरज ढलने को था। वह भी ढलने को था। उसने एकदम आंख खोली, उसकी पत्नी उसके पैरों तले बैठी थी और उसने पूछा कि मेरा बड़ा लड़का कहां है? तो उसकी पत्नी को खयाल आया कि शायद प्रेम से भर कर वह पूछ रहा है। क्योंकि उस आदमी ने कभी यह नहीं पूछा था कि मेरा बड़ा लड़का कहां है?

जो पैसे के हिसाब में रहता है वह प्रेम का हिसाब कभी भी नहीं कर पाता। या तो पैसे का हिसाब होता है या प्रेम का हिसाब होता है। ये दोनों खजाने एक साथ नहीं भरे जा सकते। इसलिए जिसके पास जितनी पैसे की पकड़ होती है प्रेम उतना ही क्षीण हो जाता है। और जिसका प्रेम विराट होता है उसके पैसे की पकड़ चली जाती है।

तो जिंदगी भर उसने पैसे के हिसाब तो पूछे थे कि रुपया कहां है, लेकिन उसने यह कभी नहीं पूछा था मेरा बड़ा लड़का कहां है? उसकी पत्नी ने सोचा, आज शायद प्रेम से भर कर उसे खयाल आ गया, अंतिम क्षणों में शायद वह प्रेम से भर गया है। अच्छा है, धन्य भाग्य है यह कि अंतिम क्षण उसके प्रेम और प्रार्थना से भरे हुए हों। तो उसने कहा, आप निश्चिंत रहें, आपका बड़ा लड़का आपके बगल में ही बैठा हुआ है। और उसने पूछा, उससे छोटा? उसकी पत्नी और भी अनुगृहीत हो गई कि वह सबकी याद कर रहा है। उसकी पत्नी ने कहा, वह भी आपके बगल में बैठा हुआ है। उसने पूछा, उससे छोटा? वह भी बगल में बैठा हुआ है। उससे छोटा? उसके पांच लड़के थे, उसने पांचों के बाबत पूछा। और अंत में वह एकदम उठ कर बैठ गया और उसने कहा, इसका क्या मतलब, फिर दुकान पर कौन बैठा हुआ है?

वह अब भी पैसों का ही हिसाब कर रहा था। वह पत्नी गलती में थी कि वह प्रेम का लेखा-जोखा कर रहा है अंतिम क्षणों में।

असल में जिसने जीवन भर पैसे का हिसाब किया हो अंतिम क्षण में भी वह पैसे का ही हिसाब करेगा। अंतिम क्षण में भी, और जो मंदिर की सीढ़ियों के बाहर पैसों का हिसाब करता रहा, वह मंदिर के भीतर भी पैसों का हिसाब करेगा। उसकी बंद आंखें देख कर भूल में मत पड़ जाना। उसके भीतर वही हिसाब चल रहा है जो बाहर चल रहा था। उसके चंदन और टीका को देख कर धोखे में मत पड़ जाना। वह चंदन और टीका लगाते वक्त भी वही हिसाब चल रहा है जो बाहर चल रहा था। यह वही आदमी है। आदमी ऐसे नहीं बदला करता। आदमी बदलता है तो पूरा बदलता है, नहीं तो नहीं बदलता। आदमी की कोई खंड-खंड बदलाहट नहीं होती। कोई ऐसा नहीं होता एक घड़ी को अच्छा हो जाए और दस घड़ी को बुरा हो जाए। ऐसा नहीं होता। चेतना इकट्ठी है, वह पूरी बदलती है। तो जिसकी चेतना पूरी बदलती है वह मंदिर नहीं जाता बल्कि वह जहां भी जाता है वहीं पाता है कि मंदिर है। जिसकी चेतना बदल जाती है वह किसी परमात्मा की तलाश में किसी मकान में नहीं जाता बल्कि जहां भी आंख डालता है पाता है कि परमात्मा है।

मंदिर जाने वाला धार्मिक नहीं है, लेकिन जो आदमी हर क्षण अपने को मंदिर में पाता है वह धार्मिक जरूर है। भगवान की मूर्ति पूजने वाला धार्मिक नहीं है, लेकिन जो हर मूर्ति में पाता है कि भगवान है, वह धार्मिक है। जो हर मूर्ति में पाता है कि भगवान है। हर मूर्तिमंत जो भी आकार है उसमें उसी निराकार की ध्वनि और संगीत उसे सुनाई पड़ता है, वह धार्मिक है। लेकिन जो कहता है इस मूर्ति में भगवान है, इससे तो पक्का जान लेना कि उसे अभी पता नहीं। क्योंकि वह यह कहता है इस मूर्ति में भगवान है, इसका मतलब है कि बाकी जगह और क्या है? शेष जगह और क्या है फिर? शेष जगह भगवान नहीं है? चुनाव,

सिलेक्शन इस बात को बता देता है कि शेष जगह नहीं है। यहां है, इसलिए मैं इतनी यात्रा करके इस मंदिर तक आता हूं। नहीं तो सब जगह वही था।

ये जो, ये जो हमारे चित्त के खंड-खंड हमने धर्म बनाए हुए हैं, ये अपने को धोखा देने के लिए, सेल्फ डिसेप्शन के लिए, ताकि बिना धार्मिक हुए धार्मिक होने का मजा आ जाए। सुबह उठ कर मंदिर हो आए, सोचा कि धार्मिक हैं।

मोहम्मद एक दिन सुबह अपने एक मित्र को उठा कर मस्जिद ले गए। वह रोज सोया रहता था। उस दिन उसे उठा कर लेकर मस्जिद ले गए। वह पहली दफा मस्जिद गया। जब वापस लौटते थे तो अनेक लोग रास्तों पर अभी तक सोए हुए थे। उस मित्र ने मोहम्मद से कहा, देखते हो हजरत, ये लोग कैसे अधार्मिक हैं अभी तक सो रहे हैं। मोहम्मद ने हाथ जोड़े परमात्मा की तरफ आकाश में और कहा, हे परमात्मा! क्षमा कर, मुझसे भूल हो गई इस आदमी को ले जाकर। कल तक यह बेहतर था, कम से कम दूसरों को अधार्मिक तो नहीं समझता था। आज और एक भूल हो गई। आज यह एक दफा मस्जिद क्या हो आया, यह कह रहा है कि मैं धार्मिक हूं और बाकी ये सब अधार्मिक हैं। उस आदमी से कहा, ेभई, तू कल से मत आना। और तू वापस जा, मेरी नमाज खराब हो गई है, मैं फिर से जाकर नमाज पढ़ आऊं।

यह जिसको हम धार्मिक आदमी समझते हैं, जो मंदिर हो आता है, यह बड़ा मजा ले रहा है आपको अधार्मिक बताने का और बड़े सस्ते में। धार्मिक होना बड़ी दूसरी बात है, इतनी सस्ती और आसान नहीं। बड़ी क्रांति की बात है।

वह क्रांति कैसे घटित हो सकती है, उसके दो सूत्रों की चर्चा मैंने आपसे की, कल तीसरे सूत्र की आपसे चर्चा करूंगा।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। अंत में सभी के भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

अंतर की खोज

छठा प्रवचन

मेरे प्रिय आत्मन्!

एक छोटी सी घटना से मैं अपनी चर्चा शुरू करना चाहूंगा।

एक राजा शिकार को निकला था। जंगल में रास्ता भटक गया, रात हो गई, अपने साथियों से बिछुड़ गया। दूर थोड़ा सा प्रकाश दिखाई पड़ा, उस ओर गया, पाया कि जंगल के बीच ही एक छोटी सी सराय थी। वह उसमें ठहरा। सुबह उसने उस सराय के मालिक को कहा, क्या कुछ अंडे मिल सकेंगे? अंडे उपलब्ध थे। उसने सुबह अंडे लिए, दूध लिया और पीछे पूछा कि क्या दाम हुआ? उस सराय के बूढ़े मालिक ने कहा, सौ रुपये। वह राजा हैरान हो गया। उसने बड़ी महंगी चीजें जीवन में खरीदी थीं लेकिन दो अंडों के दाम सौ रुपये होंगे इसकी उसे कल्पना भी नहीं थी। उसने उस सराय के मालिक को कहा, आर एग्स सो रेयर हियर? क्या अंडे इतनी मुश्किल से यहां मिलते हैं कि सौ रुपये उनके दाम हो जाएं? वह बूढ़ा मालिक हंसा और उसने कहा, एग्स आर नॉट रेयर सर, बट किंग्स आर। उसने कहा, अंडे तो मुश्किल से नहीं मिलते, लेकिन राजा बड़ी मुश्किल से मिलते हैं। उस राजा ने सौ रुपये निकाले और दे दिए। उस बूढ़े सराय के मालिक की पत्नी बहुत हैरान हुई। राजा के जाते ही उसने पूछा कि हद हो गई, तुम सौ रुपये निकाल सके उस राजा के खीसे से दो अंडों के लिए? कौनसी तरकीब उपयोग में लाई? कौनसा रहस्य है इसका?

वह बूढ़ा आदमी बोला, मैं आदमी की कमजोरी जानता हूं।

उसकी औरत ने पूछा, यह आदमी की कमजोरी क्या है? क्या है यह आदमी की कमजोरी?

वह बूढ़ा बोला, तुझे मैं एक और घटना सुनाता हूं, उससे शायद तुझे आदमी की कमजोरी समझ में आ जाए।

मैं जवान था और मैं एक बहुत बड़े सम्राट के दरबार में गया। मैंने एक पांच रुपये में सस्ती सी पगड़ी खरीदी थी। लेकिन उसे बहुत अच्छे ढंग से रंगवाया था, बड़े चमकदार उसके रंग थे। मैं वह पगड़ी बांध कर दरबार में पहुंचा। अजनबी था उस देश में। राजा ने दरबार में मेरी पगड़ी देखते ही पूछा, इस पगड़ी के क्या दाम हैं? मैंने कहा, एक हजार स्वर्णमुद्राएं। वह राजा हंसा और बोला क्या कहते हो, एक हजार स्वर्णमुद्राएं? और तभी उसके वजीर ने राजा के कान में कहा, महाराज, सावधान रहें, यह आदमी बड़ा चालाक मालूम पड़ता है। दो-चार रुपये की पगड़ी है और हजार स्वर्णमुद्राएं दाम बता रहा है। लुटेरा मालूम होता है।

उस बूढ़े आदमी ने कहा, मैं समझ गया कि वजीर क्या कह रहा है। क्योंकि वजीर राजा को लूटता रहा होगा। वह दूसरे लुटेरे को पसंद नहीं करेगा। लेकिन, मैंने तभी कहा कि मैं जाता

हूं फिर। राजा ने पूछा, कैसे आए और कैसे चले? तो मैंने कहा, मैंने जिस आदमी से यह पगड़ी खरीदी थी, मैं भी डरा था और मैंने कहा, एक हजार स्वर्णमुद्राएं? तो वह आदमी मुझसे बोला था, इस जमीन पर एक ऐसा सम्राट भी है जो इसके पांच हजार स्वर्णमुद्राएं भी दे सकता है। तो मैं जाऊं? यह वह दरबार नहीं है, यह वह सम्राट नहीं है जिसको मैं खोज रहा हूं। मुझे कोई और दरबार में जाना पड़ेगा, कोई और सम्राट खोजना पड़ेगा। तो मैं जाऊं? उस सम्राट ने कहा, दस हजार स्वर्णमुद्राएं इसे दे दी जाएं और पगड़ी खरीद ली जाए।

दस हजार स्वर्णमुद्राओं में मेरी पगड़ी बिक गई। वजीर बहुत हैरान हुआ। और जब मैं दरबार से रुपये लेकर बाहर निकल रहा था, तो वजीर ने मुझसे पूछा कि मेरे मित्र, थोड़ा मुझे समझाओ तो कि राज क्या है इस बात का? यह पगड़ी पांच रुपये से ज्यादा की नहीं है। तो मैंने उस वजीर के कान में कहा, मेरे मित्र, तुम्हें पगड़ियों के दाम मालूम होंगे मुझे आदमियों की कमजोरियां मालूम हैं।

यह आदमी की कमजोरी क्या है? इस पर ही आज सुबह मैं आपसे कुछ कहना चाहता हूं। और आदमी की जो कमजोरी है वही परमात्मा के मार्ग पर रुकावट है। और आदमी की जो कमजोरी है वही उसके जीवन में प्रकाश आने में बाधा है। और आदमी की जो कमजोरी है वही दीवाल है जो द्वार को नहीं खुलने देती और जीवन दुख और पीड़ा से भर जाता है, अंधकार से भर जाता है।

क्या है आदमी की कमजोरी? यह क्या है ह्यूमन वीकनेस?

अहंकार आदमी की कमजोरी है। दंभ, ईगो आदमी की कमजोरी है। मैं कुछ हूं, यह आदमी की कमजोरी है। और जब तक कोई इस कमजोरी से घिरा है, तब तक वह किन्हीं मंदिरों की तलाश करे और किन्हीं शास्त्रों को पढ़े और कैसी ही पूजाएं करे और कैसे ही त्याग और उपवास करे, संन्यासी हो जाए और जंगलों में चला जाए, कोई फर्क न पड़ेगा, बल्कि यह कमजोरी इतनी अदभुत है कि वे सब चीजें भी इसी कमजोरी को और मजबूत करने में कारण बन जाएंगी।

एक आदमी के पास लाखों रुपये हों, वह उनका त्याग कर दे, तो हम कहेंगे, यह परमात्मा के रास्ते पर चला गया। लेकिन इतनी आसान बात नहीं है परमात्मा के रास्ते पर जाना। रुपयों से परमात्मा को खरीदना आसान नहीं है कि कोई रुपये छोड़ दे और परमात्मा को खरीद ले। बल्कि यह भी हो सकता है और यही होता है कि वह आदमी रुपये छोड़ कर भी उसी कमजोरी से भरा रह जाएगा जो कमजोरी रुपयों के होते हुए थी।

एक संन्यासी ने मुझसे कहा, मैंने लाखों रुपयों पर लात मार दी। एक बार कहा, दो बार कहा, तीन बार कहा। मेहमान था मैं उनके आश्रम में। फिर चलते वक्त मैंने उनसे पूछा, यह लात आपने कब मारी थी? उन्होंने कहा, कोई तीस वर्ष हुए। मैंने उनसे कहा, अगर बुरा न माने तो मैं निवेदन कर दूं, लात ठीक से लग नहीं पाई, अन्यथा तीस वर्षों के बाद भी उसकी याद कैसे हो सकती थी?

लाखों रुपये आपके पास रहे होंगे तब यह अहंकार रहा होगा कि मेरे पास लाखों रुपये हैं, मैं कुछ हूं, उस समबडी होने का खयाल रहा होगा। फिर लाखों रुपये छोड़ दिए, तब से यह खयाल है कि मैंने लाखों रुपये छोड़े हैं, मैं कुछ हूं। मैंने लाखों रुपये छोड़े हैं! वह जो अहंकार लाखों रुपये के होने से भरता था वह अहंकार अब लाखों रुपये के छोड़ने से भी भर रहा है। कमजोरी वहीं की वहीं है। बात वहीं अटकी है उसमें कोई फर्क नहीं आया।

धन वाले का अहंकार होता है, धन छोड़ने वाले का अहंकार होता है। अच्छे वस्त्र पहनने वाले का अहंकार होता है, सादे वस्त्र पहनने वाले का अहंकार होता है। बड़े मकान बनाने वाले का अहंकार होता है, झोपड़ियों में रहने वाले का अहंकार होता है। अहंकार के बड़े सूक्ष्म रास्ते हैं। वह न मालूम किन-किन रूपों से अपनी तृप्ति कर लेता है। न मालूम किन-किन रूपों से यह खयाल पैदा हो जाता है मैं कुछ हूं।

एक आदमी सारे वस्त्र छोड़ कर नग्न खड़ा हो जाए उसका अहंकार होता है कि मैं कुछ हूं। तुम, तुम जो कपड़े पहने हुए हो तुम क्या हो, ना-कुछ, मैं हूं कुछ, जिसने सब वस्त्र भी छोड़ दिए और नग्न हो गया हूं।

इसीलिए तो संन्यासियों के अहंकार को छूना गृहस्थियों के हाथ की बात नहीं। त्याग करने वाले का अहंकार इसलिए बड़ा हो जाता है कि भोग तो छीना जा सकता है त्याग छीना भी नहीं जा सकता। मेरे पास कपड़े हैं और उनका अहंकार है, तो कपड़े तो छीने भी जा सकते हैं लेकिन अगर मैं नंगा खड़ा हो गया, तो मेरी नग्नता कैसे छीनी जा सकती है। वह संपत्ति ऐसी है जिसे मुझसे कोई नहीं छीन सकता। अगर मेरे पास करोड़ों रुपये हैं तो कल नष्ट भी हो सकते हैं, खो भी सकते हैं, चोरी भी जा सकते हैं, मेरा अहंकार टूट भी सकता है, लेकिन अगर मैंने लाखों रुपये छोड़ दिए, तो मैंने छोड़ दिए हैं लाखों रुपये, इससे छूटने का अब कोई उपाय नहीं है, इससे मुक्त होने का कोई उपाय नहीं है।

यह अहंकार, यह मैं कुछ हूं, सबसे बड़ी भ्रांति है जो मनुष्य को पकड़ लेती है। कोई कारण नहीं है इस भ्रांति के पकड़ लेने का। कोई बुनियाद नहीं है। यह अहंकार का भवन बिलकुल बेबुनियाद है, इसका कोई आधार नहीं है, इसकी कोई नींव नहीं है, यह मकान बिलकुल ताश के पत्तों का है। लेकिन जैसे ताश के पत्तों का महल बनाने में एक सुख मालूम होता है, वैसे ही इस अहंकार को खड़े होने में भी एक सुख मालूम होता है।

क्यों मनुष्य अपने अहंकार को खड़ा करना चाहता है? कौन से कारण हैं उसके अहंकार को खड़ा करने के? पहला कारण तो यह है कि कोई भी मनुष्य यह नहीं जानता कि वह कौन है? यह बात इतनी घबड़ाने वाली है, यह अज्ञान इतना पीड़ा देने वाला है, इतनी एंज़ायटी पैदा करने वाला है कि मुझे पता भी नहीं कि मैं कौन हूं? इस अज्ञान को ढांकने के लिए मैं कोई उपाय कर लेता हूं, कहने लगता हूं, मैं यह हूं, मैं वह हूं, मैं धनपति हूं, मैं त्यागी हूं, मैं ज्ञानी हूं, मैं यह हूं, मैं वह हूं।

जरूरी है, यह इतनी घबड़ाने वाली बात है कि मैं अपने को नहीं जानता। यह इतनी ज्यादा ह्यूमिलिएटिंग है, यह इतनी ज्यादा अपमानजनक है कि मैं अपने को नहीं जानता। तो मैं

किसी भांति अपना एक रूप खड़ा कर लेता हूं, कहने लगता हूं, मैं यह हूं, कौन कहता है कि मैं अपने को नहीं जानता?

इस भांति एक सेल्फ डिसेप्शन, एक आत्मवंचना देकर हम अपनी तृप्ति खोज लेते हैं कि मैं कुछ हूं। लेकिन क्या इस भांति हम अपने को जान पाते हैं? क्या आप जानते हैं कि आप कौन हैं? क्या आपको पता है कि क्या है वह जो आपके भीतर जीवंत है? वह जो लीविंग कांशसनेस है, वह जो चेतना है आपके भीतर, जो जीवन है वह क्या है? कुछ पता है उसका? झूठी बातें न दोहरा लें अपने मन में कि मैं आत्मा हूं। किताब में पढ़ लिया होगा इससे कुछ पता नहीं होता है। यह मत कह लें अपने मन में कि मैं ईश्वर का अंश हूं। पढ़ लिया होगा कहीं इससे काई फर्क नहीं पड़ता है।

सचाई यह है कि पता नहीं भीतर क्या है? तथ्य यह है कि नहीं मालूम कौन भीतर बैठा है? और उस व्यक्ति को जिसे यह भी पता न हो कि मैं कौन हूं, क्या उसके जीवन में सत्य का कोई अवतरण हो सकता है? जिसे यह भी पता न हो कि मैं कौन हूं वह भी अगर ईश्वर की खोज में निकल पड़े तो पागल है।

एक संन्यासी पश्चिम की यात्रा करके भारत वापस लौटा था। वह एक राजा के महल में मेहमान हुआ। वह राजा बूढ़ा हो गया था और वर्षों से लोगों से पूछता था, जो भी संन्यासी, ज्ञानी उसके गांव में आ जाते थे उनसे पूछता था, क्या मुझे ईश्वर से मिला दे सकते हो? वे ज्ञानी और त्यागी और संन्यासी--गीता की, उपनिषदों की और सारे ज्ञान की बातें करते थे, लेकिन वह राजा रोक देता था कि नहीं, बातचीत मत करो, मैं तो मिलना चाहता हूं ईश्वर से, मिला सकते हो तो बोलो? हां कहो या न कहो। निश्चित ही कौन हां कहता उससे? राजा जीत जाता था और वे संन्यासी हार जाते थे और चुप रह जाते थे।

यह संन्यासी भी, नया संन्यासी भी उसके घर मेहमान हुआ। वह सुबह ही उसके पास पहुंचा और उसने कहा, एक मेरा प्रश्न है और एक ही मेरा प्रश्न है दूसरा मेरा प्रश्न नहीं है। और यह आपको जता दूं कि यह प्रश्न मैं सैकड़ों लोगों से पूछ चूका हूं और आज तक कोई उत्तर नहीं दे सका, और यह भी मैं आपको बता दूं कि मैं बातचीत नहीं चाहता हूं, मैं ठोस, ठोस उत्तर चाहता हूं।

संन्यासी ने कहा, पहले प्रश्न पूछें।

उस राजा ने कहा, मैं ईश्वर से मिलना चाहता हूं, मिला सकते हैं? सीधा उत्तर दें, बातचीत और सिद्धांत नहीं चाहिए। सोचा था जैसे और संन्यासी निरुत्तर रह गए थे, वह भी रह जाएगा। लेकिन वह बड़ा अजीब संन्यासी रहा होगा।

उसने कहा, मेरे मित्र, अभी मिलना चाहते हैं या थोड़ी देर ठहर सकते हैं?

राजा थोड़ा चिंतित हुआ। उसकी यह आशा न थी, अपेक्षा न थी। सोचा कि शायद कोई भूल हो गई है। शायद वह कोई ईश्वर नाम वाले आदमी की बात समझ गया है।

तो राजा ने कहा, माफ करें, सोचता हूं कोई भूल हो गई है, मैं परमात्मा की बात कर रहा हूं, परमात्मा से मिलने की बात कर रहा हूं, मुझसे मिला सकते हैं?

उस संन्यासी ने कहा, आप अब बातचीत न करें। ठोस उतर आएं मैदान में। अभी मिलना चाहते हैं या थोड़ी देर रुक सकते हैं? बातचीत मुझे भी पसंद नहीं है। अब बकवास मैं नहीं सुनूंगा।

राजा थोड़ा हैरान हुआ। इतनी तैयारी उसकी भी न थी। अगर आपको भी मैं पकड़ लूं गर्दन से और कहूं, अभी मिलना है ईश्वर से? तो आप कहेंगे, मैं थोड़ा घर पूछ आऊं, अपने गार्जियन की सलाह ले आऊं, अपनी पत्नी से या अपने पति से पूछ आऊं या थोड़े अपने बच्चों से पूछ लूं, या इतनी जल्दी क्या है? फिर थोड़े दिन बाद भी हो सकता है मिलना। वह राजा थोड़ा मुश्किल में पड़ गया। जिस मुश्किल में वह दूसरे लोगों को डालता रहा था वह मुश्किल आज उसके ऊपर ही गिर गई थी। आज मस्जिद मुल्ला के ऊपर गिर गई थी।

वह बोला कि क्या मतलब है आपका? संन्यासी ने कहा, मतलब साफ है। बातचीत क्यों कर रहे हैं? आपका क्या मतलब था, ईश्वर से मिलना है न? राजा ने कहा, हां, मिलना तो है। थोड़ा डरा हुआ था। ईश्वर से मिलने में कोई भी डर जाएगा। क्योंकि ईश्वर के सामने खुद को खड़े करने की सामर्थ्य तभी हो सकती है जब आप खुद अपने सामने खड़े हो गए हों। नहीं तो बड़ा भय मालूम होगा कि मेरे जैसा आदमी ईश्वर के सामने खड़ा होगा तो क्या स्थिति बनेगी? कैसा दीन-हीन हूं? इस शक्ल को लेकर, इस आदमी को लेकर ईश्वर के सामने कैसे जाऊं? उसकी किरणें तो छेद देंगी और पार कर देंगी। और मेरे भीतर जो सारी कुरूपता है, जो अग्लीनेस है वह उभर कर बाहर आ जाएगी। तो क्या मैं इस योग्य हूं कि उसके सामने खड़ा हो जाऊं? आंखें मजबूत चाहिए सूरज की तरफ देखने के लिए, नहीं तो आंखें झप जाएंगी। और प्राण भी मजबूत चाहिए परमात्मा के समक्ष खड़े होने को, नहीं तो अंधापन पैदा हो जाएगा।

वह घबड़ा आया था, लेकिन खुद ही प्रश्न पूछा था इसलिए मजबूरी थी। उसने कहा कि हां, अब आप कहते हैं तो अभी ही मिला दें। ऐसे वह बहुत सुस्त हो गया था और घबड़ा गया था। और डरा हुआ था कि अब क्या होने वाला है? यह आदमी बहुत गड़बड़ मालूम होता है। उस संन्यासी ने कहा, इतने भयभीत न हों, क्योंकि ईश्वर मिलने को राजी भी हो जाए तो शायद आप खुद अभी राजी नहीं हैं। एक छोटा सा कागज ले लें और उस पर लिख दें कि आप कौन हैं, ताकि मैं पहुंचा दूं ईश्वर के पास।

राजा ने कहा, यह तो ठीक है, मुझसे भी कोई मिलने आता है तो मैं पूछ लेता हूं नाम, ठिकाना, पता, कौन हो? क्या हो? हर किसी से तो मैं भी नहीं मिलता हूं। राजा ने लिखा उस कागज पर अपना नाम, लिखा कि मैं फलां राज्य का मालिक हूं, फलां महल में रहता हूं, यह, वह, सब बातें लिखीं। बड़ी उपाधियां थीं उसकी, बड़ी पदवियां थीं, वे सब लिखीं, और वह कागज संन्यासी के हाथ में दिया।

वह संन्यासी हंसने लगा। और उसने कहा, बड़े झूठे हैं आप। अपना पता लिखें, यह सब क्या लिखा हुआ है?

राजा ने कहा, शक मुझे पहले ही हो गया था कि मैं किसी पागल से मिल रहा हूं। जब तुमने कहा कि अभी मिलना चाहते हो या थोड़ी देर ठहर सकते हो तभी संदेह उठा था। अब संदेह मजबूत हो गया। यह मेरा पता है, यह मैं हूं। मैं हूं राजा इस नगर का, यह तुम्हें पता नहीं? मेरे महल में ठहरे हो और कहते हो मैं झूठ बोल रहा हूं? सारे नगर की गवाही खड़ी कर सकता हूं कि मैं राजा हूं।

संन्यासी ने कहा, इससे कोई फर्क नहीं पड़ सकता। हो सकता है तुम्हारा पूरा नगर झूठ बोलने वालों का नगर हो। और हो सकता है तुम सबसे बड़े झूठ बोलने वाले हो इसलिए छोटे झूठ बोलने वाले तुम्हारे पक्ष में खड़े हो जाएं। इससे फर्क नहीं पड़ता। यह सवाल नहीं है, किसी की गवाही और विटनेस लाने की जरूरत नहीं है। मैं तुमसे यह पूछता हूं, तुम आज राजा हो, कल अगर राजा न रह जाओ, कल अगर भिखारी हो जाओ, तो तुम्हारे भीतर कुछ बदल जाएगा या तुम तुम ही रहोगे?

उस राजा ने कहा, इससे क्या फर्क पड़ता है, मेरा राज्य चला जाए और मैं भिखारी भी हो जाऊं, तो भी मैं तो मैं ही रहूंगा। राज्य न रहेगा, संपत्ति न रहेगी, लेकिन मैं, मैं तो मैं ही रहूंगा।

तो संन्यासी ने कहा, एक बात तय हो गई कि राजा होना तुम्हारा अनिवार्य परिचय नहीं, एसेंशियल परिचय नहीं है। राजा तुम न रह जाओ तो भी तुम रहते हो और बदलते नहीं, तो फिर तुम कुछ और हो राजा होने से। राजा होने में ही तुम समाप्त नहीं हो जाते।

संन्यासी ने पूछा, यह तुम्हारा जो नाम है अगर दूसरा नाम रख दिया जाए तुम्हारा तो तुम बदल जाओगे?

राजा ने कहा, नाम के बदलने से क्या होता है, नाम कोई भी हो मैं तो मैं ही रहूंगा।

उस संन्यासी ने कहा, तब यह भी तय हो गया कि नाम भी तुम्हारी सत्ता का अनिवार्य हिस्सा नहीं है, एसेंशियल पार्ट नहीं है, नॉन-एसेंशियल है। सारभूत नहीं, आवश्यक नहीं, नाम कुछ और भी हो सकता है। अ से ब हो सकता है, ब से स हो सकता है। उससे कोई फर्क नहीं पड़ता, तुम तुम रहते हो। इसलिए नाम भी तुम्हारा परिचय न रहा। फिर तुम्हारा परिचय क्या है? अब मैं दुबारा पूछ लूं।

उस राजा ने कहा, तब तो मैं मुश्किल में पड़ गया। जरूर इन चीजों से अलग मैं हूं, लेकिन फिर मैं क्या हूं, मुझे कुछ भी पता नहीं।

उस संन्यासी ने कहा, तो जाओ लौट जाओ। जिस दिन यह जान सको कि तुम कौन हो उस दिन आ जाना। उस दिन मैं खबर कर दूंगा। अभी मैं क्या कहूं कि कौन मिलने को आया है? आखिर परमात्मा से मैं क्या कहूं कि कौन मिलने को आया है? किसकी खबर करूं? तो जिस दिन तुम्हें पता चल जाए कि तुम कौन हो लौट आना और मैं तुम्हें परमात्मा से मिला दूंगा।

संन्यासी की बात तो यहीं खत्म हो गई थी। लेकिन अगर वह राजा मुझे मिल जाए तो उससे मैं यह कह दूं कि जिस दिन तुम जान लोगे कि तुम कौन हो उस दिन तुम्हें किसी के पास

जाने की जरूरत नहीं रह जाएगी। क्योंकि वह जो तुम्हारे भीतर बैठा है वही परमात्मा है। जिस दिन उसे जान लोगे उस दिन और कोई परमात्मा की खोज की जरूरत नहीं है। और जिस दिन अपने भीतर जो है वह दिखाई पड़ जाएगा उसी दिन वह भी दिखाई पड़ जाएगा जो सबके भीतर है।

समुद्र की एक बूंद को हम जान लें तो पूरा समुद्र जान लिया जाता है। सूरज की एक किरण को हम पहचान लें तो प्रकाश के अनंत-अनंत स्रोत भी पहचान लिए गए। और अपने भीतर चेतना का एक दीया भी समझ में आ जाए तो वह सबके भीतर जो व्याप्त है--मनुष्यों में, पक्षियों में, पौधों में, पत्थरों में, सब तरफ जो जीवन व्याप्त है वह जीवन भी पहचान लिया गया। उसका एक अणु पहचान लिया गया वह सारा जीवन पहचान लिया गया। इसलिए जो खुद को जान ले उसे खुदा को जानने के लिए कुछ भी बाकी नहीं रह जाता है।

वह राजा और उसकी बात मैंने आपसे कही। क्या वही बात आपकी भी अपनी नहीं है? और क्या अच्छा न होगा कि उस राजा को छोड़ दूं और आपको पकड़ लूं? और चर्चा राजा की हट जाए और आपकी आ जाए? क्या आप भी अपने को जानते हैं? नाम जानते होंगे, घर जानते होंगे, पिता का नाम जानते होंगे, पदवियां, उपाधियां जानते होंगे, डिग्रियां जानते होंगे, यह हूं, वह हूं जानते होंगे। यह सारा परिचय वस्त्रों से ज्यादा गहरा नहीं है, कपड़ों से ज्यादा गहरा नहीं है। कपड़ों के भीतर कौन छिपा है? नहीं, कपड़ों से ज्यादा हमारी कोई पहचान नहीं है।

एक महाकवि को एक सम्राट ने आमंत्रित किया था भोजन के लिए। गरीब था वह कवि, बहुत फटे-पुराने उसके वस्त्र थे। उसके मित्रों ने कहा, इन वस्त्रों में मत जाओ, वहां कोई न पहचानेगा, क्योंकि दुनिया में वस्त्रों के सिवाय और कोई पहचान नहीं। लेकिन वह कवि न माना, उन्हीं फटे-पुराने वस्त्रों में राजा के महल चला गया। द्वारपाल ने धक्के देकर बाहर निकाल दिया। उसने बहुत कहा कि मैं राजा का मित्र हूं और आमंत्रित हूं। द्वारपाल ने कहा, भाग जाओ, नहीं तो पागलखाने का रास्ता दिखाना पड़ेगा। तुम और राजा के मित्र! थोड़ी शर्म भी नहीं आती। जरा अपनी शक्ल किसी दर्पण में देखो जाकर। मजबूरी, उसे वापस लौट आना पड़ा।

मित्रों ने कहा, तुम गलती में हो। वस्त्र पहचाने जाते हैं। वस्त्रों के सिवाय आदमी की कोई पहचान नहीं। तो हम तुम्हारे लिए वस्त्र ले आते हैं। वे वस्त्र ले आए कहीं से मांग कर। सुंदर, बहुमूल्य, उस कवि ने उन्हें पहना और वह वापस पहुंचा। वही द्वारपाल जिसने धक्के दिए थे, पैरों तक झुक कर उसने प्रणाम किया और कहा, आएं, भीतर आएं। भागा हुआ राजा को खबर दी। राजा गले मिला। भोजन पर बिठाया। तो उस कवि ने भोजन का पहला कौर लिया और अपने वस्त्रों को खिलाने लगा, अपनी पगड़ी को, अपने कोट को, और कहने लगा, पगड़ी खाओ, कोट खाओ। राजा ने कहा, बड़ी अजीब आदतें हैं आपके भोजन की। ऐसी आदतें तो कभी देखी नहीं। उस कवि ने कहा, मैं तो पहले भी आया था इस द्वार पर लेकिन वापस लौटा दिया गया। अब जो आए हैं वे वस्त्र हैं। जिनके कारण मैं भीतर आया हूं

उनको भूल जाऊं और भोजन न कराऊं तो बड़ी अकृतज्ञता होगी। ये वस्त्र ही आए हैं मैं तो पहले भी आया था लौटा दिया गया। इसलिए अब मेरे आने न आने का कोई मतलब नहीं है। इन वस्त्रों को खिलाना जरूरी है। वस्त्र नाराज हो जाएं तो बड़ी कठिनाई हो जाएगी।

हमारी सारी पहचान वस्त्रों की है, अपने संबंध में भी, दूसरों के संबंध में भी। और इन वस्त्रों की पहचान का जो केंद्र है वही अहंकार है, वही ईगो है। हमारा पद, हमारा घर, हमारा नाम, हमारा वंश, हमारा परिवार, हमारा देश, हमारा धर्म, इन सबके वस्त्रों के बीच का जो केंद्र है, मैं, इन सबसे जो भरता है और परिपूरित होता है, मैं। मैं कुछ होता चला जाता हूं। छोटी कुर्सी से बड़ी कुर्सी पर बैठता हूं, तो मैं और बड़ा हो आता हूं। थोड़े धन से बड़ा धन मेरे पास होता है, तो मैं और बड़ा हो आता हूं। छोटे नेता से मैं बड़ा नेता होता हूं, तो मैं और बड़ा हो आता हूं। थोड़े अनुयायियों की जगह ज्यादा अनुयायी मुझे मिल जाते हैं, ज्यादा शिष्य मिल जाते हैं, तो मैं और बड़ा हो आता हूं। बड़ा गुरु हो आता हूं।

ऐसे मैं बढ़ता चला जाता है और इकट्ठा होता चला जाता है। और यह मैं, इतना बड़ा भ्रम, इतना बड़ा इल्युजन, यही भ्रम रोक लेता है सत्य को जानने से और परमात्मा को जानने से। यही मैं का खयाल रोक देता है उसको जानने से जो मैं हूं, जो कि सच में मैं हूं, जो कि असलियत में मैं हूं। तो इस मैं के साथ क्या करें? कैसे इस मैं को हटा दें? कैसे यह मैं मिट जाए? कैसे यह मैं न हो जाए? तो शायद द्वार खुल जाएं, दीवाल टूट जाए, रोशनी प्रकट हो जाए प्रकाश में मैं खड़ा हो जाऊं।

यह मैं की दीवाल है जो मुझे चारों तरफ से घेरे हुए है और बांधे हुए है। इसके भीतर मैं बंद हूं। और जब तक इसके भीतर बंद हूं परमात्मा से तो मिलना दूर अपने पड़ोसी से भी नहीं मिल सकता। पड़ोसी से मिलना तो दूर पति अपनी पत्नी से नहीं मिल सकता, पिता अपने पुत्र से नहीं मिल सकता, मित्र अपने मित्र से नहीं मिल सकता। जहां अहंकार है वहां दूसरे से अलगाव हो गया, दूसरे से भेद हो गया, पृथकता हो गई, दीवाल खड़ी हो गई।

जहां मैं है वहां प्रेम नहीं। क्योंकि प्रेम वहीं हो सकता है जहां मैं न हो। और जहां मैं है वहां कोई प्रार्थना नहीं। क्योंकि प्रार्थना भी वहीं हो सकती है जहां मैं न हो। मैं का न हो जाना ही प्रेम है। और मैं का न हो जाना ही प्रार्थना है। और मैं का न हो जाना ही परमात्मा का अनुभव है। लेकिन यह मैं न कैसे हो जाए?

पहले दिन की चर्चा में मैंने आपसे कहा, विश्वास छोड़ दें और विचार को जन्माएं। संध्या की चर्चा में मैंने कहा, भय छोड़ दें और अभय को पैदा करें। और अब तीसरी और अंतिम चर्चा में आपसे मैं कहता हूं, मैं को छोड़ दें, तब जो शेष रह जाएगा वही वास्तविक होना है, वही सत्य है, वही ईश्वर है, उसे कोई और नाम दे दें, उससे कोई भेद नहीं पड़ता।

यह कैसे मैं न हो जाए? क्या करें? बड़ी कठिनाई यही है कि आप जो भी करेंगे उससे मैं नहीं मिटेगा। क्योंकि करने वाला मैं ही हूं। तो मैं जो भी करूंगा उससे मैं नहीं मिटेगा। मैं जो भी करूंगा उससे मैं भरेगा, मजबूत होगा। इसलिए विनम्र आदमी जो कहता है कि मैं ना-

कुछ हूं, मैं तो कुछ भी नहीं आपके पैर की धूल हूं, उसकी आंखों में झांक कर देखें, वह कह रहा है कि मैं कुछ हूं।

विनम्र आदमी की अपनी अहमता है, अपनी ईगो है, अपना अहंकार है। अगर उससे आप कह दें कि तुमसे भी बड़ा एक विनम्र आदमी है हमारे गांव में। तो आपको पता चल जाएगा। वह कहेगा, ऐसा नहीं हो सकता कि मुझसे भी बड़ा और कोई विनम्र हो। मैं ही सबसे ज्यादा विनम्र हूं, और मैं खड़ा हो जाएगा। एक महात्मा से कह दें, तुमसे बड़ा महात्मा भी मौजूद है, और कठिनाई शुरू हो जाएगी।

गांधी इंग्लैंड गए। गांधी के एक मित्र ने जाकर बर्नार्ड शॉ को कहा कि आप गांधी को महात्मा मानते हैं या नहीं? जैसी बर्नार्ड शॉ की हमेशा की आदत थी, उसने कहा, मानता हूं, जरूर मानता हूं, लेकिन नंबर दो, नंबर एक मैं हूं। दो महात्मा हैं दुनिया में, एक यह मोहनदास करमचंद गांधी और एक बर्नार्ड शॉ, लेकिन बर्नार्ड शॉ नंबर एक और मोहनदास करमचंद गांधी नंबर दो। नंबर दो है तुम्हारा महात्मा, थोड़ा छोटा है, ऐसे दो ही महात्मा हैं, लेकिन मैं नंबर एक हूं।

जिन्होंने कहा था वे बहुत हैरान हो गए। उन्होंने जाकर गांधी को वापस कहा कि बर्नार्ड शॉ तो बड़ा अहंकारी मालूम होता है, अपने ही मुंह से कहता है कि मैं नंबर एक महात्मा हूं। गांधी ने कहा, वह आदमी बड़ा सच्चा है। मन में तो सभी के यह होता है कि मैं नंबर एक हूं, लेकिन लोग छिपाए बैठे रहते हैं। वह सीधा और साफ है। जो सीधी बात थी उसने कह दी।

हर आदमी के मन में यह होता है कि मैं नंबर एक हूं। छिपाए बैठा रहता है। उसे किसी से कहता नहीं। असल में एक बड़ा मजाक है--जैसे अरब में एक मजाक है कि भगवान जब लोगों को बना कर दुनिया में भेजता है तो एक बड़ा मजाक कर देता है हर आदमी के साथ। जब उसे बना कर दुनिया में धक्के देने लगता है तो उसके कान में कह देता है, मेरे मित्र, तुमसे अच्छा आदमी मैंने कभी नहीं बनाया। और वह हरेक से कह देता है, यही मुश्किल है। और हरेक आदमी को यही खयाल पैदा हो जाता है।

यह जो हमारे भीतर मैं है, यह जो खयाल है कि मैं ही हूं कुछ। यह खयाल, अगर हम इसको मिटाना चाहें, तोड़ना चाहें, तो भी टूटेगा नहीं। तब यह खयाल पैदा हो जाएगा कि मैं विनम्र हूं। मैं अहंकारी नहीं हूं। लेकिन मैं मौजूद रहेगा। दो रास्ते हैं आदमी के सामने, या तो इसको भरे, दौड़े, राज्य जीते, धन जीते, यश जीते और इस मैं को भरे। तो भी यह कभी भर नहीं पाता। यह थोड़ा समझ लेने जैसा है। यह कभी भर नहीं पाता। सिकंदर सारी दुनिया जीत ले तो भी नहीं भर पाता।

सिकंदर जिस दिन मरा, जिस नगर में मरा, उस नगर के लोग हैरान हो गए। सिकंदर की अरथी बड़ी अजीब थी। ऐसी अरथी कभी भी दुनिया में किसी गांव में कभी न निकली थी। उसकी अरथी के बाहर दोनों हाथ लटके हुए थे नीचे। लोग बड़े हैरान हो गए कि यह क्या कुछ भूल हो गई है? लेकिन भूल कैसे हो सकती थी? और सिकंदर की अरथी थी, किसी

सामान्य भिखमंगे की, सामान्य आदमी की तो नहीं। और हाथ दोनों बाहर लटके हुए थे, सबको दिखाई पड़ते थे। भूल कैसे हो सकती थी? तो लोग पूछने लगे, क्या है, ये हाथ बाहर क्यों हैं? सभी अरथियों के हाथ तो भीतर बंद होते हैं। तो पता चला कि सिकंदर ने मरने के पहले कहा था कि मैं जब मर जाऊं तो अरथी के बाहर मेरे दोनों हाथ रखना ताकि दुनिया ठीक से देख ले कि मेरी मुट्ठियां भी खाली हैं, मैं भी भर नहीं पाया। दौड़ा बहुत, बहुत कोशिश की मैंने कि भर लूं। जो मेरे भीतर उठा था मेरा अहंकार पूरा हो जाए, लेकिन नहीं पूरा हो सका है।

सिकंदर का नहीं हुआ, किसी का कभी नहीं हुआ। अहंकार पूरा नहीं होता, क्यों? कुछ कारण हैं।

एक फकीर के पास एक युवक पहुंचा और उसने कहा कि मैं चाहता हूं कि या तो मेरा अहंकार पूरा हो जाए, तो छुटकारा मिले और या फिर अहंकार से ही छुटकारा हो जाए? दो में से कोई भी रास्ता बता दें, या तो अहंकार से मुक्त हो जाऊं तो ठीक, यह पीड़ा छूटे, यह दुख लाने वाला बिंदु, यह वेदना का केंद्र, यह कष्ट का मध्य-बिंदु अलग हो जाए। यही तो पीड़ा लाता है चौबीस घंटे। संघर्ष लाता है, हिंसा लाता है, कांफ्लिक्ट लाता है। तो या तो इससे छूट जाऊं और या फिर यह पूरा ही भर जाए। यह जो चाहता है वह पूरा हो जाए। दो में से कोई भी रास्ता बता दें?

उस फकीर ने कहा, आओ, आज रास्ता बता ही दूंगा। लेकिन देखने के लिए आंखें चाहिए। और वह अपने के पास के झोपड़े के कुएं पर गया। वह युवक उसके साथ गया। और उसने कहा, देखने के लिए आंख चाहिए, तो वह गौर से देखता रहा।

उसने एक बहुत बड़ा ढोल उठाया, कुएं के किनारे रखा और बालटी कुएं में डाली, बालटी भरी और ढोल में डाली। दूसरी बालटी भरी ढोल में डाली, तीसरी भरी ढोल में डाली, लेकिन ढोल नीचे से बेपेंदी का था, बॉटमलेस, उसमें कोई नीचे पेंदी नहीं थी। वह पानी नीचे से निकलता गया। वह लड़का खड़ा देखता था। दो-चार बालटी तक तो उसने बरदाश्त किया और उसने कहा, ठहरिए, आप पागल तो नहीं हैं? जिस ढोल को आप भर रहे हैं उसमें नीचे कोई पेंदी नहीं, वह दोनों तरफ से खुला हुआ है। आप भर-भर कर हैरान हो जाएंगे, वह न भरेगा। तो उस फकीर ने कहा, बस लौट जाओ, अगर दिखाई पड़ गया हो तो देख लेना।

अहंकार खाली शून्य है, उसमें कितना ही भरो कुछ भी नहीं भरेगा, उसमें कोई पेंदी नहीं है। अहंकार एंप्टीनेस, अहंकार है नथिंगनेस, ना-कुछ, हवा, खाली जगह, उसमें भरो, कुछ भी न भरेगा, कितना ही भरो, सारी दुनिया डाल दो, उसमें भर कर पाओगे वह खाली है।

उस फकीर ने कहा, तुझे यह तो दिखाई पड़ गया कि यह पागलपन है। जिस चीज में मैं पानी भर रहा हूं अगर उसमें पेंदी नहीं है तो यह पागलपन है तुझे दिखाई पड़ गया, लेकिन क्या तूने कभी खोजा कि अहंकार में कोई पेंदी है? क्या कभी तूने खोजा कि अहंकार में कुछ भरा जा सकता है? जा और अब खोज, खोज अपने भीतर कि अहंकार क्या है?

दो तरह की गलतियां हैं, अहंकार अगर कुछ भी नहीं है तो न तो उसे भरा जा सकता और न उसे खाली किया जा सकता। क्योंकि खाली भी उसे किया जा सकता है जो भरा जा सकता हो। इस बात को मैं फिर से दोहराता हूं, खाली वही चीज की जा सकती है जो भरी जा सकती हो। जब अहंकार भरा ही नहीं जा सकता तो उसको खाली भी नहीं किया जा सकता।
दो तरह की नासमझियां हैं, जो दुनिया में चलती हैं। अहंकार भरने की नासमझी है और अहंकार खाली करने की नासमझी है। एक का नाम भोग है, एक का नाम त्याग है। दोनों नासमझियां हैं। फिर अहंकार के साथ क्या किया जा सकता है? जो पहली चीज की जा सकती है वह यह कि उसे खोजा जा सकता है कि वह है भी या नहीं? पहली चीज है, जाना जा सकता है कि अहंकार क्या है?
और बड़े आश्चर्यों का आश्चर्य है कि जो उसे जानने जाता है वह पाता है कि वह है ही नहीं। जो उसे भीतर खोजने जाता है वह पाता है कि वह है ही नहीं। और जिस क्षण यह पा लिया जाता है कि अहंकार नहीं है उस क्षण जो शेष रह जाता है वही परमात्मा है। उस क्षण जो शेष रह जाता है वही आत्मा है। उस क्षण जो शेष रह जाता है असीम और अनंत वही सत्य है।
अहंकार को न तो भरना है, न छोड़ना है। अहंकार को जानना है, देखना है, पहचानना है। क्या है? है भी या नहीं? कहीं ऐसा तो नहीं है कि मैं किसी छाया से लड़ रहा हूं? कहीं ऐसा तो नहीं है कि मैं किसी छाया का पीछा कर रहा हूं? कहीं ऐसा तो नहीं है कि मैं कोई सपने में हूं? कहीं ऐसा तो नहीं है कि मैं नींद में हूं? और जिस चीज को भरने या निकालने की कोशिश में लग गया हूं, वह है ही नहीं। ऐसा ही है। लेकिन मेरे कहने से नहीं। तो भीतर जाकर देखने की बात है। खोजने की बात है कि यह अहंकार कहां है?
कभी खोजा आपने? कभी दो क्षण एकांत में बैठ कर भीतर जाकर खोज की कि यह अहंकार क्या है? जो मुझे पागल किए हुए है, दौड़ा रहा है, दौड़ा रहा है, दौड़ा रहा है और एक सीमा पर जब मैं थक जाता हूं, परेशान हो जाता हूं, तो उलटी दौड़ शुरू होती है, छोड़ने की दौड़ शुरू होती है, छोड़ने की दौड़ शुरू होती है, लेकिन यह है क्या? कौनसी है जगह यह अहंकार?
एक संन्यासी भारत से चीन गया था कोई चौदह सौ वर्ष पहले। बोधिधर्म था उसका नाम, चीन का सम्राट उसका स्वागत करने राज्य की सीमा तक आया। सुना था उसका बहुत नाम। उसकी अदभुत बातों की खबर उससे पहले पहुंच गई थी। उस सम्राट वू ने बोधिधर्म का स्वागत किया। स्वागत के बाद उसे महल में ले गया, विश्राम के बाद सम्राट वू ने बोधिधर्म को पूछा, एक ही बात मुझे पूछनी है, कहते हैं सभी धर्म, कहते हैं सभी शास्त्र, कहते हैं सभी उपदेष्टा, अहंकार छोड़ो। कैसे छोडूं इस अहंकार को?
भरने की कोशिश करके देख ली है, सारे चीन का मालिक हो गया हूं, लेकिन पाता हूं कि कुछ भी भरा नहीं, वही खाली का खाली हूं। सोचता था पहले पूरे साम्राज्य को पा लूंगा चीन के, तृप्ति हो जाएगी, लेकिन तृप्ति नहीं हुई। अब मन कहता है, पूरी दुनिया को पा लो,

लेकिन जो मन कहता था, पूरे चीन को पा लो, तृप्ति हो जाएगी। पूरे चीन को पाकर तृप्ति नहीं हुई, अब उस मन की कैसे मानूं? वह कहता है, पूरी पृथ्वी को पा लो। कैसे मानूं कि फिर तृप्ति हो जाएगी? रोज-रोज धोखा खाया, मन ने जो भी कहा कि यह पा लो, तृप्ति हो जाएगी, वह पा लिया और पाते ही पाया हाथ खाली के खाली हैं। अब कैसे मानूं? अब क्या करूं? बूढ़ा हो गया हूं, अब दुनिया जीतने को जाऊं? लेकिन डर लगता है, इतना सब पाया और तृप्ति न हुई, और हर चीज के लिए मन ने कहा था तृप्ति हो जाएगी। तो अब आगे के लिए कैसे मानूं? वह तो रास्ता दिखाई नहीं पड़ता। तो भिक्षुओं की शरण में जाता हूं, संन्यासियों की, उनसे पूछता हूं, वे कहते हैं, छोड़ो इसको। अहंकार छोड़ो। वे कह देते हैं, समझ भी लेता हूं, लेकिन कैसे छोड़ूं? कहां है यह जिसे मैं छोड़ूं? कहां फेंकूं इसे? कोई वस्त्र छोड़ने को कहे, छोड़ दूं; कोई चमड़ी निकालने को कहे, निकाल कर फेंक दूं; कोई गर्दन काटने को कहे, गर्दन काट दूं, लेकिन यह अहंकार कहां है जिसे छोड़ दूं? कहां है यह? उस बोधिधर्म ने कहा, कल सुबह चार बजे आ जाओ और तुम्हारा अहंकार छुड़ा ही देंगे।

वह सम्राट वू लौटा, सोचने लगा, कैसे छुड़ा देगा यह? सीढ़ियां उतरता था तब बोधिधर्म ने कहा, लेकिन खयाल रहे, अकेले मत आ जाना, अहंकार को भी साथ ले आना। यही कठिनाई तो उसकी भी थी वही बात फिर खड़ी हो गई। कहां है यह अहंकार? रात भर जागता रहा, सोचता रहा। क्यों कहा है इस भिक्षु ने कि अकेले मत आना अहंकार को भी साथ ले आना? सुबह चार बजे आया। आते ही बोधिधर्म ने पूछा, आ गए, लेकिन अकेले मालूम पड़ते हो, कहां है वह? अहंकार कहां है? उस वू ने कहा, यही तो मेरी परेशानी है, रात भर खोजता रहा मिलता नहीं। बोधिधर्म ने कहा, बैठो मेरे सामने, आंख बंद करो और खोज लो। एक भी कोना-कांतर न रह जाए मन के भीतर, एक भी कार्नर न रह जाए जो अनखोजा रह जाए। खोज लो पूरे मन के कोने-कोने में और कहीं न पाओ, तो बात खत्म हो गई, फिर क्या छोड़ना है? हां, एक भी कोना अनजाना न रह जाए, अननोन न रह जाए, नहीं तो शक बना रहेगा कि शायद वहां बैठा हो। तो बैठो और जाओ भीतर और खोजो और खोजो और मैं डंडा लिए तुम्हारे सामने बैठा हूं, मिल जाए तो खबर कर देना, वहीं उसकी हत्या कर दूंगा।

उस अंधेरी रात उस सुबह की पहाड़ी झील पर अकेला वह राजा उस पागल बोधिधर्म के सामने बैठ गया। डर तो उसे लगने लगा कि कहीं यह डंडा, यह डंडा किसलिए लिए हुए है? और यह क्या करेगा? उसने आंखें भीतर बंद कीं।

छोड़ दें उस राजा वू को, देखें, खुद अपने भीतर ही समझ लें कि आप भी बैठ गए और आंख बंद कर ली है और मैं डंडा लिए आपके सामने बैठा हुआ हूं, और आप खोज रहे हैं भीतर इस अहंकार को कि यह कहां है। खोजें, जितना खोजेंगे उतना ही पाएंगे कि वह नहीं है। जितना खोजेंगे उतना ही पाएंगे वह इवोपरेट हो गया, वाष्पीभूत हो गया, वह कहीं मिलता नहीं। वह है ही नहीं, मिलेगा कैसे? वह होता तो मिल सकता था।

इस भीतर खोजने की जो प्रक्रिया है उसी का नाम ध्यान है। परमात्मा को नहीं खोजा जाता है। परमात्मा की कोई खोज नहीं हो सकती, खोजा जाता है अहंकार को। जागरूक होकर, अवेयरनेस से, होश से भर कर भीतर कोने-कोने में देखना है कहां है यह? वहां मिलेंगे विचार, वहां मिलेंगी वासनाएं, वहां मिलेंगी कल्पनाएं, स्मृतियां, लेकिन अहंकार नहीं मिलेगा।

और तब यह दिखाई पड़ेगा कि जैसे कोई आदमी एक हाथ में मशाल ले ले और जोर से घुमाए, तो एक अग्निवृत्त, एक फायर सर्किल दिखाई पड़ने लगता है। जो होता नहीं, सिर्फ दिखाई पड़ता है। मशाल हाथ में लेकर कोई घुमाता है जोर से, तो एक अग्नि का वृत्त दिखाई पड़ता है, गोल अग्नि का सर्किल दिखाई पड़ता है। वह कहीं है नहीं, लेकिन मशाल इतनी तेजी से घूमती है कि एक गोल वृत्त का भ्रम पैदा कर देती है। हाथ धीमे घुमाएं, हाथ रोक लें, तो दिखाई पड़ जाता है अग्निवृत्त कहीं भी नहीं था। थी सिर्फ मशाल, तेजी से घूमने से मालूम होता था वृत्त है।

मन के भीतर विचार, कल्पनाएं, कामनाएं, इच्छाएं इतनी तेजी से घूमती हैं, इतनी तेजी से घूमती हैं कि उनके तेजी के घूमने की वजह से एक सर्किल मालूम पड़ता है और वह सर्किल ही मालूम पड़ता है, मैं हूं अहंकार। लेकिन जब भीतर जाकर देखना शुरू करेंगे, शांत भीतर खोजना शुरू करेंगे, तो टुकड़े-टुकड़े विचार दिखाई पड़ेंगे, कहीं कोई सर्किल दिखाई नहीं पड़ेगा। तो पता चलेगा विचार हैं, इच्छाएं हैं, कामनाएं हैं, लेकिन मैं कहां हूं। मैं तो नहीं हूं। और बड़े मजे की बात है, बहुत गहरे अर्थ की कि जैसे ही यह दिखाई पड़ जाए कि मैं नहीं हूं, केंद्र टूट गया, केंद्र बिखर गया। बदली की भांति धुआं फैल गया।

जीवन जिस पर हम चलाते थे, बांधते थे, वह बिखर गया। तब उस बिखरे हुए धुएं के नीचे ही वह भूमि मिल जाएगी जो आत्मा की है। इस धुएं में जब तक जो घिरा है, इस झूठे वृत्त में जब तक जो बंधा है, नीचे आंख नहीं जाती, नीचे दृष्टि नहीं जाती, यह उखड़ जाए, विलीन हो जाए और यह दिखाई पड़ जाए कि मैं तो नहीं हूं, तब इतनी गहन शांति उत्पन्न होती है, इतनी टोटल साइलेंस। क्योंकि सारा उपद्रव, सारी अशांति मैं की है। वह दिखाई पड़ जाए मैं नहीं हूं, तो एकदम सब शांत हो जाता भीतर, सब मौन, सब चुप। उस मौन में, उस चुप्पी में, उस शांति में, उस साइलेंस में, उसका अनुभव होना शुरू होता है जो अज्ञात है, अननोन है। वही परमात्मा है। उस शांति में ही वह जाना और पहचाना जाता है।

अहंकार अशांति है। अहंकार अज्ञान है। नहीं है जहां अहंकार, वहां वह है जो है, जो वस्तुतः है। तो न तो छोड़ना है, न भरना है, न बनाना है, न मिटाना है, बल्कि जानना है। धर्म है जानना, ज्ञान, चेतना। जितनी, जितनी तीव्र रूप से मेरी कांशसनेस, मेरी अवेयरनेस, मेरी चेतना जागती है और खोज करती है, जितने जोर से मैं बोध के दीये को लेकर मैं भीतर जाता हूं और खोजता हूं, उतना ही नहीं पाया जाता वह जो मेरी पीड़ा थी, जो मेरा बंधन था, जो मेरी दीवाल थी।

एक अंतिम छोटी बात और चर्चा मैं पूरी करूंगा।

गिर जाती है जहां यह दीवाल वहीं हम सबसे जुड़ जाते हैं। गिर जाता है जहां यह भ्रम मेरे अलग और पृथक होने का, वहीं सागर से बूंद का मिलन है, वहीं व्यक्ति से समष्टि का मिलन है।

एक छोटी सी कहानी अंत में कहूं।

एक सम्राट का जन्म-दिन था और उसने अपने राज्य के सौ बड़े ब्राह्मणों को आमंत्रित किया। उन्हें भोजन कराया, उनकी सेवा की और पीछे उसने घोषणा की उन ब्राह्मणों को कि मैं कुछ दान देना चाहता हूं। लेकिन मैं अपनी मर्जी से दान दूंगा तो छोटा होगा इसलिए तुम्हारे ऊपर छोड़ देता हूं। राजधानी के बाहर झील के पार मेरा जो बहुत बड़ा उपवन है, श्रेष्ठतम भूमि है उस उपवन की इस पूरे राज्य में, मैं तुमसे कहूंगा कि तुम जाओ और उस जमीन में जितनी जमीन तुम्हें घेरना हो घेर लो, जो जितनी जमीन घेर लेगा वह उसकी हो जाएगी। जो जितनी बड़ी जमीन पर दीवाल बना लेगा और घेरा बना लेगा वह उसकी हो जाएगी। जितनी पर बना लेगा, कोई मेरी तरफ से सीमा नहीं, जितनी तुम्हारी सामर्थ्य हो सीमा बनाने की तुम बना लो। और अंत में उसने यह और कह कर पागलपन बढ़ा दिया, उसने कहा, और जो सबसे ज्यादा जमीन घेर लेगा उसे मैं राजगुरु के पद पर भी बिठा दूंगा।

ब्राह्मण पागल हो गए थे। वे भागे गए और उन्होंने अपने मकान, जमीन, जायदाद, जो कुछ था, सब बेच दिया। सारी संपत्ति इकट्ठी करके, मित्रों से जो उधार ले सकते थे लेकर, क्योंकि यह मौका हमेशा के लिए चूके जाने वाला था। मुफ्त जमीन मिलती थी सिर्फ घेरने के मूल्य पर। जितनी बड़ी दीवाल बना लेंगे वह जमीन को घेर लेंगे वह उनकी हो जाएगी।

पागल हो गए वे, बहुमूल्य जमीन थी और मुफ्त मिलती थी। उन सबको छह महीने का वक्त मिला था। उन्होंने अपने कपड़े-लत्ते तक बेच कर एक-एक लंगोटी रख ली। एक दफा जमीन मिल जाए फिर उसको बेच कर तो करोड़ों रुपये मिल सकते थे। उन्होंने जमीन पर बड़े-बड़े घेरे बना लिए। जिसकी जितनी पहुंच थी उतना पैसा ले आया। घेरे बन गए, अंतिम दिन आ गया और सम्राट देखने आया।

उन सौ ब्राह्मणों में एक ही ब्राह्मण था जिसको बाकी निन्यानबे नासमझ और पागल और जड़बुद्धि समझते थे। क्योंकि उसने जरा सी जमीन का टुकड़ा घेरा था। बहुत जरा सी जमीन का टुकड़ा। और वे हैरान थे कि इतना जरा सा टुकड़ा उसने क्यों घेरा है? और वह भी उसने कोई पक्की दीवाल न बनाई थी बल्कि लकड़ियां लाकर लगा दी थीं और घास-फूस बांध दिया था। वे हैरान थे कि उस नासमझ को इतना भी खयाल नहीं है कि कितना बड़ा अवसर चूका जाता है। स्वर्ण बटोरने का अवसर था और वह चूक गया था।

सौ ही ब्राह्मण इकट्ठे हुए और राजा ने कहा, मैं पूछना चाहता हूं, सर्वाधिक जमीन किसने घेरी है? वह खड़े होकर कह दे। सबके हैरानी का ठिकाना न रहा, वह गरीब ब्राह्मण जिसने सबसे थोड़ी जमीन घेरी थी खड़ा हो गया और उसने कहा कि मैं राजगुरु के पद पर अपने को घोषित करता हूं, मैंने सर्वाधिक जमीन घेरी है। सारे लोग हंसने लगे कि इसका दिमाग मालूम होता है खराब हो गया है। लेकिन दावा किया गया था तो राजा को देखने जाना पड़ा।

राजा भी चिंतित तो हुआ क्योंकि उसे पता चल चुका था कि वही सबसे कम घेरा है। और उसकी जमीन पर पहुंच कर और सारे लोग हंसने लगे। कल तक तो वहां उसने जो घास-फूस की बागुड़ लगाई थी, रात उसमें भी आग लगा दी थी। अब वहां कोई भी घेरा नहीं था।

उस ब्राह्मण से राजा ने कहा, कहां है तुम्हारा घेरा? उस ब्राह्मण ने कहा, मैं कितना ही घेरता तो घेरा छोटा होता। मन कहता, और बड़ा घेरो। छोटा ही होता वह घेरा। आखिर जो भी घिरा होगा वह छोटा ही होगा, उसका घेरा होगा। तो फिर मैंने सोचा कि मैं घेरा तोड़ दूं, तो फिर मेरा घेरा सबसे बड़ा हो जाएगा। तो रात मैंने आग लगा दी घेरे में। और अब मैं दावा करता हूं कि मेरी ही जमीन सबसे बड़ी है क्योंकि उस पर कोई घेरा नहीं है।

राजा उसके पैरों पर गिर पड़ा और उसने कहा, ये निन्यानबे व्यवसायी हैं, ब्राह्मण तू अकेला है। क्योंकि जो घेरों में आग लगा देता है उसका संबंध असीम से हो जाता है। और जो सीमा बांधता है वह सीमित से बंध जाता है। एक ही सीमा है अहंकार की, चाहे किसी ने थोड़ा बनाया हो, किसी ने थोड़ा बड़ा, किसी ने और थोड़ा बड़ा।

अहंकार की भूमि पर सीमाएं हैं। एक दरिद्र की छोटी झोपड़ी है और एक सम्राट का बहुत बड़ा महल है। और एक दरिद्र के पास छोटी सी जमीन का टुकड़ा है और एक सम्राट के पास सारी पृथ्वी हो सकती है। लेकिन जहां घेरा है वहीं सीमा है और जहां सीमा है वहां असीम से पृथक्करण है। क्या खयाल में यह बात आ जाए तो उस घेरे में आग लगा दी जा सकती है? और उस घेरे में आग लगा कर कोई हारता नहीं, खोता नहीं, बल्कि असीम का मालिक हो जाता है।

जो सीमित को छोड़ने का साहस करते हैं, वे असीम के पाने के अधिकारी और मालिक हो जाते हैं। जो तुच्छ को छोड़ने की हिम्मत करते हैं, वे विराट की संपदा के प्रभु हो जाते हैं। जो अपने को खोने को तैयार हैं, वे परमात्मा को पाने के अधिकारी हैं।

आज की इस अंतिम चर्चा में मैंने एक ऐसी चीज को खोने के लिए आपको कहा है जो वस्तुतः नहीं है। उस नहीं को जो खो देता है वह उसको पा लेता है जो वस्तुतः है और जो उस नहीं के साथ बंधा रहता है वह वस्तुतः जो है, जिसका वस्तुतः अस्तित्व है, जिसका आथेंटिक एक्झिस्टेंस है, वही जिसे हम परमात्मा कहते हैं, उसे पाने से सदा के लिए वंचित हो जाता है। उसके द्वार खुले हैं, हमारे द्वार बंद हैं। उसका सागर मौजूद है, हमारी बूंद खोने को तैयार नहीं। लेकिन स्मरण रखें, जब बूंद सागर में अपने को खोती है तो कुछ खोती नहीं है सिर्फ बूंद होना खो जाता है और पूरे सागर को पा लेती है।

तो अंतिम रूप से यह निमंत्रण देता हूं, बूंद को खो जाने दें ताकि सागर के मालिक हो जाएं। वही सागर प्रभु है।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

अंतर की खोज

सातवां प्रवचन

मेरे प्रिय आत्मन्!

एक अत्यंत वीरानी पहाड़ी सराय में मुझे ठहरने का मौका मिला था। संध्या सूरज के ढलते समय जब मैं उस सराय के पास पहुंच रहा था, तो उस वीरान घाटी में एक मार्मिक आवाज सुनाई पड़ रही थी। आवाज ऐसी मालूम पड़ती थी जैसे किसी बहुत पीड़ा भरे हृदय से निकलती हो। कोई बहुत ही हार्दिक स्वर में, बहुत दुख भरे स्वर में चिल्ला रहा थाः स्वतंत्रता, स्वतंत्रता, स्वतंत्रता। और जब मैं सराय के निकट पहुंचा, तो मुझे ज्ञात हुआ, वह कोई मनुष्य न था, वह सराय के मालिक का तोता था, जो यह आवाज कर रहा था।
मुझे हैरानी हुई। क्योंकि मैंने तो ऐसा मनुष्य भी नहीं देखा जो स्वतंत्रता के लिए इतने प्यास से भरा हो। इस तोते को स्वतंत्र होने की ऐसी कैसी प्यास भर गई? निश्चित ही वह तोता कैद में था, पिंजड़े में बंद था। और उसके प्राणों में शायद मुक्त हो जाने की आकांक्षा अंकुरित हो गई थी।

उसके पिंजड़े का द्वार बंद था। मेरे मन में हुआ उसका द्वार खोल दूं और उसे उड़ा दूं, लेकिन उस समय सराय का मालिक मौजूद था, और उसके कैदी को मुक्त होना शायद वह पसंद न करता। इसलिए मैं रात की प्रतीक्षा करता रहा। रात आने तक उस तोते ने कई बार वही आवाज स्वतंत्रता की, वही पुकार लगाई। जैसे ही रात हो गई और सराय का मालिक सो गया, मैं उठा, और मैंने जाकर उस तोते के पिंजड़े के द्वार खोल दिए। सोचा था मैंने, द्वार खोलते ही वह उड़ जाएगा खुले आकाश में, लेकिन नहीं, द्वार खुला रहा और वह तोता अपने पिंजड़े के सींकचों को पकड़े हुए चिल्लाता रहाः स्वतंत्रता, स्वतंत्रता। तब मेरी कुछ समझ में बात नहीं आई, क्या उसे खुला हुआ द्वार दिखाई नहीं पड़ रहा है? सोचा, शायद बहुत दिन की आदत के कारण खुले आकाश से वह भयभीत होता हो। तो मैंने हाथ डाला और उस तोते को बाहर खींचने की कोशिश की। लेकिन नहीं, उसने मेरे हाथ पर हमले किए, चिल्लाता वह यही रहाः स्वतंत्रता, स्वतंत्रता। लेकिन अपने पिंजड़ों के सींकचों को पकड़े रहा और छोड़ने को राजी न हुआ। बहुत कठिनाई से उसे बाहर मैंने निकाल कर उड़ा दिया और यह सोच कर कि एक आत्मा मुक्त हुई, एक पिंजड़ा टूटा, एक कारागृह मिटा। मैं निश्चिंत होकर सो गया।
सुबह जब मैं उठा तो मैंने देखा, वही आवाज फिर गूंज रही है। बाहर आया, देखता हूं, तोता अपने पिंजड़े में भीतर बैठा है, सींकचे पकड़े हुए है, द्वार खुला है और वह चिल्ला रहा हैः स्वतंत्रता, स्वतंत्रता। तब बात बहुत बेबूझ हो गई, समझ के बाहर हो गई, क्या यह तोता स्वतंत्रता चाहता था या कि स्वतंत्रता की बात ऐसे ही पुकारे चले जा रहा था? शायद

यह स्वतंत्रता की बात भी उसने अपने मालिक से सीख ली थी। उसी मालिक से जिसने उसे पिंजड़े में बंद किया हुआ था। शायद यह उसके अपने हृदय की आवाज न थी। शायद उसके अपने प्राणों की प्यास न थी। उधार थी यह आवाज, अन्यथा उसका जीवन विपरीत नहीं हो सकता।

उस तोते को कभी नहीं भूल पाया हूं। और जब भी कोई मनुष्य मुझे मिलता है तो उस तोते का स्मरण फिर दिला देता है।

हर आदमी मुक्त होने की कामना से प्रेरित दिखाई पड़ता है। हर आदमी स्वतंत्र होने की आकांक्षा से उद्वेलित मालूम होता है। हरेक के प्राण में कारागृह के बाहर निकल जाने की तीव्र अभीप्सा मालूम होती है। और हरेक का हृदय चिल्लाता रहता है जीवन भरः स्वतंत्रता, स्वतंत्रता, स्वतंत्रता। लेकिन मैं बहुत हैरान हूं। जो व्यक्ति यह स्वतंत्रता की पुकार लगाए जाता है वही पिंजड़ों के सींकचों को पकड़े हुए है। उसके द्वार भी कोई खोल दे तो बाहर उड़ने को राजी नहीं है। ऐसी मनुष्य की दशा है।

इस तोते की घटना से इसलिए ही शुरू करना चाहता हूं, सारी पृथ्वी पर मनुष्य की दशा यही है। वे जो मुक्ति का आकाश खोजना चाहते हैं, मनुष्य द्वारा निर्मित ही कारागृहों में बंद हैं। वे जो स्वतंत्रता की उड़ान भरना चाहते हैं, अपने ही हाथों से बनाई हुई दीवालों में कैद हैं। वे जिनके प्राण गीत गाते हैं मुक्ति के, उनके हाथ उनकी ही जंजीरों को निर्मित करते रहते हैं। और इसका हमें कभी स्मरण भी नहीं हो पाता, इसका हमें कभी बोध भी नहीं हो पाता, अगर हमारी परतंत्रता किसी और के द्वारा निर्मित होती तो भी यह एक बात थी, हम खुद ही उसके निर्माता और स्रष्टा हैं।

इसलिए हम किससे पुकार रहे हैं हाथ जोड़ कर? हम किन मंदिरों में, किन परमात्माओं से प्रार्थनाएं कर रहे हैं कि मुक्त कर दो? हम किनके सामने हाथ जोड़ कर खड़े हैं कि हमें स्वतंत्रता दे दो? जब कि परतंत्रता हमारे ही द्वारा निर्मित हो, जब कि हम ही उसके बनाने वाले हों, जब कि जिन बेड?ियों और जंजीरों में हम बंधे हों, वे हमने ही ढाली हों, हमने ही अपने प्राणों के रक्त से उन्हें सींचा हो, मजबूत किया हो, तो हम किसके सामने हाथ जोड़े खड़े हैं? कौन हमें स्वतंत्रता दे सकेगा जब परतंत्रता हम खुद ही निर्मित करते हैं? इसलिए स्वतंत्रता मांगनी उचित नहीं है।

उचित है इस सत्य को देखना कि हम परतंत्रता को कैसे निर्मित करते हैं। जिस दिन हमें यह दिखाई पड़ जाए, जिस दिन हमें यह सत्य का साक्षात हो जाए कि मैं ही हूं बनाने वाला अपनी कैद का, यह इनप्रिजनमेंट, यह कारागृह मेरी ही ईजाद, मेरा ही आविष्कार है, उस दिन ही, उस क्षण ही मुक्त होना आसान हो सकेगा। लेकिन शायद हमें दिखाई नहीं पड़ता, कोई बहुत अनूठे रास्तों से, अनजान रास्तों से हम अपने ही हाथों से अपने जीवन को कसते चले जाते हैं।

एक छोटी घटना मुझे स्मरण आती है।

रोम में एक बहुत कुशल कारीगर था, एक बहुत बड़ा लोहार था। उसकी कुशलता की प्रसिद्धि दूर-दूर के देशों तक थी। दूर-दूर के बाजारों में उसकी चीजें बिकतीं। दूर-दूर उसकी प्रशंसा होती। धीरे-धीरे बहुत धन उसके द्वार पर आकर इकट्ठा होने लगा। फिर रोम पर हमला हुआ। और दुश्मन ने आकर रोम को रौंद डाला। और रोम के सौ बड़े नागरिकों को बंदी बना लिया। उन सौ बड़े नागरिकों में वह लोहार भी एक था। उन सबके हाथों में जंजीरें पहना दी गईं और पैरों में बेड़ियां डाल दी गईं, और उन्हें एक दूर पहाड़ी घाटियों में फिंकवा दिया गया मरने को, मृत्यु की प्रतीक्षा करने को। सौ नागरिकों में निन्यानबे नागरिक रो रहे थे, उनकी आंखें आंसुओं से भरी थीं, और प्राण चिंता और व्याकुलता से, लेकिन वह लोहार निश्चिंत मालूम होता था। न उसकी आंखों में आंसू थे, न उसके चेहरे पर उदासी थी, उसे खयाल था इस बात का, मैं जीवन भर खुद लोहे की कड़ियां बनाता रहा हूं, तो कड़ियां कितनी ही मजबूत हों, मैं उन्हें खोलने का कोई न कोई उपाय जरूर खोज लूंगा। बहुत कुशल था वह कारीगर, निश्चिंत था इसलिए, आश्वस्त था कि घबड़ाने की कोई बात नहीं है। जैसे ही मुझे फेंक कर कैदी की तरह घाटी में सैनिक लौट जाएंगे, मैं कड़ियां खोल लूंगा।

और उसे फेंक कर सैनिक वापस लौटे, तो उसने पहला काम अपनी कड़ियों को देखने का किया। लेकिन जंजीर को देखते ही, बेड़ी को देखते ही उसकी आंखें आंसुओं से भर गईं और उसने अपने बंधे हुए हाथों से अपनी छाती पीट ली और रोने लगा। क्या दिखाई पड़ गया उसे जंजीर पर? एक बड़ी अजीब बात जिसकी उसने जीवन में कभी कल्पना भी न की थी। उसकी आदत थी, वह जो भी बनाता था, जो भी चीज तैयार करता था उसके कोने तरफ में हस्ताक्षर कर देता था। कड़ी जब उसने देखी, पैर की जंजीर जब देखी, तो पाया, उसके हस्ताक्षर हैं। वह उसकी ही बनाई हुई जंजीर थी। जो दूर बाजारों में बिक कर वापस लौट आई थी दुश्मन के हाथों। और अब, अब वह घबड़ा गया था। अब जंजीर को तोड़ना बहुत कठिन था, क्योंकि उसे पता था कमजोर चीज बनाने की उसकी आदत ही नहीं थी। परिचित था इस कड़ी से, इस जंजीर से। कमजोर चीज बनाने की उसकी आदत नहीं रही, उसने तो मजबूत से मजबूत चीजें बनाई थीं। उसे कब खयाल था कि अपनी ही बनाई हुई जंजीरें किसी दिन अपने ही पैरों पर पड़ सकती हैं। यह तो कभी सपना भी न देखा था। कोई भी आदमी कभी यह सपना नहीं देखता कि जो कारागृह मैं बना रहा हूं उनका अंतिम बंदी मैं ही होने को हूं। कोई कभी यह नहीं देखता कि जो जंजीरें मैं निर्मित करता हूं, वे मेरे ही हाथों पर पड़ जाएंगी। कोई इस बात की कल्पना भी नहीं करता, दूर खयाल भी इस बात का नहीं आता कि पूरे जीवन में मैं जो जाल रच रहा हूं, मैं ही उसमें फंस जाऊंगा।

मैं आपसे निवेदन करता हूं, हर आदमी उसी जाल में फंस जाता है जिसका वह निर्माता है। और तब, तब वह चिल्लाता है और हाथ जोड़ता है और परमात्मा से प्रार्थनाएं करता है, व्रत-उपवास करता है, पूजा-अर्चना करता है, गिड़गिड़ाता है, घुटने टेक कर जमीन पर खड़ा होता आकाश की तरफ आंखें उठाता है--मुझे मुक्त कर दो, मुझे स्वतंत्र कर दो। लेकिन कौन करेगा स्वतंत्र? कोई आकाश से उतरेंगे देवता? कोई ईश्वर आएगा स्वतंत्र करने? जब परतंत्र

होना चाहा था तब किससे पूछने हम गए थे? और किस परमात्मा से हमने प्रार्थना की थी? और किस मंदिर के द्वार पर हमने घुटने टेके थे? और किससे हमने पूछा था कि मैं परतंत्र होना चाहता हूं मुझे जंजीरें बनाने का रास्ता बता दो? किसी से भी नहीं, तब हम अपने से ही पूछ कर ये सब कुछ कर लिए थे। और स्वतंत्रता के लिए दूसरे के द्वार पूछने जाते हैं? और इसमें न हमें शर्म आती है और न यह खयाल आता है कि कैसी विक्षिप्त है यह बात। परतंत्रता अपनी निर्मित है तो स्वतंत्रता भी अपनी ही निर्मित करनी होगी। कोई प्रार्थना नहीं काम करेगी, कोई साथ नहीं देगा, कोई हाथ आकाश से नीचे नहीं उतरेगा कड़ियां खोलने को, अपने ही हाथों से जो बांधा है उसे खोलने पड़ेगा।

वह लोहार रोता रहा, छाती पीटता रहा, छोड़ दी उसने आशा जीवन की, अब बचने की कोई उम्मीद न थी। एक लकड़हारा बूढ़ा उस रास्ते से निकलता था, उसने पूछा, क्यों रोते हो? उस लोहार ने अपने दुख की कथा कही। उसने कहा, मैं सोचता था कि मुक्त हो सकूंगा इन जंजीरों से, लेकिन ये जंजीरें मेरी बनाई हुई हैं और बहुत मजबूत हैं। और अब, अब कोई रास्ता दिखाई नहीं पड़ता है।

वह बूढ़ा हंसने लगा और उसने कहा, इतने निराश हो जाने का कोई कारण नहीं। अगर ये जंजीरें किसी और की बनाई हुई होतीं, तो निराश होने का कारण भी था, ये तुम्हारी ही बनाई हुई हैं। और स्मरण रखो, बनाने वाला जिन चीजों को बनाता है उनसे हमेशा बड़ा होता है। स्रष्टा सृष्टि से बड़ा होता है; निर्माता निर्मित से बड़ा होता है। तुमने जो बनाया है तुम उससे बड़े हो। और इसलिए घबड़ाओ मत, जो तुमने बनाया है उसे तोड़ने की सामर्थ्य हमेशा तुम्हारे भीतर है, घबड़ा गए तो चूक जाओगे, फिर मुश्किल हो जाएगी। और स्मरण रखो, कड़ियां कितनी ही मजबूत हों, जंजीरें कितनी ही मजबूत हों, जहां जंजीर जोड़ी जाती है वह एक कड़ी हमेशा कमजोर रह जाती है, उस पर जोड़ होता है जो खुल सकता है। इसलिए घबड़ाओ मत, धैर्य से काम लो। इतने कुशल कारीगर हो, बेड़ियां बनाने में इतने कुशल थे, तो यह क्यों भूल जाते हो कि खोलने में भी वह कुशलता काम आ सकती है। जो आदमी गांठ बांधना जानता है, वह बांधते ही उसको खोलना भी जान जाता है, सीख जाता है। हर व्यक्ति अपनी परतंत्रता निर्मित करता है, अगर उसे ठीक से देखे तो उसे खोलने का मार्ग भी उसके पास है।

एक दिन सुबह बुद्ध ने अपने भिक्षुओं के पास बोलने की बजाय एक प्रश्न उपस्थित कर दिया था। जब वे आए थे बोलने को भिक्षुओं के बीच, तभी लोगों को हैरानी हुई थी, वे अपने हाथ में एक रेशमी रूमाल लिए चले आते थे। अब तक कभी वे कुछ लेकर न आए थे। सभी भिक्षु देखने लगे थे कि रेशमी रूमाल क्यों वे अपने हाथ में ले आए हैं? और आकर बैठ कर उन्होंने बिना कुछ बोले उस रेशमी रूमाल में एक गांठ बांध दी थी। भिक्षु देखते रहे थे। और तब पूछा था उन भिक्षुओं से कि मैं इस गांठ को खोलना चाहता हूं, और उस रूमाल के दोनों छोर पकड़ कर खींचा था और पूछा था, क्या खींचने से यह गांठ खुल जाएगी?

एक भिक्षु खड़ा हुआ, उसने कहा, कैसी नासमझी की बात करते हैं आप, खींचने से तो गांठ और बंध जाएगी।

तो बुद्ध ने पूछा, कैसे खोलूं इस गांठ को?

एक भिक्षु खड़ा हुआ और उसने कहा, रूमाल मुझे दें, मैं ठीक से देख लूं, कैसे बांधा है इस गांठ को? क्योंकि बांधने की जो विधि है वही खोलने की विधि है। बांधना और खोलना एक ही चीज को दो तरफ से देखने के ढंग हैं। परतंत्रता की जो विधि है, स्वतंत्रता की भी विधि वही है। उलटी तरफ से, दूसरे छोर से। इस दूसरे छोर से परतंत्रता की, स्वतंत्रता की तरफ जाने की मार्ग पर आज सुबह मैं थोड़ी बात आपसे करना चाहता हूं।

पहली बात, पहली कड़ी, पहली जंजीर, पहली गांठ जो हर मनुष्य ने अपने ऊपर बांध ली है, वह है अंधश्रद्धा की, अंधेपन की, आंख बंद कर लेने की, अनुकरण की, फॉलोईंग की, किसी के पीछे जाने की, किसी का अनुयायी होने की। अनुयायी होना परतंत्रता की पहली जंजीर है। और हम सब किसी न किसी के अनुयायी हैं, किसी न किसी के फॉलोअर हैं। कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई कम्युनिस्ट है, कोई कुछ और है। लेकिन ऐसा आदमी खोजना कठिन है जो यह कहे कि मैं हूं और किसी का अनुयायी नहीं, अकेला हूं। जैसा हूं वही हूं, किसी के अनुकरण के पीछे पागल नहीं हूं। ऐसा अगर कहीं कोई मनुष्य खोजने मिल जाए, तो समझ लेना स्वतंत्रता की तरफ उसने पहला कदम उठा लिया है। मनुष्य का चित्त परतंत्र है अंधानुकरण से। हम किसी न किसी का अनुकरण कर रहे हैं, इमिटेशन कर रहे हैं, इमिटेट कर रहे हैं। कोई महावीर को, कोई बुद्ध को, कोई राम को, कोई कृष्ण को, कोई क्राइस्ट को, कोई मोहम्मद को, लेकिन कोई भी आदमी खुद होने को राजी नहीं है कोई और होना चाहता है। यह उसकी परतंत्रता की शुरुआत है। वह अपने व्यक्तित्व की जगह किसी और का व्यक्तित्व ओढ़ लेना चाहता है। और किसी और का व्यक्तित्व उसके व्यक्तित्व पर परतंत्रता की गांठ बन जाएगा।

स्मरण रहे, कोई मनुष्य अपने अतिरिक्त और कोई भी कभी नहीं हो सकता है। आज तक जमीन पर दो मनुष्य एक जैसे हुए हैं? राम को हुए कितने दिन हो गए, कोई दूसरा राम फिर हो सका है? महावीर को हुए कितना समय बीता, कोई दूसरा महावीर फिर दिखाई पड़ा? नहीं, लेकिन ढाई हजार वर्षों में महावीर के बाद क्या आप सोचते हैं, लाखों लोगों ने महावीर बनने की कोशिश नहीं की है? कोशिश जरूर की है। लेकिन एक भी सफल नहीं हुआ। और नहीं सफल हो सकता है।

प्रत्येक व्यक्ति अद्वितीय है, यूनीक है। कोई व्यक्ति किसी दूसरे की कार्बनकापी न है और न हो सकता है। इस होने की कोशिश में बंध जाएगा। यह होने की कोशिश उसका बंधन बनेगी। और तब फिर, तब फिर राम तो नहीं बन सकता, रामलीला का राम जरूर बन सकता है। और जमीन रामलीला के रामों से बहुत परेशान है। राम तो ठीक हैं, बहुत अदभुत हैं, लेकिन रामलीला के राम के साथ क्या करें? यह आदमी झूठा है। और यह रामलीला का आदमी पाखंड है। यह असत्य है। यह ऊपर से ओढ़े है किसी बात को जो यह भीतर नहीं है

और नहीं हो सकता है। यह जो विरोध ही इसने अपने ऊपर से ओढ़ लिया है यही इसकी कारागृह है, यही इसका कैद है, यही इसका बंधन है। यह हमेशा पीड़ित और परेशान होगा। और जितना यह रामलीला का राम बनता जाएगा उतना ही इसकी जकड़ गहरी होती जाएगी, इसकी कड़ियां मजबूत होती चली जाएंगी। और भीतर इसके प्राण छटपटाएंगे वही होने को जो यह होने को पैदा हुआ था, जो इसकी आत्मा थी वही होने को इसके प्राण आकांक्षा से भर उठेंगे। प्राण भीतर कहेंगे, स्वतंत्रता चाहिए और यह रामलीला का राम, राम के वस्त्रों को ओढ़ कर कसता चला जाएगा। और भूल जाएगा इस बात को कि राम होने की मेरी कोशिश ही मेरा बंधन है। जब भी कोई आदमी किसी और जैसा होना चाहता है तो वह अपना कारागृह निर्मित कर रहा है, वह अपनी जंजीरें तैयार कर रहा है। यह कभी नहीं हो सकता कि कोई मनुष्य किसी दूसरे जैसा हो जाए।

इसीलिए तो हम कहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य के पास आत्मा है। मशीन एक जैसी हो सकती हैं, क्योंकि मशीनों के पास कोई आत्मा नहीं है। फोर्ड की मोटरें एक जैसी निकल सकती हैं लाखों, उनके पास कोई आत्मा नहीं है। आत्मा है व्यक्तित्व, आत्मा है इंडिविजुअलिटी, आत्मा है अद्वितीयता। और प्रत्येक व्यक्ति जिसके पास आत्मा है वह कभी किसी दूसरे जैसा नहीं हो सकता। होने की कोशिश में उसकी आत्मा यांत्रिकता में जकड़ जाएगी। लेकिन हम सबको यही सिखाया जा रहा है बचपन से कि राम जैसे बनो, कृष्ण जैसे बनो। और हम सोचते हैं ये आदर्श हमारे जीवन को मुक्त करते हैं? ये ही आदर्श हमारे जीवन को बांधे हुए हैं। ये ही हैं हमारी गुलामी। और अगर पुराने आदर्श फीके पड़ जाते हैं तो नये महापुरुष हमें रोज मिल जाते हैं, फिर तो हम कहते हैं: गांधी जैसे बनो, विवेकानंद जैसे बनो।

मैं आपसे निवेदन करता हूं, कभी किसी जैसे बनने की कोशिश मत करना। अगर किसी जैसे बनने की कोशिश की, तो फिर आपके जीवन में स्वतंत्रता संभव नहीं है। और जहां स्वतंत्रता न हो, वहां सत्य की भी कोई संभावना नहीं है। स्वतंत्रता है द्वार सत्य का। वे ही जो स्वतंत्र हैं, वे जान पाते हैं कि सत्य क्या है। और वे जो अपनी आत्मा को भी नहीं पहचान पाते और दूसरे की होने की नकल में पड़ जाते हैं, वे कैसे जान पाएंगे परमात्मा को? वे अपने को ही नहीं जान पाते, वे अपने को होने को राजी ही नहीं हो पाते। यह भी हो सकता है इस दौड़ में, दूसरे जैसे हो जाने की दौड़ में यह हो सकता है कि आप सफल भी हो जाएं, सारी दुनिया कहे कि यह आदमी सफल हो गया। देखो, बिलकुल, बिलकुल गांधी की कॉपी है, बिलकुल गांधी जैसा हो गया है। देखो, बिलकुल, बिलकुल महावीर जैसा, बुद्ध जैसा मालूम पड़ता है। वे ही वस्त्र हैं, उन जैसा ही नग्न खड़ा है, उन जैसा ही उपवास करता है, उन जैसा ही चलता है, उन जैसा ही बोलता है, उन जैसा ही उठता-बैठता है। कोई इतनी कुशलता से अनुकरण कर सकता है, इतनी कुशलता से अभिनय कर सकता है कि यह भी हो सकता है कि महावीर का अभिनय करने वाला अगर महावीर के सामने ले जाया जाए तो महावीर उससे हार जाएं। यह भी हो सकता है। यह इसलिए हो सकता है कि असली आदमी से भूल-चूक भी हो सकती है, अभिनेता भूल-चूक भी नहीं करता। जिंदगी में असली आदमी

गलत कदम भी रख सकता है, क्योंकि असली आदमी किसी पैटर्न के आधार पर नहीं जीता, किसी ढांचे पर नहीं जीता। असली आदमी अपनी स्वतंत्रता से जीता है। उसके पैर भूल-चूक में भी ले जा सकते हैं। उसके पैर में कांटे भी गड़ सकते हैं। वह आदमी पैर आगे बढ़ा कर खींच भी सकता है। असली आदमी किसी बंधे-बंधाए ढांचे से नहीं जीता। लेकिन नकली आदमी तो बिलकुल प्लैंड, बिलकुल आयोजना से जीता है। उससे भूल-चूक नहीं होती, वह कभी गलती नहीं करता। ऐसा एक बार हो चुका। ऐसी एक बहुत मजेदार घटना हुई।

चार्ली चैपलीन को उसके मित्रों ने एक समारोह आयोजित किया, उसकी किसी वर्षगांठ पर। और उसके मित्रों ने चाहा कि एक कोई अनूठा आयोजन हो। तो उन्होंने सारे यूरोप में एक प्रतियोगिता करवाई। कोई आदमी चार्ली चैपलीन का पार्ट करे, चार्ली चैपलीन का अभिनय करे। और सारे यूरोप से सौ प्रतियोगी चुने जाएंगे और फिर लंदन में बड़ी प्रतियोगिता होगी। उसमें जो तीन प्रतियोगी जीत जाएंगे, उनको बड़े पुरस्कार इंग्लैंड की महारानी देंगी।

बहुत बड़ा आयोजन हुआ। सारे यूरोप में नाटक खेले गए। और हजारों अभिनेताओं ने चार्ली चैपलीन का पार्ट किया। सौ अभिनेता चुने गए। चार्ली चैपलीन ने अपने मन में सोचा, क्यों न एक मजाक किया जाए, मैं भी झूठा फार्म भर कर दूसरे के नाम से भरती हो जाऊं, और इतना तो तय है कि मैं जीत जाऊंगा, इसमें कोई शक की बात नहीं। पहला पुरस्कार भी मिलेगा। बाद में बात खुलेगी तो सारी दुनिया हंसेगी कि खूब मजाक हुआ।

तो वह सम्मिलित हो गया। एक छोटे गांव से, एक छोटे गांव में अभिनय करके वह सम्मिलित हो गया एक दूसरे नाम से। प्रतियोगिता हुई और मजाक जितना सोचा था चार्ली चैपलीन ने उससे ज्यादा हो गया, उसको दूसरा पुरस्कार मिला। पहला पुरस्कार कोई दूसरा अभिनेता ले गया। और जब बात खुली कि चार्ली चैपलीन खुद भी था मौजूद सम्मिलित, तो सारी दुनिया हंसी कि यह तो हद्द हो गई कि चार्ली चैपलीन का अभिनय करने में दूसरा आदमी चार्ली चैपलीन से जीत गया!

तो मैं आपसे निवेदन करता हूं, महावीर का अभिनय करने में भी यह हो सकता है। बुद्ध के अभिनय करने में भी यह हो सकता है। लेकिन फिर भी जानना जरूरी है महावीर का अभिनेता महावीर से जीत जाए तो भी महावीर के आनंद को, आत्मा को, मुक्ति को उपलब्ध नहीं हो सकता। उसकी जीत अनुकरण की जीत होगी, अभिनय की जीत होगी, आत्मा की नहीं। उसकी आत्मा तो तड़फड़ाएगी भीतर, उसकी आत्मा तो बेचैन होगी, वैसी ही बेचैन होगी जैसे हम किसी बगीचे में चले जाएं और फूलों को समझाएं कि गुलाब तुम जुही जैसे हो जाओ; चंपा को कहें, तुम चमेली जैसे हो जाओ; इस फूल को कहें, उस फूल जैसे हो जाओ।

पहली तो बात यह है कि फूल सुनेंगे नहीं, क्योंकि फूल आदमियों जैसे नासमझ नहीं कि हर किसी की बात सुनें। बिलकुल नहीं सुनेंगे। अपनी मौज से झूलते रहेंगे हवा में। उपदेशक चिल्लाता रहेगा, न वे ताली बजाएंगे, न फिकर करेंगे। लेकिन यह भी हो सकता है,

आदमी की सोहबत में रहते-रहते कुछ फूल बिगड़ गए हों, आदमी की सोहबत में बिगड़ जाते हैं। जंगल के जानवर बीमार नहीं होते, आदमी की सोहबत में रहते हैं, वही बीमारियां उनको होने लगती हैं जो आदमी को होती है। तो आदमी की सोहबत, आदमी का सत्संग। हो सकता है कुछ फूल बिगड़ गए हों उसकी बगिया में रहते-रहते और राजी हो जाएं और चमेली चंपा होने की कोशिश करने लगे, और गुलाब जुही बनने लगे, उस बगिया में फिर क्या होगा? उस बगिया में फिर फूल पैदा नहीं होंगे। क्योंकि गुलाब लाख कोशिश करे तो चमेली नहीं हो सकता, जुही नहीं हो सकता। वह बीज उसके प्राणों में नहीं, वह आत्मा नहीं उसकी, वह उसका व्यक्तित्व नहीं। लेकिन इस कोशिश में कि गुलाब जुही बन जाए, कि जुही चंपा बन जाए, कि चंपा चमेली बन जाए, इस कोशिश में गुलाब में गुलाब के फूल तो पैदा नहीं हो सकेंगे, और चमेली के फूल भी पैदा नहीं हो सकते। क्योंकि सारी शक्ति चमेली होने में लग जाएगी, जो शक्ति गुलाब बनती है वह चमेली होने की कोशिश में व्यर्थ हो जाएगी। चमेली तो नहीं पैदा होगी, गुलाब भी फिर पैदा नहीं होगा। वह ताकत न बचेगी जिससे गुलाब पैदा हो सकता था। वह बगिया उजाड़ हो जाएगी, अगर किसी धर्मगुरु की बातें कोई बगिया सुन ले, तो फिर उसमें फूल पैदा नहीं हो सकते। आदमी की बगिया ऐसे ही उजाड़ हो गई, उसमें फूल नहीं खिलते हैं। आदमी बेरौनक हो गया, उसकी सुगंध खो गई। कभी एकाध आदमी करोड़-करोड़ में अगर फूल बन जाता है, तो यह कोई बहुत शुभ बात है? अगर एक बगिया में हम हजार पौधे लगाएं और एक फूल एक पौधे में खिल जाए, तो यह कोई माली के लिए सम्मान की बात है? अगर हजार दो हजार वर्षों में एक बुद्ध और एक महावीर और एक कृष्ण पैदा हो जाएं, तो यह कोई आदमी के लिए गौरव की बात है? और यह करोड़-करोड़ लोगों का जीवन व्यर्थ चला जाए, इनके जीवन में कोई फूल न खिले? इनके जीवन में फूल क्यों नहीं खिलते?

मैं आपसे निवेदन करता हूं, इन्होंने उपदेशक की बातें सुन ली हैं इसलिए इनके जीवन में फूल नहीं खिलेंगे। इन्होंने कुछ और होने की कोशिश शुरू कर दी है। इस कुछ और होने की कोशिश में यह कुछ और तो कभी नहीं हो पाते, लेकिन जो पैदा हुए थे होने को, वह होने की क्षमता और संभावना ही समाप्त हो जाती है।

मनुष्य के ऊपर पहला बंधन है, अंधानुकरण का। अंधे होकर अपने ऊपर किसी को थोप लेने का, अंधे होकर कुछ और बन जाने का। पहली स्वतंत्रता है इसलिए, स्वयं होने की कोशिश; पहली स्वतंत्रता है इसलिए, स्वयं की स्वीकृति; पहली स्वतंत्रता है इसलिए, इस बात की खोज कि क्या मेरे भीतर छिपा है? और किन मार्गों से, किन दिशाओं में वह व्यक्त होना चाहता है? क्या मेरे भीतर गुलाब पैदा होने को है या कि जुही? या कि घास का एक फूल? और स्मरण रखें, घास एक छोटा सा फूल भी जब अपने पूरे सौंदर्य में खिल जाता है, तो उसका आनंद किसी गुलाब से कम नहीं होता। एक घास का छोटा सा फूल भी जब अपने पूरे सौंदर्य में, अपने पूरे प्राणों से प्रकट हो जाता है और हवाओं में झूल उठता है, तब उसका सौंदर्य, उसका आनंद, उसकी आत्मा की लहर, उमंग किसी कमल से कम नहीं

होती। यह आदमी के कंपेरिजन से कि वह कहता है, गुलाब अच्छा है और यह तो घास का फूल है। यह वही नासमझ आदमी, जो महावीर और बुद्ध होने की कोशिश में लगा है, यह उसी का वैल्युएशन है, यह उसी का मूल्यांकन है कि गुलाब अच्छा और यह तो घास का फूल है। लेकिन घास के खिले हुए फूल के प्राणों में घुसें, तो आप पाएंगे, वहां उतना ही आनंद है खिल जाने का, हो जाने का, अभिव्यक्त हो जाने का, प्रकट हो जाने का। जितना गुलाब के भीतर है, जितना कमल के भीतर है। वह आनंद गुलाब, कमल और चमेली और घास के फूल के कारण नहीं होता, वह होता है पूरी तरह खिल जाने के कारण, पूरी तरह प्रकट हो जाने के कारण।

जो व्यक्ति पूरी तरह नहीं प्रकट हो पाता, उसके भीतर एक बंधन और एक जकड़ रह जाती है। जीवन भर एक तड़पन, एक पीड़ा। जैसे कोई बीज फूटना चाहता हो, अंकुर बनना चाहता हो, लेकिन खोल इतनी मजबूत हो, लोहे की हो, कि तड़फड़ाते हों उसके प्राण भीतर, लेकिन खोल को न तोड़ पाते हों, तो कैसी दशा हो जाएगी उस अंकुर की? हर आदमी वैसी दशा में है। लोहे की खोल ओढ़े हुए हैं हम और भीतर तड़प रहा है कोई अंकुर प्रकट हो जाने को, जीवन के पल बीते जाते हैं, उम्र बीती जाती है, मौत करीब आई जाती है और खोल है कि टूटती नहीं। और हम हैं ऐसे कारीगर कि और खोल पर और लोहे की और पर्तें चढ़ाते चले जाते हैं, और आदर्श ओढ़ते चले जाते हैं, और अनुकरण करते चले जाते हैं, और सिद्धांत और शास्त्र, और न मालूम उस खोल को कितना मजबूत करे चले जाते हैं। भीतर का अंकुर प्रकट नहीं हो पाता और मौत आ जाती है।

यही है पीड़ा मनुष्य की, यही है दुख, यही है उसका संताप। कौन करेगा इस संताप से मुक्त किसी को? कौन हाथ आएगा मुक्त करने को? कोई और हाथ नहीं, हमारे ही ये हाथ जो अनुकरण की भूल में कड़ियां गुंथ रहे हैं। इन हाथों को समझ से रुक जाना होगा और खोल देनी होंगी अनुकरण की कड़ियां और उठा देने होंगे खुले आकाश की तरफ हाथ और कह देना होगा सारे जगत को, मैं मैं होने को पैदा हुआ हूं, मैं कोई और होना नहीं चाहता।

जिस दिन कोई व्यक्ति इस निष्कर्ष पर पहुंच जाता है कि मैं, चाहे घास का फूल ही सही, मैं मैं ही होने को पैदा हुआ हूं। चाहे सड़क के किनारे पड़ा हुआ एक कंकड़ ही सही, लेकिन मैं मैं ही होने को पैदा हुआ हूं। न सही आकाश का तारा, न सही पारसमणी; सही धूल का एक कंकड़, लेकिन मैं मैं ही होने को पैदा हुआ हूं। इसे मैं स्वीकार कर लूं और जान लूं, तो शायद आकाश का एक तारा भी जिस आनंद को उपलब्ध होता है, राह के किनारे पड़ा हुआ एक कंकड़ भी जब खुद की स्वीकृति से खिल जाता है, उतने ही आनंद को उपलब्ध हो जाता है।

स्वयं की स्वीकृति स्वतंत्रता का पहला सूत्र है। और हम सब स्वयं को किए हुए हैं अस्वीकार। स्वयं के बने हुए हैं दुश्मन। दूसरे के हैं प्रशंसक, खुद के हैं शत्रु। दूसरे के हैं अनुयायी, और खुद के? खुद के खिलाफ तलवार लिए हुए खड़े हैं। खुद की हत्या को तैयार हैं, दूसरे बनने

को हम तैयार हैं। कैसे? कैसे? कैसे हो सकती है मुक्ति की कोई संभावना? कोई गुंजाइश? कैसे खुल सकता है वह द्वार?

इसलिए पहला सूत्र निवेदन करना चाहता हूं, स्वयं होने की स्वीकृति। अंधानुकरण नहीं, आदर्श का आरोपण नहीं, किसी और जैसे होने का प्रयास नहीं, जो मैं हूं उसकी पूर्ण स्वीकृति। जो मैं हो सकता हूं, तब फिर उसकी खोज हो सकती है। फिर जो मैं हो सकता हूं, उस यात्रा पर गति हो सकती है। जब तक कोई किसी और के पीछे चल रहा है तब तक स्मरण रखें, तब तक वह कभी अपनी आत्मा तक नहीं आ सकता है। आत्मा के लिए जाना जरूरी है खुद के भीतर। और अनुयायी जाता है किसी और के पीछे। ये दोनों दिशाएं भिन्न हैं। अनुयायी जाता है किसी और के पीछे।

अनुयायी कभी धार्मिक नहीं हो सकता। धार्मिक व्यक्ति वह है जो जाता है स्वयं के भीतर। और स्वयं के भीतर जाना और किसी और के पीछे जाना, दो विरोधी दिशाएं हैं। इनका कोई मेल नहीं, ये कहीं मिलती नहीं। ये एकदम एक-दूसरे की तरफ पीठ की हुई दिशाएं हैं।

क्यों हम अनुकरण करना चाहते हैं? क्यों? क्यों हम किसी और जैसे हो जाना चाहते हैं? शायद इसलिए ही कि स्वयं होने का साहस नहीं जुटा पाते। स्वयं होने का सहजता नहीं जुटा पाते। स्वयं होने की स्वीकृति नहीं जुटा पाते।

क्यों नहीं जुटा पाते हैं? क्यों नहीं यह साहस कर पाते हैं कि हम कह सकें इस जगत को, निवेदन कर सकें कि मुझे मुझ जैसा रहने दो? कौनसा कारण है जिससे यह नहीं हो पा रहा? एक ही कारण है, वही हमारी दूसरी कड़ी है बंधन की। और वह यह है कि हमने कभी विचार ही नहीं किया। हम कभी विचार ही नहीं करते हैं। तो कैसे का सवाल ही नहीं उठता। हम कभी विचार ही नहीं करते। जीवन को पकड़ कर कभी हम सोचते नहीं। हम हमेशा किसी को पढ़ लेते हैं, किसी को सुन लेते हैं। लेकिन न तो पढ़ना सोचना है और न सुनना सोचना है। दोनों हालत में हम तो होते हैं निष्क्रिय, हम तो होते हैं पैसिव, कोई और कर रहा होता है सोचने का काम। कोई किताब लिखता है, कोई बोलता है। कोई और कर रहा है सोचने का काम, हम पैसिव, हम निष्क्रिय बैठे हुए सुन रहे हैं। कोई हमारे दिमाग में कुछ डाल रहा है और हम टोकरी की तरह बैठे हुए हैं कि वह डालता जाए, हम इकट्ठा करते चले जाएंगे। पूरी जिंदगी हमारी एक पैसिविटी है। रात को सिनेमा देख लेते हैं, कोई और नाच रहा है हम देख लेते हैं। रेडियो सुन लेते हैं, कोई गीत गा रहा है, हम सुन लेते हैं। अखबार पढ़ लेते हैं, कोई खबर ला रहा है, हम सुन लेते हैं। चौबीस घंटे हमारे भीतर कोई एक्टिव, कोई सक्रिय चेतना नहीं है, निष्क्रिय चेतना है।

निष्क्रिय चेतना के कारण अनुकरण पैदा होता है। निष्क्रिय चेतना सोचती है, कोई और ने कर लिया, मैं उसके पीछे चल जाऊं। किसी और ने पा लिया, मैं उसका पल्ला पकड़ लूं। किसी और को सत्य उपलब्ध हो गया, मैं उसके चरणों में सिर रख कर बैठ जाऊं। मैं हूं निष्क्रिय, मुझे कुछ करना नहीं है। किसी और ने कर लिया, मैं उसमें भागीदार बन जाऊं। निष्क्रिय चेतना हो गई है निरंतर। सक्रिय चेतना नहीं है। और सक्रिय चेतना तब तक नहीं

होगी जब तक हम विचार करने को तैयार न हों। निष्क्रिय चेतना पैदा हो गई है विश्वास के कारण, सारी दुनिया में विश्वास के प्रचार के कारण निष्क्रिय चेतना पैदा हो गई है। सारी दुनिया पैसिव से पैसिव होती जा रही है, निष्क्रिय से निष्क्रिय। सक्रिय रूप से जीवन का हमारा कोई संबंध नहीं रहा। सब कुछ कोई और कर दे।

मैंने सुना है, पश्चिम के एक विचारक ने एक किताब लिखी। और उसने लिखा, बहुत जल्द वह समय आ जाएगा कि हम प्रेम करने के लिए भी नौकर रख लिया करेंगे। जरूर। कौन मुसीबत ले प्रेम करने की खुद। एक नौकर रख लिया करेंगे, तनख्वाह दे दिया करेंगे। वह जाकर जिससे हमें प्रेम हो उससे प्रेमपूर्ण बातें कह दिया करेगा, प्रेम कर लिया करेगा। उससे भी हम बच जाएंगे।

हंसी आती है हमें इस बात पर, लेकिन हमने प्रार्थना करने के लिए नौकर रख लिए उस पर हंसी नहीं आती? मंदिर में एक पुजारी रख लिया है, जिसको हम तनख्वाह देते हैं कि तू प्रार्थना करना हमारे लिए। घर पर हम एक पुजारी को बुलाते हैं कि तू प्रार्थना कर प्रभु से हमारे लिए, हम तुझे पैसे देंगे। जब हम प्रार्थना करवा सकते हैं नौकर से, तो क्या कोई आश्चर्य है इस बात का कि यह आदमी कभी प्रेम भी करवा सकता है? प्रेम और प्रार्थना में कोई फर्क है? कोई भेद है? अगर हम परमात्मा और अपने बीच नौकर रख सकते हैं, तो क्या कठिनाई है कि हम प्रेयसी और अपने बीच नौकर न रख लें?

तो मत हंसिए इस बात पर। अगर हंसते हैं, तो फिर पुजारी को विदा कर दीजिए। इस पर हंसने की जरूरत नहीं है, यह हम करते रहे हैं, यह हम रोज कर रहे हैं। विश्वास ने, अंधे विश्वास ने विचार की सारी क्षमता छीन ली है।

इसलिए दूसरी कड़ी है, विचार करना अत्यंत जरूरी है। विचार का क्या मतलब? विचार से क्या संबंध? विचार का क्या अर्थ? क्या विचार का यह अर्थ है कि हम बहुत से विचार इकट्ठे कर लें तो हम विचारक हो जाएंगे? विचारों का संग्रह क्या हमें विचारक बना देगा? यह भ्रम पैदा हुआ है दुनिया में। कि हम बहुत से विचारों को इकट्ठा कर लें, बहुत से शास्त्रों को पी जाएं, सदियों में जो चिंतन हुआ है उसके हम संग्रहालय बन जाएं, वह हमारे दिमाग में सब इकट्ठा हो जाए, तो हम विचारक हो गए। एक आदमी जो वेद के वचन बोल देता है, एक आदमी जो उपनिषद की ऋचाएं उद्धृत कर देता है, एक आदमी जो गीता पूरी की पूरी कंठस्थ कर लेता, हम कहते हैं, विचारक है, ज्ञानी है। क्या विचार के संग्रह से ज्ञान का कोई भी संबंध हो सकता है? सच्चाई तो यह है कि जिस व्यक्ति के भीतर विचार की क्षमता जितनी कम होती है, उस विचार की क्षमता की कमी को भुलाने के लिए विचारों के संग्रह को इकट्ठा कर लेता है। ताकि यह अहसास उसे न हो इस अभाव का कि मेरे भीतर विचार नहीं है। और विचार का संग्रह कोई बुद्धिमत्ता नहीं है, एकदम यांत्रिक प्रक्रिया है, मैकेनिकल बात है। अब तो हमने यांत्रिक मस्तिष्क बना लिए हैं, कंप्यूटर्स बना लिए हैं, जो हमारे सारे प्रश्नों के उत्तर दे सकते हैं। कोई जरूरत नहीं किसी पंडित को कि पूरी बाइबिल को याद करे। एक मशीन पूरी बाइबिल को याद कर लेती। और आप पूछ लीजिए कि ल्यूक

के फलां-फलां अध्याय में, फलां-फलां सूत्र में क्या लिखा हुआ है? मशीन फौरन उत्तर छाप कर बाहर भेज देती है कि यह लिखा हुआ है। इस मशीन को विचारक कहिएगा?

शायद आपको पता न हो, कोरिया के युद्ध में अमेरिका ने जो निर्णय लिया चीन से युद्ध में न उतरने का, वह निर्णय किसी मनुष्य के मस्तिष्क ने तय नहीं किया, वह कंप्यूटर्स ने तय किया था। वह उन मशीनों ने तय किया, जिन मशीनों में सारी बातें डाल दी गईं। चीन की कितनी ताकत है, कितने सैनिक हैं, कितने बम हैं उसके पास। अमेरिका की कितनी ताकत है, कितने सैनिक हैं, वह सब जानकारी फीड कर दी गई, खिला दी गई उस मशीन को, और फिर पूछ लिया गया कि चीन से युद्ध में उतरना ठीक है या नहीं? मशीन ने उत्तर दिया, बिलकुल ठीक नहीं है। अमेरिका चीन से युद्ध में नहीं उतरा। वह निर्णय किसी मनुष्य-मस्तिष्क ने नहीं किया। यह पहला निर्णय है इतना बड़ा, जो कि मशीन के द्वारा लिया गया।

मनुष्य-मस्तिष्क से कभी भूल भी हो सकती है, मशीन कभी भूल नहीं करती। इसलिए आने वाले दिनों में विचारकों से कोई पूछने न जाएगा, पक्का खयाल रखिए। मशीनें होंगी गांव-गांव में जिनसे हम पूछ लिया करेंगे कि क्या है ठीक उत्तर इस बात का? और हम भी क्या करते हैं? हमारा मस्तिष्क भी क्या करता है? इस मस्तिष्क को भी तो हमें भोजन देना पड़ता पहले--स्कूल में, कालेज में शिक्षा देनी पड़ती। सिखाना पड़ता इसको। बच्चा होता पैदा, हम उससे कहते, तुम्हारा नाम है, राम। तुम्हारा नाम है राम, तुम्हारा नाम है राम, सुनते-सुनते बच्चे का मस्तिष्क, मस्तिष्क की रिकाघडग पकड़ लेती इस बात को कि मेरा नाम है राम। फिर एक आदमी उससे पूछता है, तुम्हारा नाम? वह फौरन कहता है, मेरा नाम है, राम। आप सोचते हैं, इसमें विचार की कोई जरूरत पड़ी? कोई जरूरत नहीं पड़ी। इसमें विचार का कोई संबंध नहीं आया। यांत्रिक स्मृति ने पकड़ ली यह बात, राम। फिर उत्तर पूछा किसी ने, क्या है तुम्हारा नाम? वह कहता है, राम। उससे पूछो, भगवान है? अगर वह हिंदुस्तान में पैदा हुआ है और उसके दिमाग में यह बात डाली गई है, तो उससे पूछ लो अंधेरे में उठा कर भी, सोते में से कि भगवान है? वह कहेगा, है, बिलकुल है। रूस में अगर वह पैदा हुआ होता, वहां सिखाया जाता, नहीं है। उसको उठा कर पूछते, भगवान है? वह कहता, नहीं है। ये दोनों उत्तर यांत्रिक हैं, इसमें विचार का कोई संबंध नहीं। जो सिखा दिया गया है वह बोला जाता है। जो सीखा हुआ ही बोल रहा है, वह आदमी विचारपूर्ण नहीं है। और हम सब सीखा हुआ ही बोल रहे हैं। अनसीखा हुआ हमारे भीतर एक भी तत्व नहीं है। अनसीखा, अनलर्न अगर हमारे भीतर कोई सूत्र पैदा होता है, उसका नाम विचार है।

तो विचार के संग्रह का नाम विचार नहीं है; विचार एक क्षमता है जीवन के प्रति अत्यंत जागरूक होने की। जीवन प्रतिक्षण समस्याएं खड़ी कर रहा है। प्रतिक्षण जीवन के आघात हमारे चित्त पर पढ़ रहे हैं। हमारे चित्त को उत्तर देने पड़ रहे हैं। क्या वे उत्तर हम सीखे हुए ही दे रहे हैं? अगर सीखे हुए दे रहे हैं तो समझ लेना कि अभी विचार का आपके भीतर जन्म

नहीं हुआ। लेकिन क्या कभी हमारे भीतर से अनसीखे हुए उत्तर भी आते हैं? जब जीवन कोई प्रश्न खड़ा करता है, तो क्या हम तत्काल स्मृति में खोज कर उत्तर ले आते हैं या कि स्मृति को कहते हैं तुम चुप रहो, तुम मत बोलो, मुझे देखने दो समस्या को, मुझे समस्या से परिचित होने दो, मेरे पूरे चित्त को समस्या के साथ एक होने दो और फिर आने दो उत्तर को, वह उत्तर स्मृति से नहीं, वह उत्तर विचार से आया हुआ होगा।

सुभाष के एक बड़े भाई थे, शरदचंद। वे एक दिन एक ट्रेन में यात्रा करते थे, सुबह के कोई चार बजे होंगे, अंधेरी रात थी, वे उठे, बाथरूम में गए, नींद से उठे थे, मुंह पर पानी छिड़कते थे, घड़ी खुली थी, शायद नींद से भरा हुआ हाथ होगा, घड़ी छूट गई और संडास के रास्ते नीचे गिर गई।

आपकी घड़ी गिर गई होती, फिर आप क्या करते? शरदचंद ने चेन खींची, लेकिन चेन खींचते-खींचते और गाड़ी के रुकते-रुकते एक मील कम से कम पार हो गया होगा। रात अंधेरी, ड्राइवर, कंडक्टर भागे हुए, गार्ड आया। कहा कि मेरी घड़ी गिर गई, बहुत कीमती है। उन्होंने कहा, बड़ा मुश्किल है अब घड़ी को खोज पाना। एक मील दूर, वह न मालूम कहां गिरी होगी? छोटी सी चीज है, अंधेरी रात है, कहां हम उसे खोजेंगे? और ट्रेन कितनी देर रोकी जा सकती है? मुश्किल है यह बात।

लेकिन शरदचंद ने कहा, मुश्किल नहीं है। आदमी भगाएं, मैंने अपनी जलती हुई सिगरेट उसके पीछे डाल दी है। वह एक फीट के फासले पर मेरी जलती हुई सिगरेट अंधेरे में चमक रही होगी। उसके पास ही बहुत शीघ्र घड़ी मिल जाएगी। आदमी दौड़ाएं। आदमी दौड़ाया गया, वह घड़ी सच में ही एक फीट के फासले के बीच में ही मिल गई चमकती हुई जलती सिगरेट के!

शरदचंद ने, स्मृति से यह उत्तर नहीं आ सकता था, क्योंकि पहले कभी घड़ी नहीं गिरी थी और न सिगरेट डालने की कोई आदत थी। और न किसी किताब में ही यह पढ़ा हुआ हो सकता था, क्योंकि किसी किताब में कहीं यह लिखा ही हुआ नहीं है कि आपकी घड़ी गिर जाए तो जलती हुए सिगरेट पीछे डाल देना। किसी शास्त्र में कहीं किसी में यह नहीं लिखा हुआ। यह मौका बिलकुल नया था। चेतना के समझ अनूठी समस्या थी। स्मृति में कोई उत्तर इसके लिए हो नहीं सकता था। यह कोई पिछले अनुभव की बात न थी।

आप होते शायद घबड़ा गए होते। शायद चेन खींची होती, चिल्लाए होते कि मेरी घड़ी गिर गई। लेकिन वह घड़ी नहीं मिल सकती। क्योंकि आपकी चेतना ने उस समस्या के साथ कोई समन्वय स्थापित नहीं किया था। लेकिन शरदचंद ने, जलती सिगरेट डाली उसके पीछे। यह एक क्षण में ही हो गया, इसके लिए सोचने के लिए समय भी नहीं था। क्योंकि सोचने में बहुत समय जाया हो सकता है। सोचने में तो समय लगेगा, क्योंकि स्मृति में खोजना पड़ेगा, स्मृति का बड़ा संग्रह है। जैसे कि घर के तलघरे में बहुत सी चीजें भरी हों, वहां जाकर खोजने जाइएगा, तो समय लगेगा। अगर स्मृति में उत्तर खोजते, तो समय लगता, और समय में तो दूरी हो जाती है। लेकिन विचार तत्क्षण सजगता है। वह कोई खोज नहीं है

जिसमें समय लगता हो। विचारक विचारशील नहीं होता, जिसको हम संग्रह के, संग्रह वाले को विचारक कहते हैं।

विचारक का अर्थ है: जिसकी चेतना समस्याओं से सीधा साक्षात करने में समर्थ है। अक्सर तो उलटा होता है, जो विचारों से बहुत घिरे हैं, अगर उनसे आप उनकी किताब लिखी हुई बात पूछें, तो वे तत्क्षण उत्तर दे देंगे। लेकिन अगर जिंदगी कोई ऐसा मसला खड़ा कर दे--जैसा कि जिंदगी रोज खड़ी करती है--जो उनकी किताब में न लिखा हो, तो वे बिलकुल भौचक्के खड़े रहे जाएंगे। प्रतीत होगा, उनके पास इसका कोई उत्तर नहीं है। या फिर वे कोई ऐसा उत्तर देंगे जिसकी कोई संगति नहीं होगी। क्योंकि वह उनकी स्मृति से आएगा, जीवन के साथ सीधे साक्षात से नहीं।

एक बहुत बड़ा गणितज्ञ था। उसने ही सबसे पहले गणित के बाबत किताबें लिखी हैं। अनूठा उसका ज्ञान था गणित के संबंध में। जो कुछ जानकारी थी मनुष्य-जाति की सभी उसे ज्ञात थी। गणित का कोई ऐसा सवाल न था जो वह हल न कर सके। एक दिन सुबह छुट्टी के दिन अपने पत्नी और बच्चों के लेकर वह पहाड़ी के पास पिकनिक को गया हुआ था। बीच में पड़ता था एक बड़ा नाला। ऐसे बहुत गहरा नहीं था। उसकी पत्नी ने कहा, बच्चों को सम्हाल कर पार कर दो, कोई बच्चा डूब न जाए। उसने कहा, ठहरो, वह अपने साथ हमेशा एक फूटा रखता था नापने के लिए, वह गया उसने नदी को चार-छह जगह नापा, कितनी गहरी है। अपने बच्चों को नापा, कितने ऊंचे हैं। रेत पर हिसाब लगाया और कहा, बेफिकर रहो, बच्चों की औसत ऊंचाई नदी की औसत गहराई से ज्यादा है। जाने दो, कोई डूबने वाला नहीं। बच्चे एवरेज ऊंचे हैं। बच्चे गए, पत्नी क्या कर सकती थी, इतना बड़ा ज्ञानी था उसका पति, इतना बड़ा गणितज्ञ था, इतना शास्त्रीय था। पत्नियां हमेशा शास्त्रीय पति के सामने एकदम हार जाती हैं। कोई उपाय भी नहीं है। और पत्नियों ने शास्त्री होने की आज तक भूल नहीं की है। इसलिए उनसे कोई लड़ाई करने की गुंजाइश बनती नहीं है। उसे डर तो हुआ, लेकिन जब पति कहता है और हिसाब उसने लगा लिया और उसके हिसाब में कभी भूल-चूक होती नहीं, तो ठीक ही कहता होगा। इसलिए पांच-सात बच्चे, कोई बड़ा था, कोई छोटा, कोई बहुत छोटा। बड़ा तो एक निकल गया, बाकी छोटे उसमें डुबकी खाने लगे। उसकी पत्नी चिल्लाई कि छोटा बच्चा डुबा जाता है। लेकिन उस गणितज्ञ न क्या किया? उसने कहा, आं, क्या हिसाब में कोई भूल-चूक हो गई? वह भागा, बच्चा डूबता था, वह डूबता रहा, वह भागा नदी के किनारे जहां रेत पर उसने हिसाब किया था कि कोई भूल तो नहीं हो गई।

यह संग्रह वाले विचारक की मनःस्थिति है। जीवन को सीधा साक्षात नहीं करता, जीवन बच्चे को डुबाए दे रहा है, नदी बच्चे को डुबाए दे रही है, उसका प्राण लिए ले रही है। इस समस्या को भी वह गणित के माध्यम से साक्षात करता है, जो हिसाब उसने किया है नदी के किनारे, उसको देखने जाता है कि कोई भूल तो नहीं हो गई। क्योंकि डूबना नहीं चाहिए, अगर गणित ठीक है तो।

लेकिन किस पागल ने कब कहा कि जिंदगी गणित के हिसाबों से चलती है। जिंदगी कभी गणित के हिसाबों से नहीं चलती। और जिस दिन जिंदगी बिलकुल गणित के हिसाबों से चलेगी उस दिन आदमी में कोई आत्मा नहीं बचेगी। गणित के हिसाब से यंत्र चल सकते हैं। जिंदगी अनूठी है, अनजान रास्ते लेती है, कोई गणित के रास्ते उसके लिए निर्णीत नहीं हो सकते। और न ही तर्क के कोई रास्ते निर्णीत हो सकते हैं। और न ही सिद्धांतों की कोई बंधी हुई रेखाएं निर्णीत हो सकती हैं। लेकिन विचारों का संग्रह करने वाला पंडित इसी ढांचे में कैद होता है। इसलिए विचारों का संग्रह नहीं है विचार की क्षमता।

फिर क्या है विचार की क्षमता?

यह दूसरी कड़ी है, हमने विचारों के संग्रह को समझ रखा है कि हम विचारशील हैं। यह हमारी गुलामी है। इसको तोड़ देना होगा।

स्वतंत्रता के लिए जानना होगा कि विचारों का संग्रह नहीं, बल्कि कोई और चीज है जिसका नाम विचार है, जिसका नाम विवेक है। वह कौनसी चीज है? वह मैं तीसरी कड़ी के भीतर आपसे बात करना चाहता हूं।

किस चीज को मैं विचार कहूं? मैं जागरूकता को विचार कहता हूं, अवेयरनेस को, होश को। मैं मर्ूच्छा को अविचार कहता हूं, सोए हुए पन को। जागे हुए पन को मैं विचार कहता हूं। क्योंकि जो सोया हुआ है वह अपनी नींद के कारण किसी भी जीवन की समस्या से सीधा साक्षात नहीं कर पाता।

एक आदमी एक घर में सोया हुआ हो और घर में आग लग जाए, वह सोया रहेगा, क्योंकि उसके बीच और मकान में लगी आग के बीच नींद की एक दीवाल है। उस नींद की दीवाल के कारण मकान में लगी आग की कोई खबर उसकी चेतना तक नहीं पहुंचती। लेकिन एक आदमी जागा हुआ है अपने घर में और मकान में आग लग जाए, तो क्या वह मकान में बैठा रहेगा? नहीं, आग लगी हुई स्थिति से उसकी चेतना साक्षात करेगी और बाहर निकलने का द्वार खोजेगी।

हम सारे लोग लेकिन अपनी-अपनी समस्याओं में घिरे हैं और कोई मार्ग नहीं खोज पाते, इससे यह सिद्ध होता है कि हम सोए हुए होंगे। नहीं तो हम मार्ग खोज लेते। हमने द्वार खोज लिया होता। जिंदगी में हमने कोई राह खोज ली होती, हम बाहर हो गए होते समस्याओं के। कोई आदमी समस्याओं के बाहर नहीं है, लेकिन हर आदमी घिरा है। बल्कि जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है समस्याएं बढ़ती चली जाती हैं। मौत के वक्त तक आदमी छोटा सा रह जाता है, समस्याओं का हिमालय उसके चारों तरफ खड़ा हो जाता है। होना उलटा चाहिए था, होना यह चाहिए था कि जिंदगी आगे बढ़ती, समस्याएं कम होतीं। क्योंकि आखिर जिंदा होने का मतलब क्या है फिर? होना यह था कि मरने के क्षण कोई समस्या न रह जाती। वह समाधान होता, वह समाधि होती। और तब मृत्यु मोक्ष बन जाती है। लेकिन हम तो समस्याएं बढ़ाते चले जाते हैं, मरते वक्त हम समस्याओं के सागर में होते हैं। तब मौत एक

पीड़ा है। क्योंकि सारा जीवन गया व्यर्थ और एक समस्या हल न हुई। एक सूत्र खोला न जा सका। एक गांठ खुल न सकी। गांठ पर गांठ बनती चली गईं। तो जरूर हम सोए हुए होंगे।
सोए हुए होने का क्या अर्थ? वह हम समझ लें, क्योंकि सोया हुआ होना हमारी तीसरी गांठ है, हमारी परतंत्रता की, हमारी गुलामी की। मुक्ति के लिए जरूरी है कि हम जागरूक हो जाएं।
एक छोटी सी कहानी कहूंगा, ताकि मेरी बात समझ में आ सके।
जापान के एक बादशाह ने अपने बेटे को एक गुरु के आश्रम में भेजा। वह गुरु उसके गांव से निकला था और राजा ने उससे पूछा था कि मैं अपने लड़के को क्या सिखाऊं? तो उस गुरु ने कहा था, एक ही बात अगर तुम सिखा सको तो तुमने सब सिखा दिया। लड़के को जागना सिखा दो। राजा हैरान हुआ कि यह क्या बात है, लड़का रोज जागता है। उसने पूछा कि मैं समझा नहीं? तो उसने कहा, लड़के को भेज दो मेरे आश्रम में। मैं कोशिश करूंगा, शायद लड़का जाग जाए।
लड़के को भी हैरानी हुई कि जागना भी सिखाना पड़ेगा क्या? रोज तो हम जागते हैं सुबह। लेकिन गया, उस गुरु ने कहा, तुम आ गए हो, कल सुबह से तुम्हारी शिक्षा शुरू हो जाएगी। लेकिन स्मरण रहे, शिक्षा बड़ी अनूठी है। घबड़ाना मत। डरना भी मत। कोई खतरा होने को नहीं है। लेकिन थोड़ी कठिनाई से गुजरना पड़ेगा। क्योंकि सोए हुए आदमी को जागना सच में एक कठिनाई है। सोया हुआ होना एक सुख है। क्योंकि सोए हुए होने में जीवन की कोई समस्या परेशान नहीं करती। जागना एक पीड़ा है। क्योंकि सब समस्याएं परेशान करेंगी। बोध में आएंगी, दिखाई पड़ेंगी। इसलिए तो कोई आदमी बहुत दुख में होता है, तो हम मॉरफिया का इंजेक्शन दे देते हैं ताकि वह सो जाए, ताकि फिर उसको तकलीफों का पता न रहे। तो उसने कहा, थोड़ी पीड़ा होगी जागने में, लेकिन स्मरण रखो, जो आदमी पूरी तरह जाग जाता है वह अपनी हर समस्या को हल कर लेता है। और फिर आती है एक शांति। फिर आता है एक आनंद।
जो सोए हुए में अनुभव होता है, वह है सुख। क्योंकि समस्याएं दिखाई नहीं पड़तीं। और जो जागने पर उपलब्ध होता है, वह है आनंद। क्योंकि तब कोई समस्याएं नहीं रह जाती हैं। थोड़ी पीड़ा होगी। उसने पूछा, क्या होगी मेरी शिक्षा? उसके गुरु ने कहा, कल से मैं किसी भी समय तुम्हारे ऊपर लकड़ी की तलवार से हमला कर दिया करूंगा। तुम खाना खा रहे हो, मैं पीछे से आकर हमला कर दूंगा, तो तुम सावधान रहना, कभी भी हमला हो सकता है। तुम बुहारी लगा रहे होओगे आश्रम में, और मैं पीछे से हमला कर दूंगा। तुम किताब पड़ रहे होओगे और हमला हो जाएगा। इसलिए हर वक्त खयाल रखना, दिन में दस-पच्चीस दफे तुम्हारे ऊपर हमला होने वाला। लकड़ी की तलवार से मैं चोट करूंगा। और जब तुम थोड़े जागरूक हो जाओगे, तो असली तलवार से भी किया जा सकेगा।
लड़का तो बहुत घबड़ाया कि यह कौनसी शिक्षा शुरू हो रही? लेकिन मजबूरी थी, बाप ने उसे वहां भेज दिया था और शिक्षा लेनी थी और लेनी पड़ेगी। सभी बच्चे ऐसी मजबूरी में

शिक्षा लेते हैं। बाप भेज देते हैं और उनको लेनी पड़ती है। उस लड़के को भी लेनी पड़ी। लेकिन उसे पता न था कि एक बहुत अदभुत प्रक्रिया से वह गुजरने को है।

दूसरे दिन से हमला शुरू हो गया। पाठ शुरू हो गए। लड़का किताब पढ़ रहा है, पीछे से उसका गुरु हमला कर देता है। चोट खा जाता है, सिर में चोट आ जाती है, हड्डी पर चोट आ जाती है। पहले दिन ही उसको समझ आ गया कि यह तो बड़ा मुश्किल काम है। लेकिन सात दिन बीतते-बीतते उसे एक बात खयाल में आनी शुरू हुई, उसके भीतर कोई सावधानी, कोई सजगता पैदा हो रही है। वह कोई भी काम करता रहता है, तो भी एक खयाल निश्चितरूपेण उसकी चेतना के पीछे खड़ा रहता है कि हमला! हमला! तलवार आती है! गुरु आता है! जरा पैर की खटपट किसी की और लगता है कि वह आया! जरा आवाज, पक्षी बोल जाते हैं, हवा द्वार खड़खड़ा देती है, लगता है वह आया! सब काम करता रहता है लेकिन यह लगन, यह खयाल, यह स्मृति, यह माइंडफुलनेस बनी रहती कि वह आता है।

महीना बीतते-बीतते तो वह हैरान हो गया, जैसे कोई सावधानी का एक स्तंभ खड़ा हो गया भीतर। गुरु हमला करता है, हमले के साथ ही उसका हाथ उठ कर रक्षा कर लेता है। एक सावधानी है निरंतर। अब हमले में चोट नहीं लग पाती। अक्सर वह चोट से बच जाता है। अनजान, पीछे के हमले में भी चेतना रक्षा करती है।

हम जानते हैं, एक मां रात सोती है, उसका बच्चा बीमार है, वह रोता है, कमरे में कोई नहीं सुन पाता, मां नींद में ही उसको थपथपा देती है और सुला देती है। तो उसकी चेतना में कहीं कोई बात जागरूक है, बच्चा बीमार है, कहीं रोए न, नींद में भी। हम इतने लोग हैं यहां, हम सारे लोग रात सो जाएं, फिर कोई आदमी आकर बुलाए--रहीम, रहीम, तो जो आदमी रहीम होगा उसको ही सुनाई पड़ जाएगा और बाकी लोग सोए रहेंगे। आवाज सबके कानों पर पड़ेगी, लेकिन रहीम रहीम नाम के प्रति थोड़ा जागरूक है, निरंतर का उसे स्मरण है। नींद में भी वह पहचान जाएगा मुझे कोई बुलाता है। वह उठेगा और कहेगा, कौन बुलाता? और बाकी लोग सोए रहेंगे। बाकी लोग को पता भी नहीं चलेगा, कोई आवाज आई और गई।

वह युवक महीने भर में सचेत हो आया। तीन महीने बीतते-बीतते तो हमला करना गुरु को मुश्किल हो गया। कैसी भी हालत में हमला हो, रक्षा हो जाती। उसके गुरु ने कहा, बेटे, तू एक परीक्षा से पार हो गया। लेकिन स्मरण रख, कल से अब रात में भी हमले शुरू हो जाएंगे। सोए हुए होते भी हमले होंगे। रात में समझ से रहना। दो-चार-दस दफा, जानते हो कि मैं बूढा आदमी हूं, नींद मुझे ज्यादा आती भी नहीं, दो-चार-दस दफा मैं रात में चोट करूंगा। तैयार रहना।

लड़का घबड़ाया, कि यह तो ठीक भी था कि जागने में कोई हमला करे तो सुरक्षा हो जाए, नींद में क्या होगा? लेकिन उसे पता नहीं था, चेतना को जितने खतरे में डाला जाए वह उतनी ही जागती है, चेतना जितने खतरे से गुजरती है उतनी सजग हो जाती है। यह उसे आने वाले तीन महीनों में पता चला। नींद में भी उसे धीरे-धीरे खयाल रहने लगा हमले का।

नींद भी थी, भीतर एक सरकता हुआ स्वर भी था कि हमला हो सकता है। तीन महीने पूरे होते-होते नींद में भी हाथ उठने लगा और रक्षा होने लगी। सोया रहता, हमला होता, हाथ उठ जाता, तलवार रुक जाती। तीन महीने बाद उसके गुरु ने कहा, दूसरी परीक्षा भी तू पार कर गया। अब, अब असली तलवार की बारी है। अभी तक लकड़ी की तलवार थी।

लड़के ने कहा, अब मैं राजी हूं, अब कैसी भी तलवार हो। क्योंकि सवाल लकड़ी और असली तलवार का नहीं है। अब मैं समझ गया, सवाल तो मेरे जागे हुए होने का है। लेकिन उसी दिन उसने सोचा कि यह गुरु कल से असली तलवार का प्रयोग शुरू करेगा, बड़े खतरे का खेल है, ढाल हमेशा साथ रखनी है, असली तलवार को झेलना है, रोकना है, खयाल उसे आया कि कल से यह खेल शुरू होगा, छह महीने से मुझे यह परेशान किए हुए है, निश्चित ही कोई चीज जाग गई है भीतर जिसका मुझे कोई पता नहीं था कभी, लेकिन यह बूढ़ा इतना मुझे जगाने की कोशिश करता है, यह खुद भी जागा हुआ है या नहीं? आज मैं भी तो इस पर हमला करके देखूं? यह भी जागा हुआ है या नहीं?

सुबह का वक्त था, एक वृक्ष के नीचे उसका बूढ़ा गुरु कोई किताब बैठ कर पढ़ता था, उसकी सत्तर साल की उम्र थी। यह दूर काफी फासले पर दहलान में बैठा हुआ यह खयाल करता था कि आज मैं भी तो हमला करके देखूं? उधर से गुरु चिल्लाया, ठहर! ठहर! ऐसा मत कर देना। मैं बूढ़ा आदमी हूं, ऐसा मत कर देना। यह तो घबड़ाया आया, इसने कहा, मैंने कुछ किया नहीं, सिर्फ सोचा है। उसके गुरु ने कहा, थोड़े दिन ठहर जा, जब थोड़ी जागरूकता और बढ़ेगी तो दूसरे के भीतर सरकते विचार की प्रतिध्वनि भी, प्रतिध्वनि भी दिखाई पड़नी शुरू हो जाती है। उसकी तरंगें भी बोध को जगाती हैं। उसकी तरंगें भी खयाल को ले आती हैं। और जिस दिन तुझे वह भी हो जाएगा उस दिन मैं कहूंगा, तेरा काम पूरा हो गया, अब तू जा।

जागरूकता का ऐसा अर्थ है। चेतना सोई-सोई न हो, निरंतर सजग हो। निरंतर एक अवेयरनेस, एक होश चित्त को जगाए रखे। हम तो सोए-सोए हैं। चलते हैं सोए-सोए, खाते हैं सोए-सोए। रास्ते पर देखें, एक किनारे खड़े होकर, कोई किसी को देखता नहीं, फुर्सत किसको है। रास्ते के किनारे कभी आधा घंटे खड़े हो जाएं। रास्ते पर चलते लोगों को गौर से देखें, आपको दिखाई पड़ जाएगा, वे बिलकुल सोए हुए चले जा रहे हैं। कोई अपनी नींद में बड़बड़ाता चला जा रहा है, कोई अपनी नींद में बात करता चला जा रहा है, कोई हाथ के इशारे कर रहा है, किसी से चर्चा कर रहा है, जो मौजूद नहीं है आदमी, उससे चर्चा कर रहा है। यह आदमी जागा हुआ हो सकता है या सपने में है? लोगों को जरा गौर से देखें, उनके चेहरों को देखें, तो पता चल जाएगा कि वे एक नींद में चले जा रहे हैं। एक बेहोशी में सब कुछ हो रहा है। सारी दुनिया बेहोशी में चल रही है। इसलिए तो इतनी टकराहट होती है, इतनी दुर्घटनाएं होती हैं। इतना एक-दूसरे से मुठभेड़ हो जाती है। कोई जागा हुआ नहीं है। फिर थोड़ा अपने को भी देखें कि मैं जाग कर चलता हूं क्या? तो आप हैरान हो जाएंगे!

अभी यहां से लौटते वक्त जरा खयाल करें, इस दरवाजे से बाहर के दरवाजे तक भी जाग कर जा सकते हैं क्या? क्या पूरी तरह होश से भरे हुए एक-एक कदम को जानते हुए, एक-एक श्वास को अनुभव करते हुए बाहर के दरवाजे तक जा सकते हैं? न जा पाएंगे, बीच में ही यह बात भूल जाएगी, दूसरे सब खयाल पकड़ लेंगे। और तब आप जान जाना कि दो क्षण भी जागना कठिन है, आर्डुअस है। और सबसे बड़ा मनुष्य के ऊपर बंधन यह मर्ूच्छा है, जो उसे पकड़े हुए है सब तरफ से। वह सोया हुआ है। लेकिन अगर मैं आपसे कहूं कि आप सोए हुए हैं, तो आप नाराज हो जाएंगे। क्योंकि कोई आदमी यह सुनना पसंद नहीं करता कि मैं सोया हुआ हूं।

लेकिन स्मरण रखिए, अगर आप भ्रम से अपने को जागा हुआ समझ रहे हैं तो कभी जाग नहीं सकेंगे। इसलिए पहले अपनी नींद को स्वीकार कर लेना, समझ लेना जरूरी है।
एक जागरूकता ही विकसित हो जाए, तो आत्मा के साक्षात में ले जाती है। और जागरूकता ही पूर्ण हो जाए, तो समग्र जीवन परमात्मा में परिवर्तित हो जाता है। सोए हुए आदमी के लिए संसार है, जागे हुए आदमी के लिए कोई संसार नहीं। सोया हुआ होना ही संसार है। जागा हुआ होना ही मोक्ष है, मुक्ति है।

ये थोड़ी से बातें मैंने कहीं। इसलिए नहीं कि मैंने जो कहा है उसे आप मान लेना। क्योंकि अगर आपने मेरी बात मानी, तो आपने परतंत्रता की पहली कड़ी और खींच कर बांध ली। मैं कौन हूं, जिसकी बात मानने की कोई जरूरत है? मैंने जो कहा, अगर आपने उसका अनुकरण किया, तो आप कभी स्वतंत्र नहीं हो सकेंगे। मैं कौन हूं, जिसकी बात का अनुकरण किया जाए? फिर मैंने किसलिए कहीं ये सारी बातें? इसलिए नहीं कि आप उन पर विश्वास कर लेंगे, बल्कि इसलिए कि आप बहुत निष्पक्ष, तटस्थता से उनके प्रति जागेंगे और विचार करेंगे। उन्हें दूर रख लेंगे, सामने रख लेंगे; मानने या न मानने का कोई सवाल नहीं है। दूर सामने रख कर उनको ऑब्जर्व कर सकेंगे, निरीक्षण कर सकेंगे। और बंधी हुई स्मृति के उत्तर को मत मान लेना, वह विचार नहीं है। नहीं तो भीतर से कोई कहेगा, अरे, यह बात तो शास्त्र में लिखी नहीं, यह ठीक नहीं हो सकती। यह स्मृति के उत्तर को मत मान लेना। या स्मृति कहे कि हां, यह बात बिलकुल ठीक है, फलां-फलां संत ने यही बात कही है। गीता में भी यही लिखा है। इसको मत मान लेना। यह स्मृति है, इसके उत्तर यांत्रिक हैं, इसको कहना कि तुम चुप रहो। मुझे सीधी बात को देखने दो, तुम बीच में मत आओ। मैं सीधा इस सत्य के प्रति जागना चाहता हूं, जो कहा गया है, मैं सीधा उसे देख लेना चाहता हूं।

जाग कर अगर उसको देखने की कोशिश की, तो वह चाहे सही सिद्ध हो चाहे गलत, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन उसे जाग कर देखने की प्रक्रिया में आपके जीवन में क्रांति होनी शुरू हो जाती है। वह जागने की प्रक्रिया, उसके प्रति मैंने जो कहा है, उसके प्रति

जागने की प्रक्रिया आपके भीतर एक क्रांति को ले आती है, एक परिवर्तन ले आती है। जीवन एक नये आयाम में गतिमान हो जाता है।
परमात्मा करे, सोए हुए होने से वह जागरूकता की तरफ ले जाए। परमात्मा करे, भीतर हमें वह जगाए, जहां हम सोए हुए हैं। और हमारी कड़ियां और बंधन हमें दिखाए, जो हमने खुद बांध लिए हैं, ताकि हम उन्हें खोल सकें और मुक्त हो सकें। और चिल्लाते न रहें, स्वतंत्रता, स्वतंत्रता। और कड़ियों को, जंजीरों को, सींकचों को पकड़े भी न रहें। ये दोनों बातें विरोधी हैं। इनको देख लेना, समझ लेना है। इसके अतिरिक्त मेरा और कोई निवेदन नहीं है।

मेरी बातों को इन तीन दिनों में इतने प्रेम और शांति से सुना है, इतने ही शांति और प्रेम से इन्हें सोचना भी। अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को मैं प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

अंतर की खोज

आठवां प्रवचन

मेरे प्रिय आत्मन्!

सत्य की यात्रा पर मनुष्य का सीखा हुआ ज्ञान ही बाधा बन जाता है, यह पहले दिन की चर्चा में मैंने कहा। सीखा हुआ ज्ञान दो कौड़ी का भी नहीं। और जो सीखे हुए, पढ़े हुए ज्ञान के आधार पर सोचता हो कि जीवन के प्रश्न को हल कर लेगा, वह नासमझ ही नहीं, पागल है। जीवन के ज्ञान को तो स्वयं ही पाना होता है किसी और से उसे नहीं सीखा जा सकता।
दूसरे दिन की चर्चा में मैंने आपसे कहा कि जिसका अहंकार जितना प्रबल है वह स्वयं के और परमात्मा के बीच उतनी ही बड़ी दीवाल खड़ी कर लेता है। मैं हूं, यही भाव, जो सबमें छिपा है उससे नहीं मिलने देता। अहंकार की बूंद जब परमात्मा के सागर में स्वयं को खोने को तैयार हो जाती है तभी उसे जाना जा सकता है जो सत्य है और सबमें है। यह मैंने दूसरे दिन आपसे कहा।

और आज सुबह तीसरी बात मैंने कही कि हम सोए हुए हैं, मर्ूच्छित हैं। और जब तक हम सोए हुए हैं तब तक हमें सत्य का कोई अनुभव नहीं हो सकेगा।

ये तीन बातें मैंने कहीं। ज्ञान को, सीखे हुए ज्ञान को छोड़ना होगा। अहंकार को, कल्पित अहंकार को छोड़ना होगा। और निद्रा को, वास्तविक निद्रा को छोड़ना होगा। इन तीन सीढ़ियों को जो पार करता है, वह परमात्मा के मंदिर में प्रविष्ट हो जाता है।

इस संबंध में बहुत से प्रश्न आए हुए हैं। उन प्रश्नों में से कुछ पर मैं अभी चर्चा करूंगा। बहुत से प्रश्न समान हैं, इसलिए पांच-छह प्रश्न जो सभी ने पूछे हैं करीब-करीब थोड़े भाषा के भेद से, उन पर ही बात करना उचित है।

सबसे पहले एक मित्र ने पूछा है: धार्मिक व्यक्तित्व क्या है? रिलीजस माइंड क्या है? किस व्यक्ति को आप धार्मिक कह रहे हैं?

शायद इसलिए यह प्रश्न उनके मन में पैदा हुआ क्योंकि मैंने कहा: मंदिर जो जाता है उतने से ही कोई धार्मिक नहीं हो जाता। शास्त्र जो पढ़ता है उतने से ही कोई धार्मिक नहीं हो जाता। संन्यास भी कोई ले ले, वस्त्र कोई बदल ले, घर-द्वार छोड़ दे, उतने से भी कोई धार्मिक नहीं हो जाता है।

धार्मिक होना फिर क्या है?

इसलिए ठीक ही पूछा है कि किस मन को, किस चित्त को मैं धार्मिक कहता हूं? कौन है रिलीजस माइंड?

एक छोटी से कहानी से समझाऊं।

वर्षा निकट आ गई थी और आकाश में बादल घिरने लगे थे। आज ही कल में गर्मी में तपी हुई धरती पर वर्षा आ जाएगी। दो भिखारी, दो भिक्षु अपने झोपड़े पर कई दिनों की यात्रा के बाद वापस लौटते थे। एक गांव की झील के पास उनका छोटा सा झोपड़ा था। हर वर्षा में वे वापस लौट आते थे, फिर आठ महीने के लिए घूमते-फिरते थे। वर्षा करीब थी, वे भागे हुए अपने झोपड़े के करीब पहुंचे। झोपड़े के पास जाते ही देखा: आधा झोपड़ा हवाएं उड़ा कर ले गई हैं, आधा ही झोपड़ा बचा है। छप्पर आधा है, आधा छप्पर कहीं उड़ गया। आगे जो भिखारी था, युवा था, पीछे उसका गुरु था, वृद्ध। उस युवा भिक्षु ने अत्यंत दुख से अपने बूढ़े गुरु को कहा, ऐसी ही बातों को देख कर तो ईश्वर पर अविश्वास पैदा हो जाता है। गांव में महल खड़े हैं पापियों के, उनके महलों में कुछ भी विकृति न आई, कोई महल न गिरा, और हम गरीबों के झोपड़े पर, हमारे गरीबों के झोपड़े के आधे छप्पर को भी उड़ा दिया। ऐसी ही बातों से तो मन क्रोध से भर जाता है, ऐसी ही बातों से तो परमात्मा के प्रति विरोध पैदा हो जाता है। हम गरीबों का झोपड़ा ही था उड़ाने को? तोड़ने को? यह वह बड़े क्रोध से कहा, लेकिन देख कर हैरान हुआ, उसके गुरु की आंखों से आंसू बहे जा रहे हैं। और वे आंसू दुख के नहीं किसी अपूर्व आनंद के हैं। और उस गुरु के हाथ जुड़े हैं आकाश की तरफ और वह गुनगुना रहा है कोई गीत। वह चुपचाप खड़े होकर सुनने लगा। उस बूढ़े ने कहा, हे परमात्मा! ऐसी ही बातों से तुझ पर विश्वास आ जाता है, हवाओं का क्या भरोसा, पूरा झोपड़ा भी उड़ा कर ले जा सकती थीं। आधा रोका है, तो तूने ही रोका होगा। हवाओं का

क्या भरोसा, पूरा झोपड़ा भी जा सकता था। आधा रोका है, तो तूने ही रोका होगा। धन्यवाद! हम दरिद्रों का भी तुझे खयाल है।

फिर उस रात वे दोनों उस झोपड़े में सोए। जिस युवक भिक्षु ने क्रोध प्रकट किया था वह रात भर नहीं सो सका। रात भर उसके मन में बड़ी बेचैनी, बड़ी अशांति, बार-बार यही खयाल कि गरीब के झोपड़े को तोड़ने की बात क्या उचित है? हमने क्या बुरा किया? दिन-रात जिसकी प्रार्थना करते हैं वही हमारा साथी नहीं? तो हम और क्या आशा करें प्रार्थनाओं से? और क्या आशा करें? रात भर बेचैन वह करवट बदलता रहा। क्योंकि सांझ दुख में सोया था तो रात भर दुख सरकता रहा। सांझ जिस भाव को लेकर हम सोते हैं पूरी नींद उसी भाव में परिवर्तित हो जाती है। लेकिन बूढ़ा रात भर सोया बड़े आनंद से। सुबह उठ कर उसने एक गीत लिखा, और उस गीत में फिर परमात्मा को धन्यवाद दिया और कहा, हे पिता! हे परमपिता! हे प्रभु! हमें क्या पता था, आधा झोपड़े का भी आनंद होता है? कल रात हम सोए भी रहे आधे छप्पर में, और जब भी आंख खुली, तो तेरे चांद, तेरे तारों को भी देखा। बड़ी खुशी है, अब वर्षा आएगी; हम आधे में सोएंगे भी, आधे में वर्षा का गीत, टप-टप बूंदें, वे भी सुनेंगे। हमें क्या पता था, अगर पहले से पता होता हम आधा झोपड़ा खुद भी तोड़ देते, तेरी हवाओं को तकलीफ भी न देते।

इस आदमी को मैं धार्मिक आदमी कहता हूं। यह रिलीजस माइंड है। यह चाहे किसी मंदिर और मस्जिद में जाता हो या न जाता हो; यह किसी शास्त्र को पूजता हो, न पूजता हो; इसके वस्त्र गेरुए रंगे हों, न रंगे हों; यह घर में हो, घर के बाहर हो, ऐसा जो चित्त है वह धार्मिक है।

धर्म कोई बाहरी क्रियाकांड नहीं, दृष्टि का परिवर्तन है। धर्म कोई बाहरी परिवर्तन नहीं, अंतस का बदल जाना है। दृष्टि का, देखने के ढंग का। इतना आसान मत समझ लेना कि हम मंदिर चले जाते हैं तो धार्मिक हो जाएंगे। इतना सस्ती बात होती तो पृथ्वी पर बहुत मंदिर हैं, बहुत मस्जिदें, बहुत चर्च, पृथ्वी धार्मिक कभी की हो गई होती। लेकिन मंदिर-मस्जिद बढ़ते गए हैं और धर्म? धर्म का कोई कहीं पता नहीं। धर्म कहीं भी नहीं है। धर्म को हमने एक बाह्य उपचार बनाया इसीलिए पृथ्वी पर धर्म पैदा नहीं हो सका। धर्म है आंतरिक चित्त की दशा। धर्म है मनःस्थिति। धर्म है एटिटयूड, धर्म है भीतर के देखने का ढंग। इसलिए कोई मंदिर में पहुंच जाए तो धार्मिक नहीं हो जाता। लेकिन जो आदमी धार्मिक है वह कहीं भी पहुंच जाए वहीं मंदिर जरूर हो जाता है। इसे मैं फिर से दोहराऊं, धार्मिक आदमी वह नहीं जो मंदिर में पहुंच जाता है, धार्मिक आदमी वह है कि जहां पहुंच जाए वहीं मंदिर हो जाए।

धार्मिकता चित्त एक दशा है। यह चित्त की दशा निरंतर जागरूक, होश से भरे रह कर जीने से पैदा होती है। न तो यह प्रार्थनाओं से पैदा होती है, न पूजाओं से, यह तो चित्त की सरलतम भावनाओं से उपलब्ध होती है।

चित्त की चाहिए सरलता, ह्यूमिलिटी। चित्त का चाहिए बिना जटिल होना, अजटिलता। चित्त की चाहिए इतनी सरलता कि वह चित्त की सरलता ही जीवन बन जाए। तो, तो व्यक्ति के जगत में उसका अवतरण होता है जिसे हम धर्म कहें। लेकिन यह कोई ऐसी बात नहीं है कि कोई आधा घंटे को धार्मिक हो जाए और साढ़े तेईस घंटे को अधार्मिक हो जाए।

एक और मित्र ने, और भी कई मित्रों ने पूछा है कि हम क्या करें, थोड़ी-बहुत देर के लिए समय निकाल सकते हैं, समय ज्यादा हमारे पास नहीं है, तो हम क्या करें--मंत्र-जाप करें, नाप जपें, पूजा करें, थोड़ा-बहुत समय दे सकते हैं उसमें हम क्या करें?

मैं निवेदन करना चाहूंगा, धर्म कोई ऐसी बात नहीं कि आप थोड़े से समय में कर लें और उससे निपट जाएं। धर्म चौबीस घंटे की साधना है। और इस बात से बहुत भ्रांति दुनिया में पैदा हुई है कि कोई सोचे कि हम थोड़ी देर को धार्मिक हो जाएं। धार्मिक होना चौबीस घंटे चलने वाली श्वासों की तरह है। ऐसा नहीं कि आप आधा घंटा श्वास ले लें, फिर साढ़े तेईस घंटा श्वास लेने की कोई जरूरत न रह जाए। धर्म एक अखंड चित्त की दशा है। खंडित नहीं। कोई कंपार्टमेंट नहीं बनाए जा सकते कि आधा घंटे को मंदिर में जाकर मैं धार्मिक हो जाऊंगा। यह असंभव है, यह बिलकुल इंपासिबल है। जो आदमी मंदिर के बाहर अधार्मिक था और मंदिर के बाहर फिर अधार्मिक हो जाएगा। आधा घंटे को मंदिर के भीतर धार्मिक हो सकता है?

चित्त एक अविच्छिन्न प्रवाह है, एक कंटीन्युटी है। कहीं ऐसा हो सकता है क्या कि गंगा काशी के घाट पर आकर पवित्र हो जाए, पहले अपवित्र रही हो? फिर काशी का घाट निकल जाए, फिर आगे अपवित्र हो जाए। सिर्फ बीच में पवित्र हो जाए? गंगा एक सातत्य, कंटीन्युटी है। अगर गंगा काशी के घाट पर पवित्र होगी तो तभी होगी जब पहले भी पवित्र हो। अगर गंगा काशी के घाट पर पवित्र हो गई, तो आगे भी पवित्र रहेगी।

मैंने सुना है, एक आदमी अपनी मृत्युशय्या पर था। अंतिम घड़ी थी उसकी। परिवार के मित्र, परिवार के लोग, पुत्र, पुत्रवधुएं, उसकी पत्नी, सब इकट्ठे थे। संध्या के करीब उसने आंख खोली, सूरज ढल गया था और अभी घर के दीये न जले थे, अंधेरा था, उसने आंख खोली और अपनी पत्नी से पूछा, मेरा बड़ा लड़का कहां है? उसकी पत्नी को बड़ा आनंद हुआ। जीवन में उसने कभी किसी को नहीं पूछा था। जीवन में पैसा और पैसा और पैसा। प्रेम की कभी कोई बात उससे न उठी थी। शायद मृत्यु के क्षण में प्रेम का स्मरण आया है। पत्नी बहुत प्रसन्न थी, उसने कहा, निश्चिंत रहें, आपका बड़ा लड़का बगल में बैठा हुआ है, अंधेरे में आपको दिखता नहीं, बड़ा लड़का मौजूद है, आप निश्चिंत आराम से लेटे रहें। लेकिन उसने पूछा, और उससे छोटा लड़का? पत्नी तो बहुत अनुगृहीत हो आई। कभी उसने पूछा नहीं था। जो पैसे के पीछे है, जो महत्वाकांक्षी है उसके जीवन में प्रेम की कभी भी कोई सुगंध नहीं होती, हो भी नहीं सकती। उसने कभी न पूछा था, कौन कहां है! उसे फुर्सत कहां थी! पत्नी ने कहा, छोटा लड़का भी मौजूद है। उसने पूछा, और उससे छोटा?

पांच उसके लड़के थे। अंतिम पांचवां? उसकी पत्नी ने कहा, वह भी आपके पैरों के पास बैठा है। सब मौजूद हैं, आप निश्चिंत सो रहें। वह आदमी उठ कर बैठ गया, उसने कहा, इसका क्या मतलब, फिर दुकान पर कौन बैठा हुआ है?

वह पांच लड़कों की फिकर में नहीं था। पत्नी भूल में थी। जीवन भर जिसके मन में पैसा रहा हो, अंतिम क्षण में प्रेम आ सकता है? पत्नी गलत थी, भूल हो गई थी। वह इस चिंता में था कि दुकान पर कोई मौजूद है या कि सब यहीं बैठे हुए हैं? यह मरते क्षण में भी उसके चित्त में वही धारा चल रही थी जो जीवन भर चली थी। यह स्वाभाविक है। यह बिलकुल स्वाभाविक है। जीवन भर जो चला है वही तो चलेगा। तो इस भूल में कोई न रहे कि मैं थोड़ी देर मंदिर हो आता हूं तो धार्मिक हो जाऊंगा। जिसे धार्मिक होना है उसे अपने चित्त की पूरी धारा को बदलने के लिए तैयार होना होगा। ये धोखा देने के ढंग हैं, ये सब सेल्फ-डिसेप्शन हैं कि हम मंदिर हो आते हैं इसलिए धार्मिक हो गए, अपने को धोखा देने की तरकीबों से यह ज्यादा नहीं है। कि हम चंदन लगाते हैं तो धार्मिक हो गए। कि हम यज्ञोपवीत पहनते हैं तो हम धार्मिक हो गए। हद्द बेवकूफियां हैं। इस तरह कोई धार्मिक हो सकता तो हमने दुनिया को कभी का धार्मिक बना लिया होता। इस तरह कोई न कभी धार्मिक हुआ है और न हो सकता है। लेकिन जो अपने को धार्मिक होने का धोखा देना चाहता हो, इन तरकीबों से बड़ी आसानी से धोखा पैदा हो जाता है।

धार्मिक होना एक अखंड क्रांति है। पूरे जीवन को, चित्त को, टोटल माइंड को, समग्र मन को बदलना होगा। और उस बदलने के सूत्र समझने होंगे। एक-एक क्षण, एक-एक घड़ी सजग होकर मन को बदलने में संलग्न होना होगा। और इसके लिए अलग से समय की कोई भी जरूरत नहीं है।

आप जो भी करते हैं--उठते हैं, बैठते हैं, भोजन करते हैं, नौकरी करते हैं, रास्ते पर चलते हैं, रात सोते हैं, आप जो भी करते हैं, आपका जो भी व्यवहार है, आपका जो भी संबंध है, सारा जीवन एक इंटररिलेशनशिप, एक अंतर्संबंध है। चौबीस घंटे हम कुछ न कुछ कर रहे हैं--धर्म के लिए अलग से समय खोजने की जरूरत नहीं है। यह जो भी आप कर रहे हैं, अगर शांत, जागरूक चित्त से करने लगें तो आपके जीवन में धर्म का आगमन हो जाएगा। आप जो भी कर रहे हैं, अगर शांत, जागरूक करने लगें तो।

कैसे शांति से यह हो सकेगा? कैसे यह हो सकेगा?

यह भी बहुत मित्रों ने पूछा है: कैसे हम शांत हो जाएं?

तो कैसे मनुष्य का चित्त शांत हो सकता है?

मनुष्य के चित्त की अशांति क्या है इस समझ लें, तो शांत होना कठिन नहीं है। मनुष्य के चित्त की क्या है अशांति? कौन कर रहा है अशांत? कोई और कर रहा आपको या कि आप स्वयं? आप स्वयं ही चौबीस घंटे चित्त को अशांत करने की व्यवस्था कर रहे हैं और फिर पूछते-फिरते हैं कि शांत कैसे हो जाऊं? चौबीस घंटे आप ही कर रहे हैं योजना। जीवन को देखने का सारा ढंग गलत है इसलिए अशांति पैदा होती है। जीवन को देखने का हमारा ढंग

क्या है? अगर आपका आधा छप्पर उड़ गया हो, तो क्या है आपके जीवन को देखने का ढंग? उड़े हुए छप्पर के लिए रोएगा या बचे हुए छप्पर के लिए धन्यवाद देंगे? उड़े हुए छप्पर के लिए रोएंगे, तो अशांत हो जाएंगे। बचे हुए छप्पर के लिए धन्यवाद देंगे, तो अपूर्व शांत उतर आएगी। कैसे हम जीवन को देखते हैं?

बुद्ध का एक भिक्षु था, पूर्ण। उसकी शिक्षा पूरी हो गई थी। उसने बुद्ध के पास जाकर आज्ञा मांगी कि अब मैं जाऊं और आपके अमृत संदेश को गांव-गांव पहुंचा दूं।

बुद्ध ने कहा, तू कहां जाना चाहेगा? किस तरफ?

उस पूर्ण ने कहा, बिहार में एक छोटा सा इलाका था, सूखा उसका नाम था। उस पूर्ण ने कहा कि अब तक सूखा की तरफ कोई भी भिक्षु नहीं गया, मैं सूखा जाना चाहता हूं।

बुद्ध ने कहा, छोड़ दे यह इरादा। अब तक कोई नहीं गया, इसी से तुझे सोचना था कि कोई बात जरूर होगी। उस इलाके के लोग बहुत अशिष्ट, बहुत असभ्य, अत्यंत कटु व्यवहार वाले लोग हैं, बहुत हिंसक, बहुत क्रोधी, इसीलिए कोई वहां नहीं गया।

पूर्ण ने कहा, तब तो मुझे वहां जाना ही पड़ेगा, उनके लिए ही फिर मेरी जरूरत है।

अगर दीये से कोई कहे कि उस तरफ मत जा जहां अंधेरा है, तो दीया क्या कहेगा? मैं न जाऊं उस तरफ जहां अंधेरा है? तो दीया कहेगा, फिर मेरी वहां क्या जरूरत जहां सूरज है? मैं वहीं जाऊंगा जहां अंधेरा है।

मुझे आज्ञा दें कि मैं सूखा जाऊं?

बुद्ध ने कहा, मैं आज्ञा तुझे एक ही शर्त पर दे सकता हूं कि तू मेरे तीन प्रश्नों के उत्तर दे दे।

पूर्ण ने कहा, आप पूछें?

बुद्ध ने कहा, वहां तू जाएगा, लोग गालियां देंगे, अपमान करेंगे, कटु वचन कहेंगे, तेरे मन को क्या होगा?

हंसने लगा वह पूर्ण, उसने सिर रख दिया बुद्ध के चरणों पर और कहा, आप पूछते हैं इतने दिन मुझे जानने के बाद क्या होगा मेरे मन को? यही होगा, कितने भले लोग हैं, सिर्फ गालियां देते हैं, अपमान करते हैं, मारते नहीं, मार भी सकते थे।

बुद्ध ने कहा, पूर्ण यह भी हो सकता है कि कोई तुझे वहां मारे भी, फिर क्या होगा?

पूर्ण ने कहा, जानते हैं फिर भी पूछते हैं आप? होगा यही, कितने भले लोग हैं, सिर्फ मारते हैं, मार ही नहीं डालते, मार भी डाल सकते थे।

बुद्ध ने कहा, अंतिम बात और पूछ लूं, अगर उन्होंने मार ही डाला, तो मरते क्षणों में तुझे क्या होगा?

सोच सकते हैं, क्या कहा होगा पूर्ण ने? आता है खयाल कोई? ठीक था कि गाली देते थे।

तो पूर्ण ने कहा, मार डालेंगे, मारते नहीं, मार डालते नहीं, यह बहुत, यही शुभ है।

लेकिन बुद्ध ने कहा, मार ही रहे हैं, तेरी हत्या कर रहे हैं, क्या होगा तेरे मन को?

पूर्ण ने कहा, जानते हैं भलीभांति आप, फिर भी पूछते हैं? यही होगा, कितने भले लोग हैं, उस जीवन से छुटकारा दिलाए देते, जिसमें कोई भूल-चूक हो सकती थी।

ऐसी दृष्टि का फल है शांति। इससे उलटी दृष्टि का फल है अशांति।

एक आदमी फूलों कि बगिया में जाए, गुलाब के फूल के पौधे के पास खड़ा हो--दो रास्ते हैं, या तो गुलाब के उस पौधे में खिले हुए एक फूल को देख ले। एक फूल बहुत कम है, पत्ते बहुत हैं, कांटे बहुत हैं। यह भी हो सकता है एक फूल न देखे, कांटों की गिनती करे और कहे कि इतने कांटे हैं इस पौधे में? कैसी बुरी है यह दुनिया? इतने कांटे हैं? मुश्किल से खिलता है एक फूल और कांटे ही कांटे, हजार-हजार कांटे हैं, कैसी है यह दुनिया? कैसी दुखपूर्ण? वह आदमी अशांत हो जाए, नहीं तो क्या होगा? कोई दूसरा आदमी यह भी देख सकता है: कैसी अदभुत है यह दुनिया, इतने कांटे हैं जहां वहां भी एक फूल खिल पाता है! इतने कांटे हैं जहां, इतने कांटों के बीच भी एक फूल खिलता है, कितनी अदभुत है यह दुनिया! कितनी रहस्यपूर्ण! कितने अनुग्रह के योग्य! कितना ग्रेटिटयूड! कितना धन्यवाद करें किसी का!

एक आदमी देखने जाए जीवन को, तो जीवन में जो-जो अंधेरा है उसे गिन सकता है। जीवन में जो-जो बुरा है उसकी गणना कर सकता है। जीवन में जो-जो दुख है उसकी संख्या का आंकड़ा बांध सकता है। और तब अगर अशांत हो जाए, तो जुम्मा किसका होगा? और फिर रोए और चिल्लाए और फिर ढूंढे गुरुओं को और पूछे कि मुझे शांति का रास्ता बताओ। और गुरु भी ऐसे नासमझ कि वे कहें कि राम-राम जप, तो सब ठीक हो जाएगा। जैसे राम-राम न जपने से यह अशांति पैदा हुई हो। यह अशांति पैदा की है इसके जीवन की दृष्टि ने। इसके जीवन की दृष्टि ही भ्रांत और गलत है। इसने गलत को ही चुनने का उपक्रम साध लिया है। इसने व्यर्थ को ही देखने की चेष्टा की है। इसने अंधकार के साथ ही मोह बांध लिया है। इसे प्रकाश दिखाई नहीं पड़ता। इसे फूल दिखाई नहीं पड़ते। इसे प्रेम दिखाई नहीं पड़ता। इसे तो जो भी दिखाई पड़ता है वही रुग्ण कर देता है इसे और, और अशांत कर देता है। कैसे धार्मिक चित्त को साधेंगे?

शांति में खिलता है धार्मिक चित्त। और शांति? शांति है जीवन का सम्यक दृष्टिकोण, राइट एटिटयूड। रोज-रोज चौबीस घंटे में, रोज-रोज प्रतिक्षण ठीक दृष्टि को, सम्यक दृष्टि को, उस सम्यक दर्शन को, वह ठीक-ठीक देखने को, निरंतर-निरंतर प्रतिक्षण साधना है। प्रतिक्षण, एक क्षण भी छुट्टी देने की सुविधा नहीं है। धार्मिक व्यक्ति को कोई छुट्टी नहीं, कोई हॉलिडे नहीं, कि आज छुट्टी दे दें, फिर कल साध लेंगे। एक क्षण भी छुट्टी का अवकाश नहीं है। एक-एक क्षण देखते, जागते, समझते, धीरे-धीरे वह दृष्टि जो भीतर छिपी है प्रकट होने लगती है। और तब, तब सब बदल जाता है, तब सब बदल जाता है। तब नहीं दिखाई पड़ते कांटे, बल्कि जब दृष्टि पूरी उपलब्ध होती है तो हर कांटा फूल में परिवर्तित हो जाता है। और हर अंधकार एक दीया बन जाता है। और हर बुरी घटना में किसी शुभ संकेत की सूचना मिल जाती है। फिर धीरे-धीरे तो सब कुरूपता विलीन हो जाती है, रह जाता है सिर्फ सौंदर्य। सिर्फ सौंदर्य रह जाता है, नहीं रह जाता जीवन में कुछ कुरूप। नहीं रह जाता जीवन में कुछ विकृत, सभी हो जाता है सभी स्वस्थ और संस्कृत। लेकिन

वह दृष्टि पर निर्भर है। वह दृष्टि पर ही निर्भर है कि हम कैसे देखते हैं। तो बहुत जल्दी इस बात की न करें कि आप जल्दी से वस्त्र बदल लें, क्रिया बदल लें, उपवास कर लें। इस सबसे नहीं, खोजें अपनी दृष्टि को कि कहां-कहां घाव हैं मेरे? किन-किन घावों से में पीड़ित और परेशान हूं? और तब आपको दिखाई पड़ेगा, आपने ही अपनी छाती में छुरी मारी है रोज-रोज। ये घाव किसी और नहीं किए। जब दिख जाए कि मेरे ही हाथ छुरी मारते हैं, तो छुरी फेंक देना कठिन थोड़े ही है। या फिर छुरी से बहुत मोह हो और घाव में बहुत आनंद हो, तो आपकी मर्जी। फिर तो कोई सवाल नहीं है।
लेकिन मनुष्य स्वयं ही है आत्महंता, कोई और नहीं। और जब तक इस सत्य की स्पष्ट प्रतीति न हो तब तक आप स्वयं को बदल भी नहीं सकते।

एक और मित्र पूछते हैं कि क्या सेवा करना ही पर्याप्त नहीं है? सेवा करें तो क्या परमात्मा की उपलब्धि नहीं हो जाएगी? क्यों पड़ें इन सारी बातों में? उन्होंने पूछा है: सेवा करें गरीबों की, दीनों की, दुखियों की, तो उसी सर्विस से, उसी सेवा से क्या नहीं मिल जाएगा प्रभु?

नहीं; भूल कर भी कभी नहीं मिलेगा। धर्म से तो सेवा उत्पन्न हो जा सकती है, लेकिन सेवा से धर्म उत्पन्न नहीं होता है। धार्मिक व्यक्ति का जीवन तो सेवक का जीवन होता ही है, लेकिन सेवक का जीवन धार्मिक आदमी का जीवन नहीं होता है। इस तरह उलटा नहीं होता है। दीया जल जाए तो अंधेरा निकल ही जाता है, लेकिन कोई कहे कि हम अंधेरे को निकालने की कोशिश करें तो दीया जल जाएगा? तो फिर दीया नहीं जलता है। अंधेरे को मर जाएं कोशिश कर-कर के निकाल कर, अंधेरा नहीं निकलने वाला और दीया तो जलने वाला नहीं। हालांकि दीया जलता है तो अंधेरा जरूर निकल जाता है, लेकिन अंधेरे के निकलने से दीया नहीं जलता।
चित्त में धर्म का जन्म होता है तो सेवा जरूर आ जाती है। लेकिन सेवा से कोई धर्म नहीं आता। बल्कि बिना धर्म के जो सेवा है वह भी अंधकार को ही तृप्त करती है, उसका ही साधन बनती है, वह भी कहती है, मैं हूं सेवक! मैंने की है सेवा! मैं हूं बड़ा सेवक! मुझसे बड़ा सेवक कोई भी नहीं! और ऐसा सेवा करने वाला वर्ग, जितनी मिस्चिफ, जितने उपद्रव पैदा करवाता है उसका कोई हिसाब नहीं।
मैंने सुना है, एक चर्च का एक पादरी एक स्कूल के बच्चों को सेवा का धर्म सिखाने गया था। छोटे-छोटे बच्चे थे, उन्हें उस पादरी ने समझाया कि सेवा जरूरी करनी चाहिए, दिन में एक सेवा कम से कम जरूरी है। कोई भी सेवा का कृत्य, कोई भी। कोई भी सेवा का कृत्य अगर तुमने दिन में कर लिया एक, तो हो गई प्रार्थना। जब मैं अगली बार आऊं सात दिन बाद, तो मैं पूछूंगा कि तुमने सात दिन में कुछ सेवा के कृत्य किए।
सात दिन बाद वह वापस लौटा, उसने उन बच्चों से पूछा कि मेरे बेटो, तुमने कुछ सेवा के काम किए? तीन बच्चों ने हाथ हिलाए, वह बहुत प्रसन्न हुआ कि कोई फिकर नहीं, तीस

में से केवल तीन ने किया, लेकिन किया तो। बताओ तुम खड़े होकर, ताकि बाकी बच्चे भी जान लें कि तुमने क्या किया? तुम्हें आनंद मिला सेवा करने से?

उन तीनों ने कहा, बहुत आनंद मिला, बहुत आनंद मिला।

पूछा, क्या किया तुमने? कौनसी सेवा की? पहले लड़के को पूछा।

उसने कहा, मैंने, जैसा आपने समझाया था: कोई डुबता आदमी हो तो बचाना चाहिए, कोई बूढ़ा आदमी रास्ता पार करता हो तो सहारा देना चाहिए। मैंने एक बूढ़ी औरत को रास्ता पार करवाया है।

उसने धन्यवाद दिया, छोटा सा बच्चा था कि ठीक, बहुत ठीक। दूसरे बच्चे से पूछा, तुमने क्या किया?

उसने कहा, मैंने भी एक बूढ़ी औरत को रास्ता पार करवाया। थोड़ी हैरानी हुई उसे, लेकिन सोचा, बहुत बूढ़े होते हैं, कोई कम तो नहीं, इसने भी किया होगा। तीसरे से पूछा, तूने क्या किया?

उसने कहा, मैंने भी एक बूढ़ी औरत को रास्ता पार करवाया।

उसने कहा, तुम तीनों को तीन बूढ़ी स्त्रियां मिल गईं रास्ता पार करवाने को?

वे तीनों बोले, तीन कहां, एक ही थी, हम तीनों ने उसी को पार करवाया है।

वह बहुत हैरान हुआ। उसने कहा, क्या एक बूढ़ी औरत को पार करवाने में तीन की जरूरत पड़ी?

उन्होंने कहा, वह पार होना ही नहीं चाहती थी, बामुश्किल हम पार करवा पाए। लेकिन सेवा करनी जरूरी थी, इसलिए हमने सेवा की। वह तो बहुत चिल्लाती थी कि मुझको उस तरफ नहीं जाना।

आज तक पृथ्वी पर ये सेवा करने वाले ऐसे ही उपद्रव करते रहे। क्योंकि ये सोचते हैं कि हमें तो सेवा करनी है, क्योंकि सेवा करना धर्म है। इसकी फिकर ही भूल जाते हैं कि क्या कर रहे हैं ये सेवा? कौनसी सेवा हो रही है?

जो सेवा जान कर की जाती है वह खतरनाक हो जाती है। सेवा निकलनी चाहिए सहज। सेवक सहज नहीं होता, बहुत सेल्फ-कांशस होता है। उसे बहुत अहसास होता है मैं सेवा कर रहा हूं!

नहीं, सेवा होनी चाहिए सहज, करने वाले को उसका पता नहीं चलना चाहिए। अगर करने वाले को पता चल गया, तो सब सेवा गलत हो गई। अगर यह पता चल गया कि मैं सेवा कर रहा हूं, बात व्यर्थ हो गई, कोई मूल्य न रहा उस सेवा का। लेकिन ऐसी सेवा तो तभी पैदा हो सकती है जब पता न चले उसका। जब चित्त अहंकार से मुक्त होता और धर्म का जन्म हो जाता है, तब सारा जीवन, श्वास-श्वास सेवा बन जाती है। लेकिन उस सेवा से कभी भी यह बोध नहीं होता कि मैं सेवक हूं, मैं सेवा कर रहा हूं। फिर वह सेवा जीवन हो जाती है। वैसी सेवा तो धर्म है, लेकिन यह सेवकों की सेवा धर्म नहीं है। इससे धर्म का कोई संबंध नहीं।

कुछ और मित्रों ने पूछा है कि धार्मिक होने के लिए नैतिक होना तो कम से कम जरूरी है। आदमी को नैतिक होने की कोशिश तो करनी ही चाहिए। चेष्टा तो करनी चाहिए कि आदमी नैतिक हो जाए। अच्छे काम करे, अच्छी वृत्ति रखे, अच्छा आचरण हो, सत्य बोले, अहिंसक हो, दयालु हो, अपरिग्रही हो, यह तो होना चाहिए, नैतिक तो होना चाहिए।

हजारों साल से यही कहा जाता रहा है कि नीति जो है वह धर्म की सीढ़ी है। यह बात सौ प्रतिशत झूठ है। नीति धर्म की सीढ़ी नहीं है, नीति धर्म का फूल है, सुगंध है। नीति धर्म की सीढ़ी नहीं है। नीति धर्म का परिणाम है।

धार्मिक व्यक्ति के जीवन में नैतिकता होती है। लेकिन कोई नैतिक हो जाए, तो उसके जीवन में तो नैतिकता भी नहीं होती और धर्म भी नहीं होता। क्योंकि नैतिकता होने की जो चेष्टा है, नैतिक होने का जो प्रयास है, वह इसी बात की खबर है कि आदमी अनैतिक है, और अनीति के ऊपर नीति को थोपने में संलग्न है। भीतर हिंसा है, ऊपर से अहिंसा को थोप रहा है। जिसके भीतर हिंसा नहीं है, क्या वह अहिंसक होने की चेष्टा करेगा? जिसके भीतर चोरी नहीं है, क्या वह चोरी से बचने की कोशिश करेगा? जिसके भीतर असत्य नहीं है, क्या वह सत्य को बोलने का प्रयत्न करेगा? असत्य है भीतर और सत्य को बोलने का जो प्रयत्न है वह उस असत्य को नहीं मिटा सकता, केवल ऊपर से सत्य का एक आवरण खड़ा कर देगा, भीतर असत्य रहेगा मौजूद, सप्रेस, दबा हुआ, भीतर छिपा हुआ। ऊपर हो जाएगा सत्य का आचरण और अंतस हो जाएगा एकदम असत्य। ऐसे व्यक्ति का चित्त द्वंद्व से, कांफ्लिक्ट से भर जाएगा, वह चौबीस घंटे अपने से ही लड़ेगा। दुर्जन, अनैतिक व्यक्ति लड़ता है समाज से और नैतिक व्यक्ति लड़ता है अपने से, लेकिन लड़ाई दोनों की जारी रहती है।

अनैतिक आदमी पकड़ जाता है, तो हम डाल देते हैं कारागृह में और नैतिक आदमी खुद ही अपना कारागृह बना लेता है, उसे किसी कारागृह में डालने की जरूरत नहीं होती। वह खुद अपना इनप्रिजनमेंट है। वह खुद ही चौबीस घंटे मरा जा रहा है, लड़ा जा रहा है अपने आपसे। उसकी नीति सहज नहीं है। वह स्पांटेनियस नहीं है, वह स्वस्फूर्त नहीं है; वह थोपी गई, दबाई गई, जबरदस्ती लादी गई। तब, तब ऊपर से एक रूप, भीतर से दूसरा मनुष्य खड़ा हो जाता। और यह जो भीतर छिपा है यह ज्यादा असली है। क्योंकि जो आपने बनाया है, वह आपका बनाया हुआ है और यह असली आपको उपलब्ध हुआ है, इसको आपने बनाया नहीं। यह जो हिंसक है, यह भीतर बैठा हुआ है, यह आपने बनाया नहीं, यह आपको मौजूद मिला है, और अहिंसक आप बन गए हैं। तो ऊपर से अहिंसा, भीतर हिंसा। और तब यहां तक नौबत आ सकती है कि अहिंसा की रक्षा के लिए जरूरत पड़ जाए, तो ऐसा अहिंसक आदमी तलवार उठा ले और कहे कि अहिंसा की रक्षा के लिए हत्या कर दूंगा तुम्हारी।

अहिंसा की रक्षा के लिए भी वह हिंसा कर सकता है। और फिर उसकी हिंसा नये-नये रास्ते खोजेगी निकलने के। क्योंकि भीतर जो दबा है वह मार्ग खोजेगा, वह जाएगा कहां? तो फिर

पाखंड पैदा होता है। नैतिक आदमी की जो जबरदस्ती नैतिक होने की कोशिश है वही पाखंड का जन्म है। फिर पाखंड पैदा होता है। फिर वह पीछे के रास्ते खोजता है उन्हीं बातों को करने के लिए जिनको सामने के रास्ते उसने अपने हाथ से बंद कर लिए।

लंदन में शेक्सपियर का एक नाटक चलता था। लंदन का जो आर्च-प्रीस्ट था, सबसे बड़ा पादरी था, सबसे बड़ा धर्मगुरु था, अनेक लोगों ने आकर उससे प्रशंसा की, बहुत अदभुत नाटक है, हद्द कुशलता प्रकट की है अभिनेताओं ने। उसके मन में भी लालच हुआ। आखिर पादरी या धर्मगुरु भी तो आदमी ही है, उसके मन में भी रस पैदा होता है। उसके मन में रस हुआ कि मैं भी देखूं। लेकिन वह तो निरंतर लोगों को समझाता था कि नाटक, सिनेमा, यह सब क्या है, यह सब व्यर्थ है, इसमें मत जाओ, यह सब पाप है। अब वह खुद जाना चाहे तो कैसे जाए? उसने नाटक के मैनेजर को एक पत्र लिखा, पूछा पत्र में, देखने आना चाहता हूं मैं भी, लेकिन नहीं चाहता कि कोई मुझे देखे। पीछे का कोई दरवाजा नहीं है? नाटक में पीछे का कोई दरवाजा नहीं है कि मैं चुपचाप आ जाऊं और निकल जाऊं, लोग मुझे न देख पाएं? बड़ी कृपा होगी, अगर पीछे के द्वार कोई हों और मुझे आने की अनुमति मिल जाए।

उस थिएटर के मैनेजर ने उसे वापस पत्र लिखा और कहा, ऐसा पीछे का दरवाजा है। पहले तो नहीं था, लेकिन बनाना पड़ा। सज्जनों के आने के लिए व्यवस्था करनी पड़ी। और अक्सर धर्मगुरुओं को तो आना ही पड़ता है इसलिए रास्ता बना लिया है। आप खुशी से आएं, बड़ा स्वागत है। लेकिन एक बात बता दूं, ऐसा दरवाजा तो है कि आदमियों को पता नहीं चलेगा कि आप आए हैं। लेकिन ऐसा कोई भी दरवाजा नहीं कि परमात्मा को पता न चले। फिर आपकी मर्जी। और अगर आप सोचते हों कि परमात्मा पता नहीं, है भी या नहीं, तो भी ऐसा कोई दरवाजा नहीं कि आपको खुद पता न चले, आपको तो पता चलेगा ही। वैसे आप आएं, हम स्वागत करते हैं।

नैतिक आदमी पीछे का दरवाजा खोजता है। इसलिए नैतिकता के केंद्र पर बने हुए समाज पाखंडी हो जाते हैं, हिपोक्रेट हो जाते हैं। हमारा ही समाज एक उदाहरण है। तीन हजार साल से हम नैतिकता की शिक्षा थोप रहे हैं। नैतिकता की शिक्षा चिल्ला-चिल्ला कर हम परेशान हो गए। पत्थर-पत्थर पर हमने खोद दी है सब धर्म-वाक्य। आदमी-आदमी के दिल पर हमने रामकथा थोप दी है। एक-एक बच्चे को हमने पीला दिए हैं सब पाठ नैतिकता के बिलकुल दूध के साथ। लेकिन आदमी हमारा? ऐसा आदमी जमीन पर मिलना मुश्किल है इतना अनैतिक आदमी जैसा हमने पैदा किया है। और हम सब एक नाव पर सवार हैं। कोई ऐसा नहीं है कि एक आदमी अनैतिक है। हम सब एक ही नाव पर सवार हैं। इतनी नैतिकता की शिक्षा के बाद यह फल निकला? यह हमारा समाज?

मैंने सुना है, एक स्कूल में एक दिन सुबह-सुबह ही एक इंस्पेक्टर निरीक्षण के लिए आया। भीतर घुसते ही कक्षा में उसने कहा बच्चों से, निरीक्षण करने को आया हूं, तीन प्रश्न मुझे पूछने हैं। तुम्हारी कक्षा में जो सबसे ज्यादा अग्रहणी तीन विद्यार्थी हों, वे क्रमशः खड़े हो

जाएं। एक-एक आता जाए, प्रथम नंबर का विद्यार्थी, फिर द्वितीय, फिर तृतीय और प्रश्न को हल कर दे। प्रथम जो उस कक्षा का विद्यार्थी था वह उठा, बोर्ड के पास आया, सवाल लिख दिया गया, उसने उत्तर लिख दिया, अपनी जगह जाकर बैठ गया। फिर नंबर दो का विद्यार्थी आया, उसको भी सवाल दिया गया, उसने भी सवाल हल किया, वह भी अपनी जगह बैठ गया। फिर नंबर तीन का विद्यार्थी उठा, लेकिन तीन नंबर का विद्यार्थी उठते ही थोड़ा झिझका, थोड़ा सकुचाया, पैर भी बढ़ाए तो थोड़े संकोच से। फिर बोर्ड पर आकर डरा-डरा सा चॉक लेकर लिखने को था कि तभी इंस्पेक्टर को खयाल आया कि यह लड़का तो वही है जो नंबर एक आकर सवाल हल कर गया था। उसने उसका कान पकड़ा और कहा कि बेईमान, तू धोखा देने की कोशिश कर रहा है, क्या तू वही नहीं जो पहले भी सवाल हल कर गया? तू फिर से कैसे आ गया?

उस विद्यार्थी ने कहा, माफ करिए, निश्चित ही मैं वही हूं, लेकिन आज हमारी कक्षा का जो तीसरे नंबर का विद्यार्थी है वह क्रिकेट का खेल देखने चला गया और वह मुझसे कह गया, मेरी कोई जरूरत पड़ जाए, मेरी जगह कुछ काम पड़ जाए तो कर देना। मैं उसकी जगह आया हुआ हूं।

उस इंस्पेक्टर ने कहा, हद्द हो गई, परीक्षा भी किसी की जगह कोई दे सकता है? यह तो बुरी अनैतिक बात है। और विद्यार्थी को उसने डांटा और समझाया कि ऐसी भूल अब कभी मत करना। और तब, शिक्षक खड़ा था बोर्ड के पास चुपचाप, इंस्पेक्टर उसकी तरफ मुड़ा और कहा, महाशय, हो सकता था मैं तो न भी पहचान पाता और धोखा हो जाता, लेकिन आप कैसे चुपचाप खड़े देख रहे हैं? आप भी सम्मिलित हैं इस बेईमानी में?

उस शिक्षक ने कहा, माफ करिए, मैं इस कक्षा का शिक्षक नहीं हूं, मैं बगल की कक्षा का शिक्षक हूं, इस कक्षा का शिक्षक क्रिकेट का खेल देखने चला गया। वह मुझसे कह गया, जरूरत पड़ जाए तो जरा मेरी क्लास देख लेना। तो मैं उसकी जगह खड़ा हुआ हूं। अब तो इंस्पेक्टर के क्रोध का कोई ठिकाना न रहा। उसने कहा, यह तो हद्द हो गई। बच्चे तो बच्चे शिक्षक भी, शिक्षक भी यही कर रहे हैं। एक-दूसरे की जगह खड़े हुए हैं। यह क्या बेईमानी है? यह क्या शिक्षा दी जा रही है? यह क्या अनैतिकता सिखाई जा रही है अभी से? शिक्षक भी थरथर कांपने लगा। बच्चे भी डर आए। नौकरी का भी खतरा था। उसने हाथ जोड़े, पैर पड़े। इंस्पेक्टर उसे लेकर बाहर आ गया। फिर इंस्पेक्टर को दया आ गई, उसने कहा, घबड़ाओ मत, चिंतित मत होओ, तुम्हारे भाग्य, मैं असली इंस्पेक्टर नहीं हूं। असली इंस्पेक्टर क्रिकेट का खेल देखने चला गया, मैं उसका मित्र हूं।

हम सब एक नाव पर सवार हैं। इसमें नीचे के आदमी से लेकर राष्ट्रपति तक सब सम्मिलित हैं। एक ही नाव पर सम्मिलित हैं। इसमें गरीब से लेकर अमीर तक; अनुयायियों से लेकर नेताओं तक; गृहस्थियों से लेकर संन्यासियों तक, सब सम्मिलित हैं। हम सब एक नाव पर सवार हैं। और यह सवारी इसलिए पैदा हो गई है कि हम हजारों साल से जबरदस्ती नैतिक

होने की कोशिश कर रहे हैं। जबरदस्ती नैतिक होने का यह दुष्परिणाम हुआ है। नैतिक तो हम नहीं हो पाए पाखंडी हम जरूर हो गए हैं।
नीति ऐसे नहीं आती, नीति के आने का रास्ता दूसरा ही है। अनैतिकता लक्षण है, नैतिकता भी एक लक्षण है। आदमी का शरीर गरम हो जाता है, तो हम समझते हैं आदमी बीमार हो गया। बुखार बीमारी नहीं है, केवल बीमारी का लक्षण है। फीवर चढ़ गया, तापमान लक्षण है, केवल सूचना है। आदमी भीतर बीमार है। शरीर का गरम हो जाना खुद कोई बीमारी नहीं है, बीमारी कुछ और है। उस बीमारी के कारण शरीर गरम हुआ है। गर्मी तो केवल सूचक है। खबर देती है कि शरीर कहीं रुग्ण है। इसलिए तापमान बढ़ गया। बढ़े तापमान के कारण हमें पता चलता है कि शरीर कहीं रुग्ण है। लेकिन अगर हम इस बढ़े हुए तापमान को ही बीमारी समझ लें और आदमी को ठंडे पानी से नहलाने लगें कि इसकी गर्मी उतार दें, मामला खतम हो जाएगा, गर्मी बीमारी है। बीमारी तो नहीं खतम होगी, बीमार जरूर खतम हो जाएगा। लक्षण बीमारियां नहीं होते, लक्षण तो सूचनाएं होते हैं।

एक आदमी चोर है, बेईमान है, असत्य बोलता है, हिंसक है, ये सिर्फ लक्षण हैं। तापमान है, भीतर आदमी की आत्मा अस्वस्थ है, ये उसकी खबरें हैं। इनको बदलने से कुछ भी नहीं हो सकता। ये तो केवल सूचनाएं हैं कि आत्मा अस्वस्थ है, अज्ञान में है। एक ही अस्वास्थ्य है, आत्मा का अज्ञान। अज्ञान के ये लक्षण हैं। अज्ञान होता है भीतर, तो बाहर होती है अनैतिकता। अनैतिकता को नहीं मिटाना है। वह तो केवल लक्षण है। मिटाना है अज्ञान को। अज्ञान के मिटते ही अनैतिकता मिट जाती है। और जब भीतर ज्ञान होता है तो बाहर नैतिकता होती है। अज्ञान का लक्षण है अनैतिकता, ज्ञान का लक्षण होती है नैतिकता। भीतर होता है ज्ञान तो जीवन हो जाता है नैतिक। लेकिन हम जड़ों को नहीं देखते, हम पत्तों पर मेहनत करते हैं, इसलिए सारी मेहनत व्यर्थ हो जाती है।

एक व्यक्ति ने अपने बचपन का संस्मरण लिखा है, उसने लिखा है: जब मैं छोटा था, तो मेरी मां की एक बहुत बड़ी बगिया थी। उस बगिया में ऐसे सुंदर फूल खिलते थे कि दूर-दूर से लोग उन्हें देखने आते और प्रशंसा करते। फिर मेरी मां बूढ़ी हो गई और बीमार पड़ी। एक बार लंबी बीमारी, कोई महीने भर उसे बिस्तर पर रहना पड़ा। वह बहुत चिंतित थी, बीमारी के लिए नहीं, अपने फूलों के लिए। और मैं अकेला ही उसका लड़का था और छोटी मेरी उम्र थी। फिर मैंने अपनी मां को कहा, चिंतित मत होओ, मैं फूलों की सम्हाल कर लूंगा। मैं फिकर कर लूंगा। तुम निश्चिंत रहो। तुम्हारे फूल नहीं मुरझा पाएंगे। और फिर वह युवक दिन-रात मेहनत करता रहा जाकर बगिया में। एक-एक फूल की धूल झाड़ता, एक-एक फूल को चूमता, एक-एक फूल को प्यार करता। महीने भर बाद जब उसकी मां उठी, तब तक बगिया बर्बाद हो चुकी थी। सब फूल कुम्हला चुके थे, पौधे मरने के करीब आ गए थे। सब पत्ते दीन-हीन हो गए थे।

उसकी मां ने देखा, तो वह हैरान हो गई, उसने कहा, तू क्या करता था सुबह से सांझ तक? दिन-रात तो तू बगिया में रहता था, तूने किया क्या? वह लड़का रोने लगा, उसकी आंख से आंसू टपकने लगे, उसने कहा, मैंने सब कुछ किया--एक-एक फूल को चूमा, एक-एक फूल को सम्हाला, एक-एक फूल को पानी से नहलाता था, पता नहीं क्या हुआ, यह बगिया तो सूखती चली गई!

उसकी मां हंसने लगी, उसने कहा, पागल, फूलों के प्राण फूलों में नहीं होते, उन जड़ों में होते हैं जो दिखाई नहीं पड़तीं। पानी जड़ों को देना पड़ता है, फूलों को नहीं। जड़ों को पानी मिल जाता है, फूल अपने आप युवा बने रहते हैं। और फूलों को जो पानी देगा, उसके फूल तो मरेंगे ही, जड़ें भी मर जाएंगी। फूलों को पानी देने से जड़ों को पानी नहीं मिलता। जड़ों को पानी देने से जरूर फूलों को पानी मिल जाता है। लेकिन जड़ें दिखाई नहीं पड़तीं, फूल दिखाई पड़ते हैं। आत्मा दिखाई नहीं पड़तीं, आचरण दिखाई पड़ता है। आचरण सिर्फ फूल है। आत्मा में जड़ें हैं। जो फूलों को सम्हालता है, फूल तो उसके मिट ही जाते हैं। और जब फूल नहीं सम्हल पाते, तो फिर बाजार में कागज के, प्लास्टिक के फूल मिलते हैं, उन्हीं को ले आता है, फिर उन्हीं से खुद को सजा लेता है। फिर पाखंड पैदा हो जाता है।

आत्मा को सम्हालना है, शेष सब अपने से सम्हल जाता है। और शेष सबको जो सम्हालता है, वह शेष सब तो खो ही जाता, आत्मा भी खो जाती है। इसलिए नीति नहीं, धर्म, ताकि नीति का जन्म हो सके। नीति सुगंध है धार्मिक जीवन की। स्वयं को जानना है।

अंतिम एक प्रश्न और फिर मैं अपनी चर्चा पूरी करूंगा।
कुछ और मित्रों ने पूछा है कि संसार में बहुत दुख, बहुत पीड़ा है, दुख ही दुख है, पीड़ा ही पीड़ा, चिंता ही चिंता, अशांति ही अशांति, कैसे हम शांत हो सकेंगे इसमें? इस इतने उपद्रव में, इस झंझावात में, इस आंधी में कैसे सम्हाल सकेंगे अपने शांति के दीये को?

नहीं, यह उन्हें संभव नहीं मालूम पड़ता है। निश्चित ही जीवन में बहुत उपद्रव हैं। लेकिन इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। और जीवन में उपद्रव हैं इसलिए आप अशांत हैं, यह निदान, यह डायग्नोसिस गलत है। आप अशांत हैं इसलिए जीवन में उपद्रव है। जीवन के उपद्रव के कारण आप अशांत नहीं हैं, आप अशांत हैं इसलिए जीवन में उपद्रव है।

एक छोटी सी घटना, शायद खयाल में आ जाए बात।
टोकियो के एक बड़े होटल में, आज से कोई तीस वर्ष पहले एक घटना घटी। एक सात मंजिल लकड़ी की बड़ी होटल में। एक विदेशी यात्री वहां ठहरा हुआ था। और उसने उस संध्या एक साधु को, साधु की खबरें सुन कर भोजन के लिए आमंत्रित किया था। साधु का नाम था, बोकोजू। वह साधु आया हुआ था। उस विदेशी यात्री ने अपने कुछ दस-पच्चीस मित्र भी साथ में बुलाए थे कि भोजन भी करेंगे, उस साधु से कुछ बात भी करेंगे। फिर बात चली,

वे भोजन करते जाते, साधु से कुछ प्रश्न पूछे थे, वह उत्तर दे रहा था। और तभी बीच में आ गया भूकंप। सारा नगर डांवाडोल हो गया। भवन गिरने लगे, त्राहि-त्राहि मच गई, शोरगुल, उत्पात, अराजकता, कुछ समझ में न रहा। सात मंजिल ऊपर बैठे उस मकान पर सब कंपने लगा। फिर वहां कौन रुकता। अभी यहां भूकंप आ जाए तो कौन यहां रुकेगा? किसको खयाल रहेगा, क्या सुन रहे थे? किसको ध्यान रहेगा, आगे और क्या सुनने को था? कोई नहीं रुका। वहां भी कोई नहीं रुका। वे सब भागे। वह जो मेजबान था, जिसने निमंत्रित किया था मित्रों को, वह भी भागा। द्वार पर भीड़ हो गई। सीढ़ियां संकरी थीं। उसे खयाल आया कि मैं भाग रहा हूं, लेकिन जिस साधु को मैंने अतिथि की तरह बुलाया था, वह कहां है? वह भी भाग गया या नहीं? लौट कर देखा, वह साधु आंख बंद किए अपनी ही जगह बैठा है। उसे लगा, मेजबान भाग जाए, होस्ट भाग जाए; गेस्ट, अतिथि घर में बैठा हो, क्या यह शोभा योग्य है? क्या यह उचित है कि मैं भाग जाऊं मेहमान को छोड़ कर? और फिर यह आदमी कैसा है जो चुपचाप बैठा है भूकंप में? सब गिरा जाता है, किसी भी क्षण भवन गिर सकता है, मौत निकट है, यह चुप क्यों बैठा है? कैसा है यह आदमी? उस आदमी के आकर्षण ने, उस अदभुत आदमी के चुंबक ने जैसे उसे खींच लिया। वह खींच गया उसके पास और चुपचाप बैठ गया यह सोच कर कि जो होना है, इसका जो होना है वही मेरा होगा, लेकिन मैं भागूंगा नहीं। हाथ-पैर कंपे जाते हैं, प्राण कंपित हैं। फिर भूकंप आया और चला गया। कौनसा भूकंप हमेशा रुकता है, सब आता है और चला जाता है।

भूकंप चला गया। साधु ने आंख खोली। बात जहां टूट गई थी भूकंप के आने से, फिर से शुरू करनी चाही। फिर से शुरू की। उसके मेजबान ने कहा, क्षमा करें, अब मुझे कुछ भी पता नहीं कि भूकंप के पहले हम कौनसी बातें करते थे। सब कंप गया, मन भी सब कंप गया, सब अस्त-व्यस्त हो गया। अब फिर कभी फुर्सत से बाद करेंगे। एक दूसरी बात लेकिन जरूर मुझे पूछनी है, हम भागे, प्राणों को संकट था, आप नहीं भागे?

उस साधु ने कहा, भागा तो मैं भी, लेकिन तुम बाहर की तरफ भागे, मैं भीतर की तरफ भागा। और तुम व्यर्थ ही भाग रहे थे, क्योंकि जहां से तुम भागते थे वहां भी भूकंप था, जहां तुम भागते थे वहां भी भूकंप था। तो भूकंप से भूकंप में भागने का प्रयोजन क्या था? और तुम जहां भाग कर जा रहे थे, वहां जो लोग थे, वे भी कहीं भाग रहे थे। तो मतलब क्या था? भूकंप से भूकंप में ही दौड़ जाने का प्रयोजन क्या था?

मैं उस तरफ भागा जहां भूकंप नहीं था। मैं भीतर की तरफ भागा। भीतर एक ऐसी जगह मिल गई है जहां कोई भूकंप कभी नहीं पहुंचता है। मैं उसी तरफ भाग गया था।

मनुष्य के भीतर एक जगह है जहां कोई बाहर का भूकंप कभी नहीं पहुंचता है। जो उस शरण को खोज लेता है, जो उस मंदिर में प्रविष्ट हो जाता है, फिर बाहर का भूकंप तो उस तक

नहीं पहुंचता, लेकिन उसकी शांति जरूर बाहर जो भूकंप में हैं उन तक पहुंचने लगती है। तब उसके उस मंदिर से एक रोशनी चारों तरफ फैलने लगती है। तब उसके उस शांत शून्य स्थल से, उस केंद्र से एक शांति की वर्षा चारों तरफ होने लगती है।

जरूर जीवन में बाहर संकट हैं, भूकंप हैं, लेकिन इससे ऐसा मत सोच लेना कि ऐसी कोई भी जगह नहीं है जहां भूकंप न हो, और जहां आप न पहुंच सकते हों। उस स्थल को ही हम आत्मा या परमात्मा कहते हैं। आत्मा या परमात्मा कोई फिलासफिकल, दार्शनिक धारणाएं नहीं हैं। दार्शनिकों ने बड़ा अन्याय किया है। उन्होंने इन सारी धारणाओं को, जो जीवन की अनुभूतियां हैं; धारणाएं नहीं, कंसेप्ट नहीं, सिद्धांत नहीं, जो जीवन की सघन, यथार्थ अनुभूतियां हैं, उन सब पर वाद-विवाद खड़ा करके उन्हें थोथे शब्द बना दिया है।

इन तीन दिनों में बाहर भूकंप है, इसी संबंध में तो मैंने आपसे कहा। और भीतर एक शरण है, उस संबंध में भी मैंने आपसे कहा। अब आपके हाथ में है कि आप भूकंप से भूकंप में भागेंगे या भूकंप से उस तरफ जहां कोई भूकंप नहीं है।

मेरी बातों को तीन दिन तक इतने प्रेम और शांति से सुना, इसके लिए बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में...हो सकता है मेरी बहुत सी बातों ने किसी के मन को चोट पहुंचा दी हो, चाहा तो कभी नहीं है कि किसी के मन को कोई चोट पहुंच जाए, लेकिन सोए हुए आदमी को कोई जगाने की कोशिश करे, तो नींद में जो है उसे नींद टूटना अच्छी तो लगती नहीं, चोट पहुंच जाती है। सपने देख रहा होता है, कोई हिलाने लगता है कि उठो-उठो, बड़ा बुरा लगता है कि कहां बेवक्त कोई उठाने आ गया। अभी तो नींद ही लगी थी, अच्छा सपना चलता था, कहां-कहां पहुंचे जाते थे, सब गड़बड़ कर दिया। हो सकता है नींद में आपको खूब तीन दिन तक बार-बार मैं धक्के देता रहा हो, कहा कि उठो-उठो, आपके कोई सपने टूट गए हों, दुख हुआ हो, तो अंत में, तो विदा लेने के पहले मुझे क्षमा तो मांग ही लेनी चाहिए। तो मैं क्षमा मांगता हूं, अगर किसी कोई चोट पहुंच गई हो। लेकिन अंत में इतनी प्रार्थना जरूर करता हूं कि जिस दिन नींद को छोड़ने की सामर्थ्य आप जुटा लेंगे, उस दिन, उस दिन ही आपके जीवन में पहली बार आनंद का, आलोक का, अमृत का अवतरण होगा। परमात्मा से प्रार्थना करता हूं, सबके हृदय में आनंद और अमृत का अवतरण हो सके, सबके हृदय में वह उतर सके। और आपसे प्रार्थना करता हूं कि पुकारना उसे, बुलाना उसे, और अपने मन में जगह देना। जब वह आने को तैयार हो, तो मन के द्वार खुल रखना, ताकि वह अतिथि सीढ़ियों से वापस न लौट जाए। वह तो रोज आता है द्वार पर हरेक के, लेकिन द्वार बंद देख कर वापस लौट जाता है।

अंत में सबके भीतर बैठे हुए परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

अंतर की खोज

नौवां प्रवचन

मेरे प्रिय आत्मन्!

एक संध्या एक पहाड़ी सराय में एक नया अतिथि आकर ठहरा। सूरज ढलने को था, पहाड़ उदास और अंधेरे में छिपने को तैयार हो गए थे। पक्षी अपने निबिड़ में वापस लौट आए थे। तभी उस पहाड़ी सराय में वह नया अतिथि पहुंचा। सराय में पहुंचते ही उसे एक बड़ी मार्मिक और दुख भरी आवाज सुनाई पड़ी। पता नहीं कौन चिल्ला रहा था? पहाड़ की सारी घाटियां उस आवाज से...लग गई थीं। कोई बहुत जोर से चिल्ला रहा था--स्वतंत्रता, स्वतंत्रता, स्वतंत्रता।

वह अतिथि सोचता हुआ आया, किन प्राणों से यह आवाज उठ रही है? कौन प्यासा है स्वतंत्रता को? कौन गुलामी के बंधनों को तोड़ देना चाहता है? कौनसी आत्मा यह पुकार कर रही? प्रार्थना कर रही?

और जब वह सराय के पास पहुंचा, तो उसे पता चला, यह किसी मनुष्य की आवाज नहीं थी, सराय के द्वार पर लटका हुआ एक तोता स्वतंत्रता की आवाज लगा रहा था।

वह अतिथि भी स्वतंत्रता की खोज में जीवन भर भटका था। उसके मन को भी उस तोते की आवाज ने छू लिया।

रात जब वह सोया, तो उसने सोचा, क्यों न मैं इस तोते के पिंजड़े को खोल दूं, ताकि यह मुक्त हो जाए। ताकि इसकी प्रार्थना पूरी हो जाए। अतिथि उठा, सराय का मालिक सो चुका था, पूरी सराय सो गई थी। तोता भी निद्रा में था, उसने तोते के पिंजड़े का द्वार खोला, पिंजड़े के द्वार खोलते ही तोते की नींद खुल गई, उसने जोर से सींकचों को पकड़ लिया और फिर चिल्लाने लगा--स्वतंत्रता, स्वतंत्रता, स्वतंत्रता।

वह अतिथि हैरान हुआ। द्वार खुला है, तोता उड़ सकता था, लेकिन उसने तो सींकचे को पकड़ रखा था। उड़ने की बात दूर, वह शायद द्वार खुला देख कर घबड़ा आया, कहीं मालिक न जाग जाए। उस अतिथि ने अपने हाथ को भीतर डाल कर तोते को जबरदस्ती बाहर निकाला। तोते ने उसके हाथ पर चोटें भी कर दीं। लेकिन अतिथि ने उस तोते को बाहर निकाल कर उड़ा दिया।

निश्चिंत होकर वह मेहमान सो गया उस रात। और अत्यंत आनंद से भरा हुआ। एक आत्मा को उसने मुक्ति दी थी। एक प्राण स्वतंत्र हुआ था। किसी की प्रार्थना पूरी करने में वह सहयोगी बना। वह रात सोया और सुबह जब उसकी नींद खुली, उसे फिर आवाज सुनाई पड़ी, तोता चिल्ला रहा था--स्वतंत्रता, स्वतंत्रता।

वह बाहर आया, देखा, तोता वापस अपने पिंजड़े में बैठा हुआ है। द्वार खुला है और तोता चिल्ला रहा है--स्वतंत्रता, स्वतंत्रता। वह अतिथि बहुत हैरान हुआ। उसने सराय के मालिक को जाकर पूछा, यह तोता पागल है क्या? रात मैंने इसे मुक्त कर दिया था, यह अपने आप पिंजड़े में वापस आ गया है और फिर भी चिल्ला रहा, स्वतंत्रता?
सराय का मालिक पूछने लगा, उसने कहा, तुम भी भूल में पड़ गए। इस सराय में जितने मेहमान ठहरते हैं, सभी इसी भूल में पड़ जाते हैं। तोता जो चिल्ला रहा है, वह उसकी अपनी आकांक्षा नहीं, सिखाए हुए शब्द हैं। तोता जो चिल्ला रहा है, वह उसकी अपनी प्रार्थना नहीं, सिखाए हुए शब्द हैं, यांत्रिक शब्द हैं। तोता स्वतंत्रता नहीं चाहता, केवल मैंने सिखाया है वही चिल्ला रहा है। तोता इसीलिए वापस लौट आता है। हर रात यही होता है, कोई अतिथि दया खाकर तोते को मुक्त कर देता है। लेकिन सुबह तोता वापस लौट आता है।
मैंने यह घटना सुनी थी। और मैं हैरान होकर सोचने लगा, क्या हम सारे मनुष्यों की भी स्थिति यही नहीं है? क्या हम सब भी जीवन भर नहीं चिल्लाते हैं--मोक्ष चाहिए, स्वतंत्रता चाहिए, सत्य चाहिए, आत्मा चाहिए, परमात्मा चाहिए? लेकिन मैं देखता हूं कि हम चिल्लाते तो जरूर हैं, लेकिन हम उन्हें सींकचों को पकड़े हुए बैठे रहते हैं जो हमारे बंधन हैं। हम चिल्लाते हैं, मुक्ति चाहिए, और हम उन्हीं बंधनों की पूजा करते रहते हैं जो हमारा पिंजड़ा बन गया, हमारा कारागृह बन गया। कहीं ऐसा तो नहीं है कि यह मुक्ति की प्रार्थना भी सिखाई गई प्रार्थना हो, यह हमारे प्राणों की आवाज न हो? अन्यथा कितने लोग स्वतंत्र होने की बातें करते हैं, मुक्त होने की, मोक्ष पाने की, प्रभु को पाने की। लेकिन कोई पाता हुआ दिखाई नहीं पड़ता। और रोज सुबह मैं देखता हूं, लोग अपने पिंजड़ों में वापस बैठे हैं, रोज अपने सींकचों में, अपने कारागृह में बंद हैं। और फिर निरंतर उनकी वही आकांक्षा बनी रहती है।
सारी मनुष्य-जाति का इतिहास यही है। आदमी शायद व्यर्थ ही मांग करता है स्वतंत्रता की। शायद सीखे हुए शब्द हैं। शास्त्रों से, परंपराओं से, हजारों वर्ष के प्रभाव से सीखे हुए शब्द हैं। हम सच में स्वतंत्रता चाहते हैं? और स्मरण रहे कि जो व्यक्ति अपनी चेतना को स्वतंत्र करने में समर्थ नहीं हो पाता, उसके जीवन में आनंद की कोई झलक कभी उपलब्ध नहीं हो सकेगी। स्वतंत्र हुए बिना आनंद का कोई मार्ग नहीं है।
दासता ही दुख है। यह जो स्प्रिचुअल स्लेवरी है, यह जो हमारी मानसिक गुलामी है, वही हमारा दुख, वही हमारी पीड़ा, वही हमारे जीवन का संकट है। शायद हम सबके मन में उससे मुक्त होने का खयाल भी पल रहा हो। लेकिन हमें पता नहीं कि जिन बातों को हम पकड़े हुए बैठे रहते हैं वे ही हमारे बंधन को पुष्ट करने वाली बातें हैं। उन थोड़े से बंधनों पर मैं चर्चा करूंगा। और उन्हें तोड़ने के संबंध में भी। ताकि मनुष्य की आत्मा मुक्ति का कोई मार्ग खोज सके।
मनुष्य के ऊपर सबसे बड़े बंधन क्या हैं?

हैरान होंगे आप यह जान कर कि मनुष्य के ऊपर सबसे बड़े बंधन विश्वास के, . . .के बंधन हैं। शायद हमें इसका खयाल भी न हो। हम तो सोचते हैं, जो मनुष्य विश्वासी है, जो मनुष्य श्रद्धालु है, वही धार्मिक है। और मैं आपसे निवेदन करना चाहूंगा, धर्म का श्रद्धा और विश्वास से कोई भी संबंध नहीं है। श्रद्धा और विश्वास से गुलामी का संबंध है, धर्म का संबंध नहीं। धर्म तो परम स्वतंत्रता से संबंध रखता है। धर्म तो परम स्वतंत्रता की आकांक्षा है। और विश्वास और श्रद्धाएं बंधन हैं, स्वतंत्रताएं नहीं।

विश्वास का मतलब है: जो हम नहीं जानते उसे हमने मान रखा है। और जो हम नहीं जानते उसे मान लेना चित्त को गुलाम बनाता है। ज्ञान तो मुक्त करता है। विश्वास? विश्वास बंधन में बांधता है। सारी दुनिया विश्वासों के बंधन में पीड़ित है। फिर चाहे उन विश्वासों का नाम हिंदू हो, उन विश्वासों का नाम मुसलमान हो, उन विश्वासों का नाम ईसाई हो, उन विश्वासों का नाम जैन हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। विश्वास मात्र मनुष्य के चित्त को मुक्त नहीं होने देते। विश्वास मात्र मनुष्य के जीवन में विचार को पैदा नहीं होने देते। और विचार, विचार की तीव्र शक्ति का जाग जाना विवेक का प्रबुद्ध हो जाना ही स्वतंत्रता का पहला चरण है। मनुष्य की आत्मा मुक्त हो सकती है विचार की ऊर्जा से, विश्वासों के बंधनों से नहीं।

लेकिन यदि हम अपने मन की खोज करेंगे, तो पाएंगे, हम सब विश्वासों से बंधे हुए हैं। विश्वास हमारे अज्ञान को बचा लेने का कारण बन जाते हैं। बचपन से ही हमें कुछ बातें सिखा दी जाती हैं और हम उनको मान लेते हैं बिना पूछे, बिना प्रश्न किए, बिना खोजे, बिना अनुभव किए हम स्वीकार कर लेते हैं। यह स्वीकृति, यह सहयोग ही हमारे हाथ से अपने ही बंधन निर्मित करने का कारण हो जाते हैं।

मैं एक छोटे से अनाथालय में गया था। वहां अनाथालय के संयोजकों ने मुझसे कहा कि हम अपने बच्चों को धर्म की शिक्षा देते हैं।

मेरी दृष्टि में तो धर्म की कोई शिक्षा हो ही नहीं सकती। धर्म की साधना हो सकती है, शिक्षा नहीं। क्योंकि शिक्षा दी जाती है बाहर से और साधना का जन्म होता है भीतर से। धर्म की कोई शिक्षा मेरी दृष्टि में नहीं हो सकती।

तो मैंने उनसे पूछा, मैं जरूर चल कर देखना चाहूंगा, आप क्या शिक्षा देते हैं।

वे मुझे बहुत खुशी से अपने अनाथालय में ले गए।

अनाथ, दीन-हीन बच्चे थे, उन्हें जो भी सिखाया था सीखना पड़ा था। उन्होंने उन बच्चों से पूछा, ईश्वर है? वे सारे दीन-हीन बच्चे हाथ उठा कर ऊपर खड़े हो गए ईश्वर की स्वीकृति में कि ईश्वर है!

उन बच्चों को पता है ईश्वर के होने का? उन्हें ईश्वर का कोई भी अंदाज है? कोई भी अनुभव? उन्हें ईश्वर के प्रकाश की कोई भी किरण मिली है? नहीं, कोई भी किरण का उन्हें पता नहीं। उन्हें जो यह सिखाया गया है कि ईश्वर है, और जब हम पूछें कि ईश्वर है, तो तुम हाथ ऊपर उठाना।

उन्होंने हाथ ऊपर उठा दिए।

वे हाथ बिलकुल झूठे और असत्य हैं। वे हाथ ज्ञान के हाथ नहीं, विश्वास के हाथ हैं। वे हाथ असत्य हैं।

फिर उनसे पूछा कि आत्मा है?

उन सारे बच्चों ने फिर हाथ उठा दिए।

उनसे पूछा, आत्मा कहां है?

उन सबने अपने हृदय पर हाथ रख लिए।

ये सारी सूचनाएं झूठी हैं। यह हृदय पर जाता हुआ हाथ झूठा है। सिखाया हुआ हाथ है यह। मैंने एक छोटे से बच्चे से पूछा, हृदय कहां है?

उस बच्चे ने कहा, यह तो हमें बताया नहीं गया, मुझे मालूम नहीं।

जिस बच्चे को हृदय का भी पता नहीं कि कहां है, उसे यह पता है कि आत्मा यहां है, परमात्मा यहां है! यह कैसे पता हो सकता है? फिर यह बच्चे को जब वह अबोध है, जब अभी उसके भीतर विचार का, चिंतन का जन्म नहीं हुआ, यह बात उसके मन में डाल दी गई। वह बच्चा बड़ा होगा, यह बात उसके खून में मिल जाएगी। वह जवान होगा, वह बूढ़ा हो जाएगा, और जब भी जीवन में प्रश्न उठेगा उसके ईश्वर है, तो बचपन का सीखा हुआ हाथ ऊपर उठ जाएगा और कहेगा, ईश्वर है। यह उत्तर झूठा होगा। चूंकि यह उत्तर बाहर से सिखाया गया है। इस उत्तर का धर्म से कोई संबंध नहीं रह जाता।

अगर ये बच्चे रूस में पैदा हुए होते, तो रूस की हुकूमत और रूस के गुरु इन्हें दूसरी बात सिखाते। वे सिखाते: कोई ईश्वर नहीं है, कोई आत्मा नहीं है। ये बच्चे रूस में इस बात को सीख लेते और जिंदगी भर इसी बात को दोहराते रहते। रूस में जो बात सिखाई जाती है वह सत्य होती है? शायद आपका मन कहेगा कि हम तो सत्य सिखा रहे हैं, वे असत्य सिखा रहे हैं। लेकिन मैं आपसे निवेदन करता हूं, सत्य को सिखाया ही नहीं जा सकता, जो भी सिखाया जाता है वह सब असत्य होता है। क्योंकि सिखाई गई बात व्यक्ति के प्राणों से नहीं उठती, ऊपर से डाल दी जाती है। हम सब भी जो बातें जानते हैं जीवन के संबंध में, वे भी सीखी हुई बातें हैं इसलिए झूठी हैं। इसलिए उन बातों से हमारे जीवन का अंधकार नहीं मिटता है। इसलिए उस ज्ञान से हमारे जीवन में आनंद की कोई वर्षा नहीं होती। इसलिए उस रोशनी से हमारे जीवन में कोई मुक्ति, कोई स्वतंत्रता उपलब्ध नहीं होती।

विश्वास से उपलब्ध हुआ ज्ञान धर्म नहीं है। लेकिन हमारा सारा ज्ञान ही विश्वास से उपलब्ध हुआ है। क्या हमें कोई ऐसे ज्ञान का भी अनुभव है जो विश्वास से नहीं अनुभव से उपलब्ध हुआ हो? अगर ऐसे किसी ज्ञान का कोई अनुभव नहीं है तो उचित है कि हम अपने को अज्ञानी जानें, ज्ञानी न मान लें। तो उचित है कि हम समझें कि हम नहीं जानते हैं। वैसी समझ से भी, मैं नहीं जानता हूं, जानने की खोज का प्रारंभ हो सकता है। लेकिन इस भ्रांत खयाल से कि मुझे पता है, हमारे जानने की यात्रा भी शुरू नहीं हो पाती। और तब यह जानने का भ्रम हमारा पिंजड़ा बन जाता है, जिसमें हम बंद हो जाते हैं।

हम सब अपने-अपने ज्ञान में बंद हो गए हैं, थोथे ज्ञान में, शब्दों के ज्ञान में, शास्त्रों और सिद्धांतों के ज्ञान में बंद हो गए हैं। और उसी बंधन को हम जोर से पकड़े हुए हैं। और फिर चाहते हैं कि स्वतंत्र हो जाएं, यह स्वतंत्र होना कैसे संभव हो सकेगा? ज्ञान की उपलब्धि के लिए, जो ज्ञान बाहर से सीख लिया गया उससे, उससे छुटकारा पाना होता है। यह बहुत कष्टपूर्ण प्रक्रिया है। वस्त्र निकालना आसान है, धन छोड़ देना आसान है, घर-द्वार, पत्नी-बच्चों को छोड़ देना बहुत आसान है, कठिन है तपश्चर्या उस ज्ञान को छोड़ देने की जो हम सीख कर बैठ गए होते हैं। इसलिए एक व्यक्ति घर छोड़ देता, पत्नी छोड़ देता, समाज छोड़ देता, लेकिन उन शास्त्रों को नहीं छोड़ पाता है जिनको बचपन से सीख लिया है।

संन्यासी भी कहता है, मैं जैन हूं। संन्यासी भी कहता है, मैं हिंदू हूं। संन्यासी भी कहता है, मैं ईसाई हूं। हद्द पागलपन की बातें हैं। संन्यासी भी हिंदू, ईसाई और मुसलमान हो सकता है? संन्यासी की भी सीमाएं हो सकती हैं? संन्यासी का भी संप्रदाय हो सकता है? नहीं, लेकिन बचपन से सीखी गई धारणाओं से छुटकारा पाना बहुत कठिन है।

नग्न खड़ा हो जाना आसान। भूखा, उपवासी खड़ा हो जाना अत्यंत सरल। प्रियजनों को, समाज को छोड़ देना बहुत सुविधापूर्ण, लेकिन चित्त पर सिखाए गए ज्ञान की जो पर्तें जम जाती हैं उन्हें उखाड़ देना बहुत कठिन है, बहुत आर्डुअस है।

इसलिए मैं तपश्चर्या एक ही बात को कहता हूं, सीखे हुए ज्ञान को छोड़ देना तप है। और जो सीखे हुए ज्ञान को छोड़ने की सामर्थ्य उपलब्ध कर लेता है, उसे उस ज्ञान की उपलब्धि होनी शुरू हो जाती है जो अनसीखा है जिसे कभी सीखा नहीं जाता, जो भीतर छिपा है और मौजूद है। ज्ञान तो मनुष्य की चेतना में समाविष्ट है। ज्ञान ही तो मनुष्य की आत्मा है। लेकिन चूंकि हम बाहर से सीखे हुए ज्ञान को इकट्ठा कर लेते हैं इसलिए भीतर के ज्ञान को बाहर पाने की आवश्यकता नहीं रह जाती। वह भीतर ही पड़ा रह जाता है। वह तो बाहर उठता तभी है जब हम बाहर से जो भी सीखा है उसको अलग कर दें ताकि भीतर जो छिपा है वह प्रकट हो सके। आत्मा के ज्ञान की, आत्मा के ज्ञान के आविर्भाव की संभावना ऊपर की सारी पर्तों को तोड़ देने पर ही उपलब्ध होती है। लेकिन हम तो इन पर्तों को मजबूत किए चले जाते हैं। रोज इकट्ठा किए चले जाते हैं। रोज इन पर्तों को भरते चले जाते हैं, ताकि हमें यह खयाल हो सके कि मैं जानता हूं।

यह मैं जानता हूं बाहर से सीखे गए शब्दों के आधार से बिलकुल झूठ और व्यर्थ है। क्या आपको पता है, अब तो मशीनें भी इस तरह के ज्ञान को जानने लगी हैं। कंप्यूटर्स पैदा हो गए हैं। अब तो ऐसी मशीनें बन गई हैं जिन्हें ज्ञान सिखाया जा सकता है। जिन्हें महावीर की पूरी वाणी सिखाई जा सकती है। और फिर उन मशीनों से प्रश्न पूछे जा सकते हैं कि महावीर ने अहिंसा पर क्या कहा? मशीन इतने सही उत्तर देती है कि कोई आदमी कभी नहीं दे सका है।

आपको शायद पता न हो, कोरिया का युद्ध आदमी की सलाह से बंद नहीं हुआ, कोरिया का युद्ध मशीन की सलाह से बंद किया गया। मशीन को सारा ज्ञान दे दिया गया कि चीन के

पास कितनी सामग्री है युद्ध की, कितने सैनिक हैं, चीन की कितनी शक्ति है, चीन कितने दिन लड़ सकता है। और हमारी, कोरिया के पास कितनी ताकत है, कितने सैनिक हैं, कितने दिन लड़ सकते हैं। मशीन को दोनों ज्ञान दे दिए गए। फिर मशीन से पूछा गया, युद्ध जारी रखा जाए या बंद कर दिया जाए? मशीन ने उत्तर दिया, युद्ध बंद कर दिया जाए। कोरिया हार जाएगा।

आज अमेरिका और रूस में सारा ज्ञान मशीनों को खिलाया-पिलाया जा सकता है, और उनसे उत्तर लिए जा सकते हैं।

आप भी क्या करते हैं बचपन से? ज्ञान खिलाया जाता है स्कूलों में, पाठशालाओं में, धर्म-मंदिरों में, आपके दिमाग में ज्ञान डाला जाता है। फिर उस डाले हुए ज्ञान की स्मृति इकट्ठी हो जाती है। फिर उसी स्मृति से आप उत्तर देते हैं। इस उत्तर देने में आप कहीं भी नहीं हैं, केवल मन की मशीन काम कर रही है।

आपको सिखा दिया गया है कि ईश्वर है। फिर कोई प्रश्न पूछता है, ईश्वर है, आप कहते हैं, हां, ईश्वर है।

इस उत्तर में आप कहीं भी नहीं हैं। यह सीखा हुआ उत्तर मन का यंत्र वापस लौटा रहा है। अगर यह आपको न बताया जाए कि ईश्वर है, आप उत्तर नहीं दे सकेंगे।

आपसे कोई पूछता है, आपका नाम क्या है? आप कहते हैं, मेरा नाम राम है। इसमें आप सोचते हों कि कुछ सोच-विचार है, तो आप गलती में हैं। बचपन से आपकी स्मृति पर थोपा जा रहा है तुम्हारा नाम, राम, तुम्हारा नाम राम। फिर कोई पूछता है, आपका नाम? स्मृति उत्तर देती है, मेरा नाम राम है।

मेरे एक मित्र डाक्टर हैं, वे ट्रेन से गिर पड़े। सिर को चोट लग गई। उनका नाम-वगैरह भूल गए। वह जो डाक्टरी उन्होंने पढ़ी थी, वह सब खतम हो गई। यंत्र चोट खा गया। तीन साल हो गए, अब उनसे कोई पूछे कि आपका नाम? वे बैठे रहें। इन तीन सालों में जो नई घटनाएं घटी हैं वे तो उन्हें याद हैं लेकिन तीन साल के पहले जो हुआ था वह उन्हें याद नहीं। यंत्र चोट खा गया।

स्मृति यांत्रिक है। मैकेनिकल है। स्मृति ज्ञान नहीं है। मैमोरी ज्ञान नहीं है। और हमारे पास स्मृति के सिवाय और क्या है। अगर आपसे मैं पूछूं कि आपके पास एकाध भी विचार ऐसा है जो आपका हो? तो क्या आप हां में उत्तर दे सकेंगे? एक भी विचार ऐसा है जो आपका हो? जो आपने सीख न लिया हो? सब विचार सीखे हुए हैं, सब विचार उधार हैं, सब विचार बारोड हैं। इसलिए विचार का संग्रह ज्ञान नहीं है। फिर ज्ञान क्या है? विचार का संग्रह ज्ञान नहीं है, बल्कि निर्विचार की उपलब्धि ज्ञान है। एक ऐसी चित्त-दशा जहां कोई विचार न रह जाए। इतनी शांत और मौन, जहां कोई विचार की तरंग न हो, वहां जो अनुभव होता है, वह ज्ञान है। वह ज्ञान मुक्त करता है। और जो ज्ञान हम इकट्ठा कर लेते हैं स्मृति से, वह मुक्त नहीं करता, बांधता है। हम सब अपने ही सीखे हुए ज्ञान में बंधे हुए लोग हैं। अपने ही

ज्ञान से हमने पिंजड़ा बनाया हुआ है। यह जो हमारी पहली परतंत्रता है, पहला बंधन है, ज्ञान का।

दूसरा बंधन है, अनुकरण का। हम सब किसी का अनुकरण कर रहे हैं। कोई महावीर का, कोई बुद्ध का, कोई राम का, कोई कृष्ण का। हम सब किसी के पीछे चल रहे हैं। हम सब फॉलोअर्स हैं, अनुयायी हैं। पृथ्वी पर धर्म का जन्म नहीं हो पाया अनुयायियों के कारण। क्योंकि धर्म किसी का अनुगमन नहीं है। किसी के पीछे जाना नहीं है, धर्म है अपने भीतर जाना। और जो किसी के पीछे जाता है वह कभी अपने भीतर नहीं जा सकता। क्योंकि किसी के पीछे जाने के लिए बाहर जाना पड़ता है। महावीर के पीछे जाएं, बुद्ध के पीछे जाएं, कृष्ण के पीछे जाएं, मेरे पीछे जाएं, किसी के भी पीछे जाएं। किसी के पीछे जाएंगे तो आप बाहर जा रहे हैं। क्योंकि जिसके पीछे आप जा रहे हैं वह आपके बाहर है। जाना है अपने भीतर, जा रहे हैं किसी के पीछे। जो किसी के पीछे जाता है वह भटक जाता है। सब अनुयायी भटक जाते हैं। जो अपने भीतर जाता है, किसी का अनुयायी नहीं है जो, किसी का फॉलोअर नहीं है जो, जो अपनी ही आत्मा का अनुसरण करता है, वही व्यक्ति केवल धर्म को, सत्य को उपलब्ध होता है, वही केवल मुक्ति को उपलब्ध होता है। लेकिन हम सब तो किसी के अनुयायी हैं। और हमें हजारों वर्ष से यही सिखाया जा रहा है कि पीछे चलो। पीछे चलने की शिक्षा सबसे विषाक्त, सबसे विषपूर्ण, सबसे पायज़नस है। इसने आदमी के जीवन को नष्ट कर दिया। इसलिए नष्ट कर दिया है, पहली बात, कोई मनुष्य किसी के पीछे जब भी जाएगा तब आत्मच्युत हो जाएगा, तब वह अपनी आत्मा से डिग जाएगा। तब वह इस कोशिश में लग जाएगा कि मैं किसी दूसरे जैसा हो जाऊं--महावीर जैसा हो जाऊं, बुद्ध जैसा हो जाऊं। तब वह एक अभिनेता बन जाएगा, तब वह एक ऐक्टर, तब वह इस कोशिश में होगा कि मैं दूसरे जैसा हो जाऊं। लेकिन क्या आपको पता है कि कोई मनुष्य कभी भी दूसरे जैसा न हुआ है, न हो सकता है।

महावीर को हुए कितना समय हुआ? ढाई हजार वर्ष। ढाई हजार वर्ष में कितने नासमझ लोगों ने महावीर जैसे बनने की कोशिश नहीं की है। लेकिन कोई महावीर बन सका है? राम को हुए कितना समय हुआ? क्राइस्ट को हुए कितना समय हुआ? कोई दूसरा क्राइस्ट पैदा हुआ है? कोई व्यक्ति कभी किसी दूसरे जैसा नहीं बन सकता। प्रत्येक व्यक्ति, आदमी की आत्मा अद्वितीय, बेजोड़, यूनीक है। हर मनुष्य अपने ही तरह का हो सकता है, किसी दूसरे तरह का नहीं हो सकता है। एक-एक आदमी बेजोड़ है, अनूठा है। यही तो गरिमा है! यही तो सौंदर्य है! यही तो आत्मा की प्रतिष्ठा है कि कोई आत्मा किसी दूसरे की नकल नहीं है। जो चीज नकल हो सकती है वह जड़ हो जाती है।

फोर्ड की कारें एक जैसी लाखों हो सकती हैं। एक दिन में हजारों मोटरगाड़ियां एक सी निकाली जा सकती हैं, बिलकुल एक सी, क्योंकि गाड़ी, मोटरगाड़ी एक यंत्र है, उसके पास कोई चेतना नहीं है। लेकिन दो मनुष्य एक जैसे नहीं बनाए जा सकते। और जिस दिन दो

मनुष्य एक जैसे बनाए जाएंगे, वह मनुष्य-जाति के इतिहास में सबसे दुर्भाग्य का दिन होगा। क्योंकि उसी दिन आदमी की हत्या हो जाएगी। आदमी मशीन हो जाएगा।

आदमी यंत्र नहीं है, आदमी है सचेतन प्राण। सचेतन प्राण किसी पैटर्न में, किसी ढांचे में नहीं ढाला जा सकता। चाहे वह ढांचा कितना ही सुंदर हो, कितने ही महापुरुष का हो, कोई किसी ढांचे में नहीं ढाला जा सकता। लेकिन हम ढांचे में ढालने की कोशिश करते रहे हैं। और इससे हमने आदमी के जीवन को बिलकुल ही विकृत कर दिया है। हम सब भी अपने को ढांचे में ढालने की कोशिश करते हैं। गांधी जैसे बन जाएं, इस जैसे बन जाएं, उस जैसे बन जाएं। गांधी बहुत सुंदर हैं, बहुत अच्छे; महावीर बहुत अनूठे हैं, बहुत अदभुत; बुद्ध बड़े महिमाशाली हैं, लेकिन आपको पता है, बुद्ध ने अपने को किसके ढांचे में ढाला? गांधी किसकी नकल हैं? क्राइस्ट किसकी कार्बनकापी हैं? वे सारे लोग अनूठे हैं अपने जैसे। लेकिन हम उन जैसे होने की कोशिश करेंगे तो भटक जाएंगे। हम भूल कर लेंगे। हमारा जीवन गलत पटरियों पर दौड़ जाएगा। और हमारा जीवन गलत पटरियों पर दौड़ रहा है।

दूसरी बात, अनुकरण मनुष्य के चित्त में गुलामी पैदा करता है। मनुष्य हीन हो जाता है। जब भी अनुकरण करता है तब दीन-हीन हो जाता है। अपने को अस्वीकार करता है, दूसरे को स्वीकार करता है। अपने को तोड़ता है, मिटाता है, दूसरे के नकल में अपने को बनाता है। तब उसकी आत्मा सब तरफ से दीन-हीन हो जाती है। और यह दीनता और हीनता मुक्ति नहीं ला सकती।

पहली बात है, अपनी आत्मा का, निजता का गौरव, गरिमा, अपनी आत्मा के अनूठे होने की स्वीकृति, अपने को दीन-हीन मानने के भाव का त्याग धार्मिक मनुष्य का दूसरा गुण है। पहला गुण है: विचार करने की क्षमता। दूसरा गुण है: स्वयं जैसे होने का साहस। करेज टु बी वनसेल्फ। खुद होने का, खुद जैसे होने का साहस। यही धार्मिक मनुष्य का दूसरा लक्षण है। जो खुद जैसे होने का साहस करता है उसे इस जगत में कोई बंधन नहीं बांध सकते। लेकिन हम तो अपने हाथ से दूसरे जैसे होने की कोशिश करते हैं। तो फिर बंधन तो अपने आप खड़े हो जाते हैं। पिंजड़े को हम खुद ही पकड़ लेते हैं और फिर रोते चिल्लाते हैं कि स्वतंत्र होना है, मोक्ष चाहिए। कैसे स्वतंत्र हो सकेंगे? दूसरी बात, बंधन है मनुष्य के ऊपर अनुकरण। और तीसरी बात, क्या है मनुष्य के ऊपर बंधन? और ये तीन सूत्र अगर हमें समझ आ जाएं, तो हम कैसे मुक्त हो सकते हैं वह भी समझ में आ सकता है। तीसरी कौनसी कड़ियां मनुष्य को बांध लेती हैं? तीसरी कड़ियां हैं, आदर्श, आइडियलस। मेरे भीतर हिंसा है, मेरे भीतर क्रोध है, मेरे भीतर सेक्स है, काम है, वासना है, मेरे भीतर झूठ है। दो रास्ते हैं इस स्थिति को सामना करने के लिए। एक रास्ता तो यह है कि मेरे भीतर हिंसा है, तो मैं अहिंसा ओढ़ने की कोशिश करूं, ताकि हिंसा मिट जाए। मेरे भीतर क्रोध है, तो मैं शांति साधने की कोशिश करूं, ताकि क्रोध नष्ट हो जाए। मेरे भीतर सेक्स है, तो मैं ब्रह्मचर्य की कसमें लूं, व्रत लूं, ताकि मेरा सेक्स विलीन हो जाए। एक रास्ता तो यह है। यह रास्ता गलत है। इस रास्ते में मनुष्य कभी भी शांत, स्वस्थ, मुक्त नहीं होता, बल्कि और

बंधन में पड़ता चला जा सकता है। क्यों? क्योंकि भीतर होता है क्रोध, और वह शांति का एक आदर्श निर्मित कर लेता है और उस आदर्श को ओढ़ने की कोशिश करता है। परिणाम क्या होता है? परिणाम होता है दमन। भीतर क्रोध को दबा-दबा कर छिपाता है, ऊपर शांति को थोपता है। क्रोध ऐसे नष्ट नहीं होता। भीतर इकट्ठा होता चला जाता है। उसके और गहरे प्राणों में क्रोध प्रविष्ट हो जाता है।

मैंने सुना है, एक गांव में एक अत्यंत क्रोधी व्यक्ति था। उसके क्रोध की चरमसीमा आ गई, जब उसने अपनी पत्नी को धक्का देकर कुएं में फेंक दिया। किसी क्रोध में पत्नी की हत्या कर दी। उसे खुद भी बहुत पीड़ा और दुख हुआ, पश्चात्ताप हुआ। सभी क्रोधी लोगों को बहुत पश्चात्ताप होता है। इसलिए नहीं कि अब वे क्रोध को नहीं करेंगे, बल्कि इसलिए कि पश्चात्ताप करके वे मन में जो अपराध पैदा होता है क्रोध करने से उसको पोंछ कर साफ कर लेते हैं, ताकि फिर से क्रोध करने के लिए तैयार हो सकें। मन में जो ग्लानि पैदा होती है क्रोध करने की, पश्चात्ताप करके उस ग्लानि को पोंछ लेते हैं, भले आदमी फिर से हो जाते हैं कि मैंने पश्चात्ताप भी कर लिया, ताकि फिर क्रोध की तैयारी की जा सके।

उस व्यक्ति को पश्चात्ताप हुआ। गांव में एक मुनि का आगमन हुआ था। लोग उसे उस मुनि के पास ले गए। मुनि के चरणों में सिर रख कर उसने कहा कि मुझे कोई रास्ता बताएं, मैं तो पागल हुआ जाता हूं क्रोध के कारण। मुनि ने कहा, रास्ता एक है कि संन्यास ले लो और संसार छोड़ दो। शांति की साधना करो। उस आदमी ने तत्क्षण वस्त्र फेंक दिए, नग्न हो गया और उसने कहा कि मुझे आज्ञा दें, मैं संन्यासी हो गया! मुनि भी हैरान हुए। ऐसा संकल्पवान व्यक्ति पहले उन्होंने कभी नहीं देखा था कि इतनी शीघ्रता से, इतने त्वरित वस्त्र फेंक दे और संन्यासी हो जाए! उन्होंने उसकी पीठ ठोंकी, धन्यवाद दिया। और गांव भी जयजयकार से भर गया कि अदभुत व्यक्ति है यह। लेकिन भूल हो गई थी उनसे। वह आदमी था क्रोधी। क्रोधी आदमी कोई भी काम शीघ्रता से कर सकता है। यह कोई संकल्प न था, यह केवल क्रोध का ही एक रूप था। लेकिन वह साधु हो गया, उसकी बहुत प्रशंसा हुई। और चूंकि शांति की तलाश में वह आया था, तो मुनि ने उसे नया नाम दे दिया--शांतिनाथ। वह मुनि शांतिनाथ हो गया।

क्रोधी व्यक्ति था इतना वह। अब तक दूसरों पर क्रोध निकाला था, अब दूसरों पर निकालने का उपाय न रहा, तो उसने अपने पर निकालना शुरू किया। दूसरे साधु तीन दिन के उपवास करते थे, वह तीस दिन के कर सकता था। अपने पर क्रोध निकालने की क्षमता उसकी बहुत बड़ी थी। वह अपने पर हिंसक, वायलेंट हो सकता था। दूसरे साधु छाया में बैठते, तो वह धूप में खड़ा रहता। दूसरे साधु पगडंडी पर चलते, तो वह कांटों में चलता। वह सब तरह से शरीर को कष्ट दिया। बहुत जल्दी उसकी कीर्ति सारे देश में फैल गई। महान तपस्वी की तरह वह प्रसिद्ध हो गया।

वह देश की राजधानी में गया। उसकी कीर्ति उसके चारों तरफ फैल रही थी। वैसा कोई तपस्वी न था। सचाई यह थी कि उस आदमी का क्रोध ही था यह, यह कोई तपश्चर्या न थी।

यह क्रोध का ही रूपांतरण था। यह क्रोध की ही अभिव्यक्ति थी। लेकिन दूसरों पर क्रोध निकलना बंद हो गया, अपने पर ही लौट आया। लेकिन इसका किसको पता चलता।

राजधानी में उसका एक मित्र रहता था, बचपन का साथी। उस मित्र को बड़ी हैरानी हुई कि यह आदमी जो इतना क्रोधी था, क्या शांतिनाथ हो गया होगा? जाऊं, देखूं, अगर यह परिवर्तन हुआ तो बहुत अदभुत है।

वह मित्र आया, मुनि तख्त पर बैठे थे, हजारों लोग उन्हें घेरे हुए थे।

जो आदमी प्रतिष्ठा पा जाता है, वह फिर किसी को भी पहचानता नहीं। चाहे वह मुनि हो जाए, चाहे मिनिस्टर हो जाए। फिर वह किसी को पहचानता नहीं। देख लिया मित्र को, लेकिन कौन पहचाने उस मित्र को, मुनि चुपचाप हैं। मित्र को भी समझ में तो आ गया कि उन्होंने पहचान लिया है लेकिन पहचानना नहीं चाहते हैं। मित्र निकट आया, थोड़ी देर बैठ कर उनकी बातें सुनता रहा, फिर उस मित्र ने पूछा, क्या मैं जान सकता हूं आपका नाम क्या है?

मुनि ने उसे गौर से देखा और कहा, अखबार नहीं पढ़ते हो? सुनते नहीं हो लोगों की चर्चा? मेरा नाम कौन नहीं जानता है? मेरा नाम है, मुनि शांतिनाथ। मित्र तो पहचान गया, क्रोध अपनी जगह है, कहीं कोई फर्क नहीं हुआ। थोड़ी देर मुनि ने फिर बात की, दो मिनट बीत जाने पर उस मित्र ने फिर पूछा, क्या मैं पूछ सकता हूं आपका नाम क्या है? अब तो मुनि को हद हो गया, अभी इसने पूछा दो मिनट पहले। मुनि ने कहा, बहरे हो, पागल हो, कहा नहीं मैंने कि मेरा नाम है, मुनि शांतिनाथ। सुना नहीं? फिर दो मिनट बात चलती होगी, उस आदमी ने फिर पूछा कि क्या मैं पूछ सकता हूं आपका नाम क्या है? उन्होंने डंडा उठा लिया और कहा कि अब मैं बताऊंगा तुम्हें कि मेरा नाम क्या है। उस मित्र ने कहा, मैं पहचान गया, पुराने मित्र हैं आप मेरे, और कुछ भी नहीं बदला है, आप वही के वही हैं।

क्रोध भीतर हो, तो ऊपर से संन्यास ओढ़ लेने से समाप्त नहीं हो जाता। अगर घृणा भीतर हो, तो ऊपर से प्रेम के शब्द सीख लेने से घृणा समाप्त नहीं हो जाती। दुष्टता भीतर हो, तो करुणा के वचन सीख लेने से दुष्टता का अंत नहीं हो जाता। वासना भीतर हो, तो ब्रह्मचर्य के व्रत लेने से समाप्त नहीं हो जाती। इन बातों से भीतर जो छिपा है उसके अंत का कोई भी संबंध नहीं है। लेकिन धोखा पैदा हो जाता है, प्रवंचना पैदा हो जाती है, ऊपर से हम वस्त्र ओढ़ लेते हैं अच्छे-अच्छे और नग्नता भीतर छिप जाती है, दुनिया के लिए हम भले मालूम होने लगते हैं, लेकिन भीतर? भीतर हम वही के वही हैं।

ऐसे कोई व्यक्ति धार्मिक नहीं होता, और न मुक्त होता है। बल्कि और गहरे बंधनों में पड़ जाता है। फिर जो भीतर छिपा है वह नये-नये रास्ते खोजता है प्रकट होने के लिए। जैसे केतली में चाय बनती हो, हम ढक्कन को बंद करके ढांक दें जोर से, तो भाप थोड़ी देर में केतली को फोड़ कर बाहर निकल आएगी। भाप बन रही है तो रास्ता खोजेगी। मनुष्य के चित्त में जो भी बन रहा है वह रास्ता खोजेगा। तो फिर पीछे के रास्ते खोजेगा जब सामने के

रास्ते हम बंद कर देंगे। तो वह कहीं पीछे के रास्तों से घूम-घूम कर आना शुरू हो जाएगा। और यह पीछे के रास्तों से चित्त का बार-बार आना, इतने बंधन, इतनी कांप्लेक्सिटी, इतनी उलझन खड़ी कर देगा जिसका कोई हिसाब नहीं। आदमी पागल भी हो सकता है उस उलझन में। और पागल न हुआ तो बात ठंडी हो जाए। कहेगा कुछ, करेगा कुछ; होगा कुछ, बताएगा कुछ।

लंदन में एक फोटोग्राफर था। उसने अपने दरवाजे पर, अपने स्टूडियो पर एक तख्ती टांग रखी थी। उस तख्ती पर उसने अपने स्टूडियो में फोटो उतरवाने की दरें, कीमतें लिख रही थीं, रेट्स लिख रखे थे। बड़े अजीब रेट्स थे उसके। एक भारतीय आदिवासी राजा लंदन गया था, वह भी फोटो उतरवाने गया। उस स्टूडियो में पहुंचा। दरवाजे पर ही तख्ती लगी थी, उस पर लिखा हुआ था: अगर आप वैसा फोटो उतरवाना चाहते हैं जैसे कि आप हैं, तो दाम पांच रुपया। अगर वैसा फोटो उतरवाना चाहते हैं जैसे कि आप लोगों को दिखाई पड़ते हैं, तो दाम दस रुपया। और अगर वैसा फोटो उतरवाना चाहते हैं जैसा कि आप सोचते हैं आपको होना चाहिए, तो दाम पंद्रह रुपया। वह राजा बहुत हैरान हुआ। उसने कहा, फोटो भी तीन तरह के होते हैं यह मेरी कल्पना में नहीं था। उसने उस फोटोग्राफर को पूछा कि बड़ी आश्चर्य की बात है, क्या तीन तरह के फोटो होते हैं? फोटो तो मैं सोचता था एक ही तरह के होते हैं, जैसा मैं हूं। क्या नंबर दो और नंबर तीन के फोटो उतरवाने वाले लोग भी यहां आते हैं? उस फोटोग्राफर ने कहा, महाशय! आप पहले ही आदमी हैं जो नंबर एक का फोटो उतरवाने के खयाल में हैं। अब तक तो दूसरे और तीसरे ही लोग आते रहे। कोई वैसा चित्र नहीं उतरवाना चाहता जैसा कि वह है।

दूसरा ही चित्र हम सब बनाए हुए हैं। दूसरा ही व्यक्तित्व, झूठा व्यक्तित्व बनाए हुए हैं। आदर्श झूठा व्यक्तित्व पैदा करते हैं। हिंसा भीतर छिपी रहती है, ऊपर से अहिंसा ओढ़ ली जाती है। भीतर हिंसा उबलती रहती है, ऊपर अहिंसा का भेस। भीतर उबलता रहता है सेक्स, भीतर उबलती रहती है वासना, ऊपर ब्रह्मचर्य के व्रत।

एक साध्वी के पास एक सुबह समुद्र के किनारे में बैठा था। समुद्र की हवाएं आईं और मेरे चादर को उड़ा कर उन्होंने साध्वी को स्पर्श कर दिया। अब समुद्र की हवाओं को क्या पता कि साध्वी पुरुष के वस्त्र नहीं छूती हैं। मैं भी क्या करता हवाएं वस्त्र उड़ा ही ले गई थीं। साध्वी लेकिन घबड़ा आईं। मैंने उससे पूछा, आप बहुत घबड़ा गई हैं, बात क्या है? उसने कहा, पुरुष का वस्त्र छूना वर्जित है, पुरुष का वस्त्र में नहीं छू सकती हूं। यह मेरे ब्रह्मचर्य के व्रत के विरोध में है।

तो मैंने कहा, मैं तो बहुत हैरान हो गया। अभी हम आत्मा की बातें करते थे, और आप कहती थीं शरीर नहीं है, आत्मा अलग चीज है, मैं शरीर नहीं हूं। यह आप कह रही थीं अभी, और पुरुष का वस्त्र आपको छू गया, वस्त्र भी पुरुष और स्त्री हो सकते हैं? वस्त्र भी पुरुष और स्त्री हो सकते हैं? वस्त्र के साथ भी सेक्स का संबंध जोड़ती हैं आप? यह चादर मैंने ओढ़ ली तो पुरुष हो गई? और अगर चादर छूती है तो आपको छू सकती है? क्योंकि

आप तो कहती हैं मैं आत्मा हूं, शरीर नहीं हूं। झूठ कहती होंगी। पढ़ी हुई बात कहती होंगी कि मैं आत्मा हूं। जानती तो बहुत गहरे में यही है कि मैं शरीर हूं। चद्दर भी छूता है तो प्राण कंप जाते हैं। यह कैसा ब्रह्मचर्य? भीतर सेक्स उबल रहा होगा, इसलिए चद्दर के छूने से इतनी तीव्र लहर दौड़ गई है, अन्यथा इतनी तीव्र लहर नहीं दौड़ सकती।

बुद्ध एक वन में निवास करते थे, गांव के कुछ लोग किसी वेश्या को लेकर जंगल में आ गए। उन सबने शराब पी ली थी। शराब पीया देख कर वेश्या उनको छोड़ कर भाग गई। वे उसके खोजने के लिए जंगल में ढूंढते हुए घूमते थे, एक वृक्ष के नीचे बुद्ध को बैठे देखा, तो उन्होंने कहा कि सुनिए, स्वामी, क्या आप बता सकेंगे यहां से कोई स्त्री भागती हुई निकली है?

बुद्ध ने कहा, मेरे मित्रो, कोई भागता हुआ जरूर निकला, लेकिन स्त्री थी कि पुरुष, यह बताना कठिन है। क्योंकि जब से मेरी वासना चली गई स्त्री और पुरुष में बहुत फर्क नहीं दिखाई पड़ता है। कोई निकला जरूर, यह कहना मुश्किल स्त्री थी की पुरुष। जब से मेरी वासना चली गई तब से भेद करने का बहुत कारण नहीं रहा। जब तक बहुत गौर से ही न देखूं, तब तक खयाल भी नहीं आता। और गौर से देखने की कोई वजह नहीं रह गई है।

यह आदमी तो हुआ होगा ब्रह्मचर्य को उपलब्ध। लेकिन चद्दर को छूने से किसी के प्राण कंप जाते हों, तो यहां भीतर वासना उबल रही है, कोई ब्रह्मचर्य नहीं है। और ब्रह्मचर्य की कसमें खाई ही किसलिए जाती हैं? इसीलिए न कि भीतर वासना उबल रही है। कसमें खाने से कुछ अंत पड़ सकता है?

नहीं, आदर्शों से व्यक्तित्व नहीं बदलता, सिर्फ छिपता है। वंचना, धोखा, सेल्फ-डिसेप्शन पैदा होता है।

फिर कैसे बदलता है व्यक्तित्व?

ये तीन हैं बंधनः सीखा हुआ ज्ञान, किसी का अनुसरण, आदर्शों को थोपने की चेष्टा। ठीक इन तीन के व्यक्तित्व, इन तीन के घेरों के बाहर, इन तीन भूलों के बाहर व्यक्ति की स्वतंत्रता, मोक्ष और धर्म और आत्मा का प्रारंभ है।

सीखा हुआ ज्ञान भूल जाना पड़ता है। मन को कर लेना होता है सीखे हुए ज्ञान से मुक्त, ताकि भीतर जो छिपा है वह प्रकट होने के लिए द्वार पा सके।

अनुसरण छोड़ देना होता है। क्योंकि अनुसरण ले जाता है स्वयं के बाहर। किसी के पीछे चलना बंद कर देना होता है, और चलना होता है स्वयं के पीछे।

और तीसरी बात, आदर्श थोपने बंद कर देने होते हैं। फिर चित्त जैसा है उसे जानने के प्रति सजगता, निरीक्षण, ऑब्जर्वेशन विकसित करना होता है। अगर कोई व्यक्ति अपने क्रोध की वृत्ति के प्रति पूरी तरह सजग हो जाए, उस पूरी वृत्ति का निरीक्षण करने में समर्थ हो जाए, तो हैरान हो जाएगा, जैसे ही वह क्रोध को जानने में समर्थ हो जाएगा, वैसे ही पाएगा क्रोध विसर्जित हो गया है। क्रोध को जान कर भी कोई कभी क्रोध नहीं कर सका है। जैसे दीवाल को जान कर कोई दीवाल से निकलने की कोशिश नहीं करता है। हां, आंख बंद हों तो कभी

दीवाल से टकरा कर निकलने की कोशिश करता है। लेकिन जिसे दरवाजा दिखाई पड़ता हो, वह दरवाजे से निकलता है दीवाल से नहीं।

हमने निरीक्षण नहीं किया है चित्त का, हमने चित्त को जाना नहीं है, इसलिए क्रोध से टकरा जाते हैं, सेक्स से टकरा जाते हैं, लोभ से टकरा जाते हैं। दीवालों से सिर टकरा जाता और टूट जाता है, लहूलुहान हो जाता है। रोते हैं, चिल्लाते हैं, कसमें खाते हैं, उससे कुछ भी नहीं होता, ठीक से चित्त के भीतर प्रवेश करके जानना होगा, क्या है यह चित्त? क्या हैं इसकी वृत्तियां? कहां से पैदा होती हैं? कैसे विकसित होती हैं? कैसे स्वयं को घेर लेती हैं? कैसे स्वयं को चालित कर देती हैं? अगर कोई वृत्तियों के सम्यक निरीक्षण को, राइट ऑब्जर्वेशन को उपलब्ध हो जाता है, तो वह पाता है कि वृत्ति तो विलीन हो गई और उनकी जगह एक अपूर्व शांति, एक अपूर्व सौम्य का एक...उपस्थित हो गई है।

एक छोटी सी कहानी जिससे मैं समझा सकूं कि निरीक्षण का क्या मतलब है।

बहुत पुरानी कथा है, तीन ऋषि थे, उनकी बहुत ख्याति थी। लोक-लोकांतर में उनका यश पहुंच गया था। इंद्र पीड़ित हो गया था उनके यश को देख कर। और इंद्र ने उर्वशी को, अपने उस गंधर्व नगर की श्रेष्ठतम अप्सरा को कहा, इन तीन ऋषियों को मैं निमंत्रित कर रहा हूं अपने जन्म-दिन पर, तू ऐसी कोशिश करना कि उन तीनों का चित्त विचलित हो जाए।

उन तीन ऋषियों को आमंत्रित किया गया। वे तीन ऋषि इंद्र के नगर में उपस्थित हुए। सारे देवता, सारा नगर देखने आया जन्म-दिन के उत्सव को। उर्वशी ऐसी सजी थी कि खुद इंद्र और देवता हैरान हो गए, जो उससे परिचित थे, भलीभांति जानते थे। वह आज इतनी सुंदर मालूम हो रही थी जिसका कोई हिसाब नहीं। फिर नृत्य शुरू हुआ। उर्वशी ने आधी रात बीतते तक अपने नृत्य से सभी को मोहित, मंत्रमुग्ध कर लिया। फिर जब रात गहरी होने लगी और लोगों पर नृत्य का नशा छाने लगा, तब उसने अपने अलंकार फेंकने शुरू कर दिए। फिर धीरे-धीरे वस्त्र भी। एक ऋषि घबड़ाया और चिल्लाया, उर्वशी बंद करो, यह तो सीमा के बाहर जाना है, यह नहीं देखा जा सकता। दूसरे दो ऋषियों ने कहा, मित्र, नृत्य तो चलेगा, अगर तुम्हें ने देखना हो तो अपनी आंखें बंद कर ले सकते हो। नृत्य क्यों बंद होता है। इतने लोग देखने को उत्सुक हैं, तुम्हारे अकेले के भयभीत होने से नृत्य बंद होने को नहीं। अपनी आंख बंद कर लो तुम्हें नहीं देखना। ऋषि ने आंखें बंद कर लीं। सोचा था उस ऋषि ने कि आंखें बंद कर लेने से उर्वशी दिखाई पड़नी बंद हो जाएगी। पाया कि यह गलती थी, भूल थी।

आंख बंद करने से कुछ दिखाई पड़ना बंद होता है? आंख बंद करने से तो जिससे डरते हम आंख बंद करते हैं वह और प्रगाढ़ होकर भीतर उपस्थित हो जाता है। रोज हम जानते हैं, सपनों में हम उनसे मिल लेते हैं, जिनको देख कर हमने आंख बंद कर ली थी। रोज हम जानते हैं जिस चीज से हम भयभीत होकर भागे थे वह सपनों में उपस्थित हो जाती है। दिन भर उपवास किया था तो रात सपने में किसी राज-भोज पर आमंत्रित हो जाते हैं। यह हम

सब जानते हैं। उस ऋषि की भी वही तकलीफ। आंख बंद किए और मुश्किल में पड़ गया है। नृत्य चलता रहा, फिर उर्वशी ने और भी वस्त्र फेंक दिए, केवल एक ही अधोवस्त्र उसके शरीर पर रह गया। दूसरा ऋषि घबड़ाया और चिल्लाया कि बंद करो उर्वशी, यह तो अब अश्लीलता की हद हो गई, बंद करो, यह नृत्य नहीं देखा जा सकता। यह क्या पागलपन है? तीसरे ऋषि ने कहा, मित्र, तुम भी पहले जैसे ही...हो। आंख बंद कर लो, नृत्य तो चलेगा। इतने लोग देखने को उत्सुक हैं। फिर मैं भी देखना चाहता हूं। तुम आंख बंद कर लो। नृत्य बंद नहीं होगा। दूसरे ऋषि ने भी आंख बंद कर ली।
आंख जब तक खुली थी तब तक उर्वशी एक वस्त्र पहने हुई थी। आंख बंद करते ही ऋषि ने पाया वह वस्त्र भी गिर गया। स्वाभाविक है, चित्त जिस चीज से भयभीत होता है उसी में ग्रसित हो जाता है। चित्त जिस चीज को निषेध करता है, उसी में आकर्षित हो जाता है। फिर उर्वशी का नृत्य और आगे चला, उसने सारे वस्त्र फेंक दिए, वह नग्न हो गई। फिर उसके पास फेंकने को कुछ भी न बचा। वह तीसरा ऋषि बोला, उर्वशी, और भी कुछ फेंकने को हो तो फेंक दो, मैं आज पूरा ही देखने को तैयार हूं। अब तो अपनी इस चमड़ी को भी फेंक दे, ताकि मैं और भी देख लूं कि और आगे क्या है। उर्वशी ने कहा, मैं हार गई आपसे, वह पैरों पर गिर पड़ी उस शिष्य के, उसने कहा, अब मेरे पास फेंकने को कुछ भी नहीं है। मैं हार गई, क्योंकि आप अंत तक देखने को तैयार हो गए। दो ऋषि हार गए, क्योंकि बीच में ही उन्होंने आंख बंद कर ली। मैं हार गई, अब मेरे पास फेंकने को कुछ भी नहीं, और जिसने मुझे नग्न जान लिया, अब उसके चित्त में जानने को भी कुछ शेष न रहा। उसका चित्त मुक्त ही हो गया।

चित्त का निरीक्षण करना है पूरा। मन के भीतर जो भी उर्वशियां हैं, मन के भीतर जो भी वृत्ति की अप्सराएं हैं--चाहे काम की, चाहे क्रोध की, चाहे लोभ की, चाहे मोह की, उन सबको पूरी नग्नता में देख लेना है। उनका एक-एक वस्त्र उतार कर देख लेना है। आंख बंद करके भागना नहीं है। एस्केप नहीं है, पलायन नहीं है जीवन की साधना, जीवन की साधना है पूरी खुली आंखों से चित्त का दर्शन। और जिस दिन कोई व्यक्ति अपने चित्त के सब वस्त्रों को उतार कर चित्त की पूरी नग्नता में, पूरी नेकेडनेस में, पूरी अग्लीनेस में, चित्त की पूरी कुरूपता में पूरी आंख खोल कर देखने को राजी हो जाता है, उसी दिन चित्त की उर्वशी पैरों पर गिर पड़ती है और कह देती है मुझे क्षमा करें, मैं हार गई हूं। अब आगे जानने को कुछ भी नहीं है।

चित्त की पूरी जानकारी, चित्त का पूरा ज्ञान चित्त से मुक्ति बन जाता है।

ज्ञान से, सीखे हुए ज्ञान से छुटकारा; अनुकरण से छुटकारा और पलायन, एस्केप से छुटकारा। ये तीन छुटकारे धर्म के सूत्र हैं। और हम तीनों के उलटा कर रहे हैं, इसलिए हम बंधन में हैं। इन तीन को जो साधता है वह साधक है। इन तीन को जो साधता है वह

परमात्मा के मंदिर में प्रविष्ट हो जाता है। उस मंदिर में नहीं जो आपके गांव में बना है। आदमियों का बनाया हुआ कोई मंदिर परमात्मा का मंदिर नहीं है। उस मंदिर में जो आपके भीतर है, जो चेतना का मंदिर है, जो चिन्मय मिट्टी का नहीं, पत्थरों का नहीं, चेतना की ईंटों से बना हुआ आपके भीतर मंदिर है। जो इन तीन सूत्रों को साध लेता है, वह उस मंदिर की सीढ़ियां पार कर जाता और प्रविष्ट हो जाता है। उस मंदिर में पहुंच कर ज्ञात होता है--न तो कोई दुख है, न कोई चिंता, न कोई पीड़ा। उस मंदिर में पहुंच कर ज्ञात होता है--कोई मृत्यु भी नहीं है। उस मंदिर में पहुंच कर ज्ञात होता है कि जीवन एक अमृत, एक अमृत, एक आनंद, एक आलोक है। उस मंदिर में पहुंच कर ही अनुभव होता है उस सत्य का जिसको हम प्रभु कहें। और उस मंदिर पर हम कोई भी नहीं पहुंच सकेंगे, क्योंकि मंदिर के बाहर हमने अपने पिंजड़े बना रखे हैं और उनके सींकचों को हम पकड़ कर जोर से चिल्ला रहे हैं--स्वतंत्रता, स्वतंत्रता, स्वतंत्रता। और कोई चाहे भी कि आपको निकाल ले बाहर और मुक्त कर दे, सुबह होने के पहले आप वापस अपने पिंजड़े में बैठ जाएंगे। कोई दूसरा आपको निकाल भी नहीं सकता है। जब तक कि आपको ही यह दिखाई न पड़ने लगे कि मैं स्वतंत्रता चाहते हुए भी जो कर रहा हूं वह परतंत्रता निर्मित हो रही है उससे। जिस दिन आपको यह दिखाई पड़ जाएगा, यह कंट्राडिक्शन, जीवन का यह विरोधाभास कि मांगता हूं आजादी, निर्मित करता हूं गुलामी; जाना चाहता हूं पूरब, चलता हूं पश्चिम; खोजता हूं प्रकाश, आंखें बंद किए अंधेरे को बना लेता हूं स्वयं। जिस दिन यह विरोधाभास जीवन का दिखाई पड़ जाएगा, उसी दिन आपके जीवन में एक क्रांति हो सकती है।

ऐसी क्रांति का नाम ही धर्म है। हिंदू और मुसलमान और जैन होने का नाम धर्म नहीं। परतंत्रता से, परतंत्रता को देखने की क्षमता से स्वतंत्रता की तरफ जो अभीप्सा पैदा होती है, उसी अभीप्सा का, उसी प्यास का नाम धर्म है।

परमात्मा करे आप कभी धार्मिक हो सकें, क्योंकि जो धार्मिक होता है उसी का जीवन धन्य और उदार होता है।

मेरी इन थोड़ी सी बातों को आपने सुना, अगर इनसे कुछ प्रश्न पैदा हो गए हों, तो मैं समझूंगा बात काम कर गई। कोई प्रश्न आपके मन में आ गए हों, तो संध्या उन पर हम बात करेंगे।

मेरी बातों को इतने प्रेम से सुना, उसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। और अंत में सबके भीतर बने हुए मंदिर में छिपा जो प्रभु है, उसके लिए प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

दसवां प्रवचन

मेरे प्रिय आत्मन्!

तीन मुक्ति-सूत्रों के संबंध में सुबह मैंने आपसे बात की। सत्य को जानने की दिशा में, या आनंद की उपलब्धि में, या स्वतंत्रता की खोज में मनुष्य का चित्त सीखे हुए ज्ञान से, अनुकरण से और वृत्तियों के प्रति मर्ूच्छा से मुक्त होना चाहिए, यह मैंने कहा।

इस संबंध में बहुत से प्रश्न आए हैं। उन पर हम विचार करेंगे।

बहुत से मित्रों ने पूछा है कि यदि शास्त्रों पर श्रद्धा न हो, महापुरुषों पर विश्वास न हो, तब तो हम भटक जाएंगे, फिर तो कैसे ज्ञान उपलब्ध होगा?

ऐसा प्रश्न स्वाभाविक है। मन को यह खयाल आता है कि यदि महापुरुषों पर, शास्त्रों पर श्रद्धा न करेंगे तो भटक जाएंगे। मगर बड़े आश्चर्य की बात है, हम यह नहीं सोचते कि श्रद्धा करते हुए भी हम भटकने से कहां बच सके हैं। विश्वास करते हुए भी क्या हम भटक नहीं रहे हैं? भटक नहीं गए हैं? विश्वास हमें कहां ले जा सका है। विश्वास कहीं ले जा भी नहीं सकता। क्यों? क्योंकि जो विश्वास दिखाई पड़ता है ऊपर से, भीतर उसके संदेह छिपा होता है। विश्वास संदेह को छिपाने के वस्त्रों से ज्यादा नहीं है। जब आप कहते हैं, मैं विश्वास करता हूं। उसका ही मतलब हुआ कि आपके भीतर संदेह मौजूद है, नहीं तो विश्वास कैसे करिएगा। जब कोई आदमी कहता है, मैं ईश्वर पर विश्वास करता हूं, उसका मतलब? उसका मतलब अगर वह थोड़ा भीतर झांक कर देखेगा तो पाएगा कि संदेह मौजूद है। उसी संदेह को छिपाने के लिए विश्वास किया गया है। जो आदमी जानता है वह विश्वास नहीं करता।
श्री अरविंद को किसी ने पूछा था: डू यू बिलीव इन गॉड? क्या आप विश्वास करते हैं ईश्वर में? तो श्री अरविंद ने कहा, नहीं, आइ डू नॉट बिलीव, आइ नो। मैं विश्वास नहीं करता हूं, मैं जानता हूं।
ज्ञान के अतिरिक्त संदेह कभी समाप्त नहीं होता। ज्ञान ही संदेह की मृत्यु बन सकता है। जैसे प्रकाश अंधकार की मृत्यु बनता है, वैसे ही ज्ञान संदेह की मृत्यु बनता है। विश्वास देकर हम अपने आपको धोखा दे लेते हैं। हम सोचते हैं कि हमने विश्वास कर लिया, बात समाप्त हो गई। विश्वास से बात समाप्त नहीं होती, भीतर संदेह मौजूद बना ही रहता है। भीतर संदेह होता है, ऊपर विश्वास होता है। जीवन भर संदेह नष्ट नहीं होता इस भांति। जिन्हें संदेह नष्ट करना हो, और संदेह नष्ट हो जाए तो ही जीवन में एक थिरता, तो ही जीवन में एक वास्तविक स्थिति उत्पन्न होती है। तो ही हम सत्य के साक्षात में समर्थ होते हैं। लेकिन संदेह जिसको मिटाना है उसे संदेह करना पड़ता है सम्यक रूप से। उसे राइट डाउट, उसे ठीक-ठीक संदेह की विधि सीखनी होती है। और अगर कोई मनुष्य ठीक से संदेह करना शुरू

करे, तो एक दिन उस जगह पहुंच जाता है जहां संदेह नहीं किया जा सकता है। उस दिन जो उपलब्ध होता है वही ज्ञान जीवन को बदलता है।

क्या आप सोचते हैं ऐसा कोई सत्य नहीं होगा जीवन में जिस पर संदेह न किया जा सके? ऐसा सत्य है। लेकिन हम तो संदेह ही नहीं करते, इसलिए उसको खोज कैसे पाएंगे? सोने को आग में डालते हैं, स्वर्ण बच जाता है और जो व्यर्थ है वह जल जाता है। संदेह की आग में जो सत्य नहीं है वह जल जाएगा और जो सत्य है वह बच जाएगा। लेकिन संदेह की आग में जिसने सत्य के स्वर्ण को डाला ही नहीं, वह कभी जान भी नहीं पाएगा उसके पास स्वर्ण है या मिट्टी। संदेह की आग में डालना जरूरी है सारे विश्वासों को, ताकि जो कचरा है वह जल जाए। और जो न जल सके, अछूता निकल आए अग्नि के बाहर, वह आपके जीवन को बदल देगा, वह होगा सत्य। सत्य को संदेह से डरने की जरूरत नहीं है। जो डर रहा है, उसके पास सत्य नहीं होगा, उसके पास होगा, थोथा विश्वास। इसलिए भय मालूम पड़ता है कि मैं कहीं भटक न जाऊं। कहीं मैं जिस विश्वास को पकड़े हूं, वह जल कर राख न हो जाए। जो जल सकता है, वह जल ही जाना चाहिए, उस सोने के भ्रम में रहने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन ऐसा सत्य है जीवन में, जो कोई भी संदेह जिसे नहीं जला पाते हैं? जो संदेह की अग्नि से सुरक्षित बाहर निकल आता है?

एक व्यक्ति था, दैप्यान। उसने संदेह करना शुरू किया--ईश्वर पर, जगत पर, शास्त्रों पर, सब पर। उसने तय किया कि मैं उस समय तक संदेह किए चला जाऊंगा जब तक मुझे कोई ऐसी चीज उपलब्ध न हो जाए जिस पर मैं संदेह करना भी चाहूं तो न कर सकूं। जहां जाकर मेरी संदेह की नौका जिस चट्टान से जाकर टकरा कर चूर-चूर हो जाएगी, उसी चट्टान को मैं नमस्कार करूंगा और कहूंगा यह सत्य है।

संदेह किया उसने तो ईश्वर भी चला गया संदेह में। शास्त्र भी चले गए। महापुरुष भी चले गए। गुरु भी चले गए। सिद्धांत, संप्रदाय, धर्म भी चला गया। सब चला गया। लेकिन एक जगह आकर वह चट्टान उपलब्ध हो गई जिस पर संदेह नहीं किया जा सकता था। वह चट्टान थी, स्वयं की चट्टान। अंत में उसने चाहा कि मैं अपने पर भी संदेह करूं कि मैं हूं या नहीं? लेकिन उसे पता चला, अगर मैं यह भी कहूं कि मैं नहीं हूं, तो भी यह मेरे होने का ही प्रमाण बनता है। अगर मैं संदेह करूं अपने पर, तो मेरा संदेह भी मेरे होने को सिद्ध करता है। इस जगह आकर संदेह टूट गया। स्वयं पर संदेह नहीं किया जा सकता।

एक फकीर था, नसरुद्दीन। एक सांझ मित्रों के साथ बातचीत में संलग्न रहा और नसरुद्दीन की बातें इतनी मीठी और इतनी प्रीतिपूर्ण थीं कि रात के कब बारह बज गए मित्रों को भी पता न चला। रात के भोजन का समय चूक गया। फिर नसरुद्दीन बोला, अब मैं जाता हूं। तो उसके मित्रों ने कहा, तुमने हमारे रात्रि का भोजन भी चूका दिया है। और अब तो घर लोग सो चुके होंगे, हमें भूखे ही सोना पड़ेगा आज। नसरुद्दीन ने कहा, घबड़ाओ मत, मेरे साथ चलो, आज मेरे घर ही भोजन कर लेना।

बीस मित्रों को लेकर आधी रात नसरुद्दीन घर पहुंचा। जोश में निमंत्रण तो दे दिया। जैसे-जैसे घर के पास पहुंचा और पत्नी की याद आई, वैसे-वैसे डरा। रात आधी हो गई थी, बिना खबर दिए बीस लोगों को भोजन के लिए लाना। पत्नी क्या कहेगी? और फिर आज दिन भर से वह घर लौटा भी नहीं था। और वह तो फकीर था। सुबह आटा मांग लाता था, उसी से सांझ भोजन बनता था। आज आटा भी नहीं ला पाया था। मुश्किल होगी, द्वार पर जाकर उसे लगा, कठिनाई होगी खड़ी। उसने मित्रों से कहा, तुम रुको, जरा मैं भीतर जाऊं, अपनी पत्नी को समझा लूं। मित्र भी समझ गए, पत्नियों को बिना समझाए बड़ी कठिनाई है ऐसी स्थिति में।

मित्र बाहर रुक गए। नसरुद्दीन भीतर गया। पत्नी तो आगबबूला होकर बैठी थी। दिन भर से उसका कोई पता न था। घर में चूल्हा भी नहीं जला था। मांग कर आटा ही नहीं लाया गया था। और जब उसने जाकर कहा कि बीस मित्रों को भोजन के लिए निमंत्रण देकर ले आया हूं।

तो उसकी पत्नी ने कहा, तुम पागल हो गए हो, कहां थे दिन भर? भोजन का सवाल कहां है, हमारे लिए भी आटा नहीं भोजन का, मित्रों का तो कोई सवाल उठता नहीं। जाओ, उन्हें वापस लौटा दो।

नसरुद्दीन ने कहा, मैं कैसे वापस लौटाऊं? एक काम कर, तू जाकर उनसे कह दे कि नसरुद्दीन घर पर नहीं है।

उसकी पत्नी ने कहा, यह और अजीब बात आप मुझे समझा रहे हैं। आप उन्हें लेकर आए हैं और मैं उनसे जाकर कहूं कि नसरुद्दीन घर पर नहीं है!

नसरुद्दीन ने कहा, अब इसके सिवाय कोई रास्ता नहीं। जाकर कह, समझाने की कोशिश कर।

वह स्त्री बाहर गई, उसने मित्रों से पूछा, आप कैसे आए हैं?

उन मित्रों ने कहा, आए नहीं, लाए गए हैं, निमंत्रित हैं। आपके पति भोजन का निमंत्रण देकर ले आए हैं।

उसने कहा, मेरे पति? वे तो दिन भर से आज घर में नहीं हैं, उनका कोई पता नहीं हैं।

मित्र हंसने लगे, उन्होंने कहा, खूब मजाक हो गई यह तो। वे ही हमें लिवा कर लाए हैं, ऐसा कैसा हो सकता है कि वे घर पर न हों। वे भीतर मौजूद हैं। मित्र विवाद करने लगे। और आखिर में उनकी पत्नी से बोले कि आप हट जाओ, हम भीतर जाकर देख लेते हैं अगर नहीं है तो।

नसरुद्दीन को भी क्रोध आ गया। वह बाहर निकल कर आ गया और उसने कहा, क्यों विवाद किए चले जा रहे हो। यह भी तो हो सकता कि नसरुद्दीन आपके साथ आए हों फिर पीछे के दरवाजे से निकल गए हों।

नसरुद्दीन खुद ही आकर यह कहने लगे कि यह भी तो हो सकता कि नसरुद्दीन आपके साथ आए हों फिर पीछे के दरवाजे से निकल गए हों।

मित्रों ने कहा, पागल हो गए हो! क्रोध में तुम्हें समझ नहीं आ रहा। तुम खुद ही यह कह रहे हो कि मैं नहीं हूं। यह कैसे हो सकता है। यह तो तुम्हारे होने का प्रमाण हो गया।

एक जगह है केवल जहां संदेह खंडित हो जाते हैं, गिर जाते हैं, वह है स्वयं का अस्तित्व, वह है स्वयं की आत्मा। लेकिन हम संदेह करते ही नहीं, तो इस बिंदु तक हम कभी पहुंच ही नहीं पाते। संदेह की यात्रा किए बिना कोई सत्य की मंजिल पर न कभी पहुंचा है न पहुंच सकता है। हम तो विश्वास कर लेते हैं। इसलिए निःसंदिग्ध सत्य का कभी कोई अनुभव नहीं हो पाता। और जब हमें कोई ऐसा सत्य ही न मिलता हो, जो निःसंदिग्ध है, जो इनडूबिटेबल, जिस पर शक नहीं किया जा सकता, तो हम सत्य की खोज भी कैसे करें। जब कोई स्वयं की चेतना के पास आकर यह अनुभव करता है कि नहीं, इस पर संदेह असंभव है, तब, तब इसकी खोज में और गहरे उतर सकता है।

इसलिए मैंने कहा, घबड़ाएं न विश्वास को छोड़ने से। विश्वास को पकड़ने के कारण ही आप सत्य को नहीं पकड़ पा रहे हैं। जिन हाथों में विश्वास की राख है उन हाथों में कभी सत्य का अंगार नहीं हो सकता है। सत्य को जो छोड़ता है, सत्य को जो छोड़े हुए है, वही सब्स्टीटयूट की तरह, पूरक की तरह विश्वास को पकड़े हुए है। और जब तक इस विश्वास के पूरक को पकड़े रहेगा, तब तक सत्य की आकांक्षा और प्यास भी पैदा नहीं होती।

इसलिए जीवन की खोज में विश्वासों की राख को झड़ा देना स्वयं से, अदभुत, अदभुत अर्थ, बहुत महत्वपूर्ण अर्थ रखता है। लेकिन हमें यह समझाया जाता रहा है कि विश्वास के कारण ही हम जीवन में कहीं पहुंच सकते हैं।

झूठी है यह बात, सत-प्रतिशत झूठी है। आज तक जो भी व्यक्ति कहीं पहुंचे हैं, उनमें से कोई भी विश्वास के कारण नहीं पहुंचा है। जो भी पहुंचे हैं वे खोज के कारण पहुंचे हैं। और खोज कौन करता है? खोज वही करता है जो संदेह करता है। जो संदेह ही नहीं करता, वह खोज कैसे करेगा? न तो आस्तिक खोज करते हैं और न नास्तिक। आस्तिक मान लेते हैं बिना जाने कि ईश्वर है, नास्तिक मान लेते हैं बिना जाने कि ईश्वर नहीं है। ये दोनों विश्वास हैं। ये दोनों ही रुक जाते हैं।

धार्मिक आदमी तीसरे तरह का आदमी है। धार्मिक आदमी न तो आस्तिक होता, न नास्तिक होता। धार्मिक आदमी तो यह कहता है कि मुझे पता नहीं है मैं कैसे मान लूं? मैं अज्ञान में हूं, मैं नहीं जानता हूं। मैं खोजूंगा और अगर किसी दिन कोई सत्य मिला, तो फिर तो मान ही लूंगा। मिलने पर मानने का कोई सवाल ही नहीं रह जाता। लेकिन जब तक नहीं मिला है तब तक मैं कैसे मान लूं? अगर मैं मानता हूं तो क्या यह मान्यता असत्य की स्वीकृति नहीं है? और ऐसे असत्य पर खड़ा हुआ जीवन धार्मिक हो सकता है?

दुनिया में सभी लोग तो धार्मिक मालूम पड़ते हैं। निश्चित ही उनके जीवन का आधार कहीं कुछ असत्य होगा। अन्यथा दुनिया कभी की स्वर्ग बन गई होती। कोई मंदिर में मानता, कोई मस्जिद में, कोई बाइबिल में, कोई कुरान में, कोई गीता में, कोई महावीर में, कोई बुद्ध में, सभी तो मानते हैं। इतनी मान्यता के बावजूद भी पृथ्वी नरक बनी हुई है। इतनी

मान्यता और विश्वासों के बाद भी जीवन में कौनसे आनंद की ध्वनि उत्पन्न हो हुई! कौनसे सुगंध के फूल लग गए! हजारों साल से विश्वास में दीक्षित मनुष्य को खूब भटकाया गया। इसलिए मत कहें यह कि विश्वास न होता तो हम भटक जाएंगे। विश्वास के कारण ही आप भटक गए हैं। विश्वास न होगा तो पहुंच सकते हैं, भटकाव समाप्त हो सकता है। क्योंकि जिसके चित्त पर विश्वास नहीं होता...विश्वास के न होने का मतलब नास्तिक हो जाना नहीं है, नास्तिक का भी अपना विश्वास होता है--ईश्वर नहीं है, आत्मा नहीं है, बिना जाने इन बातों को वह पकड़े हुए रहता है। आस्तिक का भी विश्वास होता है, नास्तिक का भी। धार्मिक व्यक्ति का, खोज करने वाले व्यक्ति का, जिसके जीवन में इंक्वायरी है सत्य की उसका कोई विश्वास नहीं होता, उसके अनुभव होते हैं। और जब अनुभव आ जाता है तो ज्ञान उत्पन्न होता है। ज्ञान विश्वास नहीं है। ज्ञान तो प्रत्यक्ष साक्षात है।

विवेकानंद खोज में थे सत्य की। रवींद्रनाथ के पिता थे, महर्षि देवेंद्रनाथ। विवेकानंद देवेंद्रनाथ के पास एक रात गए। देवेंद्रनाथ जब चांदनी रातें होती थीं तो एक नाव पर एक बजरे में ही नदी में निवास करते थे। विवेकानंद सर रात्रि को तैर कर आधी रात में बजरे पर पहुंचे, जाकर दरवाजा धकाया, अटका था द्वार खुल गया। देवेंद्रनाथ आंख बंद किए ध्यान करने को बैठे थे। विवेकानंद ने जाकर हिला दिया और कहा कि मैं एक प्रश्न पूछने आया हूं। ईश्वर को जानते हैं आप? अजीब आदमी मालूम पड़ा यह युवक, आधी रात में पानी से लथपथ नदी को पार करके चला आता है। धका कर किसी को जबरदस्ती उठा कर पूछता है, ईश्वर को जानते हैं आप? देवेंद्रनाथ झिझक गए एक क्षण को, और कहा, बैठो, फिर मैं बताऊं। विवेकानंद ने कहा, आपकी झिझक ने सब कुछ कह दिया। वे नदी वापस कूद गए और चले गए।

यही विवेकानंद कुछ दिनों के बाद रामकृष्ण के पास पहुंचे। रामकृष्ण से भी जाकर यही पूछा, ईश्वर को जानते हैं आप? रामकृष्ण ने नहीं कहा कि ठहरो समझाता हूं। रामकृष्ण ने कहा, तुझे जानना है तो बोल? तू जानना चाहता है तो बोल? मैं जानता हूं या नहीं जानता इसे पूछने से क्या फायदा? तुझे जानना है तो बोल?

विवेकानंद बाद में कहते, देवेंद्रनाथ की श्रद्धा थी कि ईश्वर है, रामकृष्ण का अनुभव था। श्रद्धा झिझक गई, क्योंकि पीछे संदेह था, कहूं, कैसे कहूं कि मैं जानता हूं? मानता हूं, सिद्ध कर सकता हूं, प्रमाण दे सकता हूं, शास्त्र के उल्लेख दे सकता हूं, उपनिषद, गीता से समर्थन दे सकता हूं, लेकिन जानता हूं? हजार प्रमाण भी, हजार अनुमान भी, हजार तर्क भी एक छोटे से अनुभव को भी पूरा कर सकते हैं? हजार शास्त्र भी एक छोटे से अनुभव के बराबर तोले जा सकते हैं? एक कण भर अनुभव हजारों शास्त्र से ज्यादा मूल्यवान है। धर्म है अनुभव, विश्वास नहीं। और पृथ्वी धार्मिक नहीं हो सकी, क्योंकि हमने भूल से धर्म का संबंध विश्वास से जोड़ दिया है। और जब तक यह संबंध जुड़ा हुआ है पृथ्वी धार्मिक नहीं हो सकेगी।

आप देखते हैं, रोज धर्म हारता जा रहा है, रोज। रोज विज्ञान बढ़ता जा रहा है धर्म हारता जा रहा है। क्या आपको पता है कि विज्ञान की ताकत क्या है? विज्ञान की ताकत है संदेह। और धर्म की कमजोरी क्या है? धर्म की कमजोरी है विश्वास। विज्ञान कर रहा है संदेह। संदेह के माध्यम से कर रहा है खोज। खोज से उपलब्ध हो रहा है किन्हीं निःसंदिग्ध तत्वों को। और धर्म? धर्म कर रहा है आंख बंद करके विश्वास। विश्वास से खोज हो जाती बंद, उपलब्धि नहीं होती कुछ भी, सिर्फ बैठे रह जाते हैं लोग। धर्म हार रहा है विज्ञान के समक्ष। इसे ऐसा भी कह सकते हैं विश्वास हार रहा है संदेह के समक्ष। और जब तक धर्म भी संदेह कि शक्ति को नहीं उपलब्ध होगा, तब तक विज्ञान के समक्ष धर्म के जीतने की कोई संभावना नहीं है। अगर चाहते हैं कि कभी धर्म जीत जाए इस बड़े संघर्ष में, अगर चाहते हैं कि कभी धर्म लोगों के जीवन में प्रतिष्ठित हो जाए, तो समझ लें ठीक से इस बात को कि संदेह के बिना, खोज के बिना, अनुभव के बिना धर्म कभी भी प्रतिष्ठित नहीं हो सकेगा। लेकिन हम धर्म को प्रतिष्ठित करने के खयाल से विश्वास की शिक्षाओं को और जोर से चिल्लाने लगते हैं कि विश्वास करो, विश्वास करो। और हमें पता नहीं कि यही शिक्षा धर्म को डूबा रही है। जिसको आप समझ रहे हैं धर्म का आधार, वही धर्म की बीमारी है, आधार नहीं।

सोचें, आने वाली पीढ़ियों को और बच्चों को आप विश्वास नहीं करवा पा रहे हैं। इसलिए आप बच्चों को गाली दे रहे हैं कि अविश्वासी पैदा हो गए हैं, और ये धर्म को डूबा देंगे। गलती है आपकी। आपकी पीढ़ियों ने पहली दफे ठीक से संदेह पैदा करना शुरू किया है। गलती नई पीढ़ी की नहीं है जो संदेह कर रही है, गलती आपकी है कि आप उनके संदेह को धार्मिक नहीं बना पा रहे हैं। आप तो संदेह के दुश्मन हैं। तो आप संदेह को धार्मिक बना ही नहीं सकेंगे कभी। और अगर आप संदेह को धार्मिक नहीं बना सकते, तो इसको भविष्यवाणी समझ ले सकते हैं कि धर्म के सूरज का अस्त हो चुका है, अब यह धर्म जिंदा नहीं रह सकेगा। अगर आने वाली पीढ़ियों की जिंदगी में धर्म को देखना है आपको, तो ठीक से समझ लें, विश्वास के द्वारा उन पीढ़ियों को नहीं समझाया जा सकता। विश्वास से केवल उनको समझाया जा सकता था जो अशिक्षित थे, बुद्धिहीन थे, जिनके जीवन में तर्क और विचार नहीं था। आने वाली पीढ़ियां विचार और तर्क में प्रतिष्ठित हो रही हैं, विज्ञान में दीक्षित हो रही हैं, विज्ञान से परिचित हो रही हैं। वे संदेह के बल को समझ रही हैं। वे विश्वास की कमजोरी के लिए राजी नहीं हो सकतीं। आप जिम्मेवार हैं अगर नये बच्चे अधार्मिक हो जाएंगे, तो यह पाप आप पर होगा, नये बच्चों पर नहीं। यह बहुत सीधी और साफ बात है।

संदेह पर खड़ा होना चाहिए धर्म। तब धर्म स्वस्थ होता है। तब धर्म एक जबरदस्ती नहीं होता। तब हम उसे किसी के ऊपर थोप नहीं देते हैं, बल्कि हम उस व्यक्ति को सहारा देते हैं--उसका संदेह, उसका विचार विकसित हो और एक दिन उस जगह पहुंच जाए जहां सब संदेह निर्सन हो जाते हैं, सब संदेह गिर जाते हैं। फिर जो अनुभव होता है वही धार्मिक है।

इसलिए मैंने सुबह आपसे कहा, विश्वास जहर है। और विश्वास के जहर में ही धर्म बेहोश है। उससे धर्म को मुक्त हो जाना चाहिए और मनुष्य को भी। यह मनुष्य की मुक्ति की दिशा में पहला प्रयत्न, पहला सूत्र, पहली सीढ़ी।

और बहुत से मित्रों ने पूछा है: आदर्श, जो मैंने दूसरा सूत्र कहा, कि आदर्श हट जाने चाहिए व्यक्तित्व के सामने से।
तो उन्होंने कहा, आदर्श हट जाएंगे तो फिर व्यक्ति बनेगा क्या?

हमें खयाल ही नहीं है, व्यक्ति आदर्श से नहीं बनता, व्यक्ति बनता से बीज से, पोटेंशिएलिटी से। व्यक्ति भविष्य से नहीं बनता, जो उसके भीतर छिपा है उसके प्रगटन से, उसकी अभिव्यक्ति से बनता है।
एक बीज हम बो देते हैं फूल का; वृक्ष बड़ा होता है किसी आदर्श के कारण? वृक्ष मैं फूल आते हैं किसी आदर्श के कारण? नहीं, वृक्ष के बीज में जो छिपा है उसके एक्सप्रेशन, उसकी अभिव्यक्ति के कारण वृक्ष में पत्ते आते हैं, फूल आते हैं, फल आते हैं। जो छिपा है वह पूरी तरह प्रकट हो सके, तो वृक्ष में फूल आ जाते हैं। आदमी के साथ हम उलटा काम कर रहे हैं हजारों साल से। हम आगे उस पर कुछ थोपते हैं कि तुम यह बनो। हम यह फिकर नहीं करते कि तुम्हारे भीतर क्या छिपा है वह तुम प्रकट हो जाओ। जीवन का विकास प्रकटीकरण है, मेनिफेस्टेशन है। जीवन का विकास आरोपण नहीं है, कल्टीवेशन नहीं है। जीवन को ऊपर से नहीं थोपना पड़ता, भीतर से विकसित करना होता है।
हम एक आदमी को कहते हैं, महावीर जैसे बन जाओ। हम महावीर को इस आदमी के ऊपर थोपने की कोशिश करते हैं बिना यह जाने कि इस आदमी का बीज क्या है, इस आदमी की पोटेंशिएलिटी क्या है, इसके भीतर क्या छिपा है। यह गुलाब का फूल बनने को है, चमेली का, जुही का, क्या? इसको बिना जाने हम इसके ऊपर किसी को थोपने की कोशिश करते हैं। स्वभावतः परिणाम यह होता है कि जो इसके भीतर छिपा है वह कुंठित हो जाता है, वह वहीं ठहर जाता है, स्टेग्नेंट हो जाता है, जड़ हो जाता है। फिर इसके प्राण तड़फड़ाते हैं, क्योंकि जो भीतर छिपा है अगर प्रकट न हो सके, तो जीवन दुख, चिंता, एंज़ायटी, फ्रस्ट्रेशन से भर जाता है। जीवन की एक ही खुशी है, एक ही आनंद, एक ही मुक्ति कि जो मेरे भीतर छिपा है वह पूरी तरह प्रकट हो जाए, पूरी फ्लावरिंग हो जाए, उसका पूरा फूल विकसित हो जाए। लेकिन हमने अब तक जो किया है वह उलटा है।
भीतर जो छिपा है उसे प्रकट करने की कोशिश नहीं, बाहर जो दिखाई पड़ता है उसे थोपने की चेष्टा, ये दोनों उलटी बातें हैं।
अगर मैं किसी बगिया में चला जाऊं और वहां जाकर गुलाब के फूल को कहूं, तू कमल का फूल हो जा। चमेली को कहूं, तू चंपा हो जा। पहली तो बात, फूल मेरी बात सुनेंगे नहीं। फूल आदमियों जैसे नासमझ नहीं होते कि हर किसी की बात सुनने को इकट्ठे हो जाएं। सुनेंगे ही नहीं। मैं चिल्लाता रहूंगा, फूल अपनी मौज में, हवाओं में तैरते रहेंगे। फिकर भी

नहीं करेंगे कि कोई समझाने आया हुआ है। लेकिन हो सकता है आदमी के साथ-साथ रहते-रहते कुछ फूल बिगड़ गए हों। सोहबत का बुरा असर पड़ता ही है। हो सकता है कुछ फूल उपदेश सुनने के प्रेमी हो गए हों और मेरी बात सुन लें, तो उस बगिया में बड़ा उत्पात मच जाएगा। फिर उस बगिया में एक बात तय है, फूल पैदा ही नहीं होंगे। क्योंकि गुलाब कोशिश करेगा कमल होने की। चमेली कोशिश करेगी चंपा होने की। गुलाब के भीतर कमल होने की कोई संभावना ही नहीं है। कमल होने की कोशिश में कमल तो हो ही नहीं सकेगा, यह असंभव है। लेकिन दूसरी दुर्घटना घट जाएगी, कमल होने की कोशिश में वह गुलाब भी नहीं हो पाएगा। क्योंकि सारी कोशिश कमल होने में लग जाएगी, तो गुलाब होने के लिए शक्ति कहां बचेगी, दृष्टि कहां बचेगी, समय कहां बचेगा, सुविधा कहां बचेगी, खयाल भी नहीं बेचेगा कि मुझे गुलाब होना है, मुझे तो कमल होना है। यह रोग उसके ऊपर चढ़ गया तो वह गुलाब नहीं हो सकता। उस बगिया में फूल पैदा होने बंद हो जाएंगे।

आदमी की बगिया में फूल पैदा होना हजारों साल से बंद है। कभी एकाध फूल पैदा हो जाता है। अगर कोई माली साढ़े तीन लाख पौधे लगाए, साढ़े तीन अरब पौधे लगाए और एक पौधे में फूल पैदा हो जाए, उस माली को हम धन्यवाद देंगे? शायद हम यही समझेंगे कि यह फूल माली से बच कर शायद विकसित हो गया। क्योंकि साढ़े तीन अरब पौधों में तो कोई फूल नहीं लगा। एकाध महावीर कभी पैदा हो जाता, एकाध बुद्ध, एकाध क्राइस्ट, इससे कोई आदमी का गौरव है? इससे आदमी का कोई गौरव नहीं। अरबों आदमी बिना फूलों के समाप्त हो जाते हैं। क्या शेष सारे लोग पूजा करने को पैदा हुए हैं कि एक फूल पैदा हो जाए शेष उसकी पूजा करें? मंदिर बनाएं? जयजयकार करें? नहीं साहब, नहीं, हर आदमी अपने भीतर फूलों को विकसित करने को पैदा हुआ है किसी की पूजा करने को नहीं।

लेकिन आदमी को कर दिया हमने हीन-हीन। दूसरे जैसे बनने की कोशिश से आदमी हो गया विकृत। उसकी सारी चेतना हो गई पथभ्रष्ट। हमने उसको समझा दिया दूसरे जैसे बनो। छोटे से बच्चे को ही हम यह बीमारी के रोगाणु भरना शुरू कर देते हैं--गांधी जैसे बनो, फलां जैसे बनो, ढिकां जैसे बनो। गांधी बहुत अच्छे हैं, बहुत प्यारे, लेकिन गांधी जैसे बनने की चेष्टा बहुत गलत, बहुत खतरनाक। महावीर बहुत खूबी के हैं, लेकिन कोई दूसरा आदमी महावीर बनने को नहीं है।

एक-एक आदमी अनूठा और अलग और पृथक है, कोई आदमी किसी दूसरे जैसा नहीं है। तो आदर्श मनुष्य को आत्मच्युत कर देते हैं, उसे भटका देते हैं। आदर्श भटका देते हैं, आदर्श ने भटकाया हुआ है। इसलिए जो आप पैदा हुए हैं जो क्षमता लेकर, वह क्षमता वैसी ही पड़ी रह जाती है, वह कभी विकसित नहीं होती।

मेरा कहना है, आदर्श नहीं; आत्मा।

बाहर कोई आदर्श नहीं है किसी के लिए। भीतर छिपा है बीज। और उस बीज की तलाश तभी हो सकती है जब बाहर का आदर्श हम छोड़ें, अन्यथा उस बीज की खोज भी नहीं हो पाती। उस बीज पर ध्यान ही नहीं जा पाता। कभी आपने सोचा कि आप क्या होने को पैदा हुए हैं?

कभी आपने सोचा कि कौन सी क्षमता आपके भीतर छिपी है? खोजा आपने उस क्षमता को? क्या है मेरे भीतर? गुलाब का फूल, चमेली का, घास का फूल, क्या है मेरे भीतर?

और स्मरण रहे, एक घास का फूल भी जब पूरी तरह खिलता है तो किसी गुलाब, किसी कमल से पीछे नहीं होता। एक घास का फूल भी जब पूरी शान से खिलता है, और हवाओं में अपनी सुगंध बिखेर देता है, और हवाओं पर तैरता है, तब उसका आनंद किसी कमल और किसी गुलाब से कम नहीं होता।

और परमात्मा की दृष्टि में घास के फूल का कोई विरोध नहीं है। हवाएं फर्क नहीं करतीं कि गुलाब के फूल पर ज्यादा देर ठहर जाएं, घास के फूल पर कम। सूरज की रोशनी फर्क नहीं करती कि कमल के लिए ज्यादा रोशनी दे दे, घास के फूल से कह दे, शूद्र तू ठहर, तू सामान्य आदमी तू कहां बीच में आता है।

नहीं, प्रकृति कोई भेद नहीं करती है। सब भेद आदमी के बनाए हुए हैं। हर आदमी जो हो सकता है वही होना चाहिए उसे। किसी दूसरे के अनुसरण की कोई आवश्यकता नहीं है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि मैं यह कह रहा हूं कि महावीर को आप न समझें। महावीर को खूब समझें, बुद्ध को खूब समझें, राम को खूब समझें। और जितना आप समझेंगे उतना ही आप पाएंगे कि अनुकरण करना ठीक नहीं। क्योंकि समझने से आपको पता चलेगा, यह आदमी किसी का अनुकरण किया ही नहीं, तो मैं इसका अनुकरण कैसे करूं? आज तक दुनिया का कोई महापुरुष किसी का अनुगामी नहीं है। इसको उलटा भी कह सकते हैं, चूंकि वह किसी का अनुगामी नहीं है इसीलिए महापुरुष हो सका है। और आप अनुगामी हैं इसलिए आपके भीतर महानता का जन्म नहीं हो सकता है। आप अनुगामी होने से खुद हीन हो गए अपने हाथों, आपने स्वीकार कर ली अपनी इनफिरिआरिटी। अपनी हीनता आपने मान ली कि मैं तो अनुगामी हूं, अनुयायी हूं। किसी के पीछे जाना मनुष्य की आत्मा का सबसे बड़ा अपमान है।

इसलिए मैंने कहा कि आदर्श नहीं; चाहिए निजता, चाहिए खुद के व्यक्तित्व में छिपे हुए बीजों को विकास करने की क्षमता, उनका अनुसंधान। आदर्श से बंधा हुआ व्यक्ति यह कभी भी नहीं कर पाता। और आदर्श की चेष्टा से उसके जीवन में एक तरह का थोपा हुआ व्यक्तित्व, कल्टीवेटिड व्यक्तित्व पैदा हो जाता है, जो बिलकुल झूठा होता है। हम सब अपने ऊपर जो-जो चेष्टाएं करते हैं आदर्श बनने की, उन सबसे हम अभिनेता हो जाते हैं और कुछ भी नहीं।

राम को हुए कितने दिन हुए, कोई राम पैदा नहीं होता। हां, रामलीला के राम बहुत पैदा हुए। रामलीला के राम बनना शोभापूर्ण है? रामलीला के राम बनना गरिमापूर्ण है? यह भी हो सकता है कि रामलीला का राम इतना कुशल हो जाए बार-बार रामलीला करते हुए कि असली राम से अगर प्रतिस्पर्धा करवाई जाए तो असली राम हार जाएं। यह भी हो सकता है। क्योंकि असली राम से भूलें भी होती हैं, चूक भी होती हैं; नकली राम से कोई भूल-चूक ही नहीं होती, नकली आदमी भूल-चूक करता ही नहीं। क्योंकि उसे तो सब पार्ट याद करके

करना होता है। राम को तो बेचारे को पाठ याद करने की सुविधा नहीं थी, सीता खो गई तो उन्हें कोई बताने वाला नहीं था कि अब किस तरह छाती पीटो और क्या कहो। जो हुआ होगा वह सहज हुआ होगा। वह स्पांटेनियस था। कहीं कोई लिखी हुई किताब से याद किया हुआ नहीं था, इसलिए भूल-चूक भी हो सकती है। लेकिन रामलीला का राम बिलकुल कुशल होता, उससे भूल-चूक होती नहीं। उसका सब तैयार है; सब डायलाग, सब भाषण, सब, सब पहले से निश्चित है। और फिर बार-बार उसको मिलता है, राम को तो एक ही दफे लीला करने का मौका मिलता है, रामलीला के राम को हर साल मौका मिलता है। तो यह निष्णात होता चला जाता है। यह इतना निष्णात हो सकता है कि अगर दोनों आपके सामने लाकर खड़े कर दिए जाएं तो असली राम की कोई फिकर ही न करे नकली राम के लोग पैर छुएं।

ऐसा एक दफे हो भी गया। चार्ली चैपलीन का नाम सुना होगा। वह एक हंसोड़ अभिनेता था। उसकी पचासवीं वर्षगांठ बड़े जोर-शोर से मनाई गई थी। और एक उस वर्षगांठ पर एक विशेष आयोजन किया गया सारे यूरोप और अमेरिका में। अभिनेताओं को निमंत्रित किया गया कि दूसरे अभिनेता चार्ली चैपलीन का अभिनय करें। ऐसे सौ अभिनेता सारी दुनिया से चुने जाएंगे। प्रतियोगिताएं होंगी नगरों-नगरों में। और फिर अंतिम प्रतियोगिता होगी। और उस अंतिम प्रतियोगिता में तीन व्यक्ति चुने जाएंगे जो चार्ली चैपलीन का पार्ट करने में सर्वाधिक कुशल सिद्ध होंगे। उन तीन को तीन पुरस्कार दिए जाएंगे।

प्रतियोगिता हुई, हजारों अभिनेताओं ने भाग लिया। एक से एक कुशल अभिनेता ने, चार्ली चैपलीन बना, बनने की कोशिश की। चार्ली चैपलीन के मन में हुआ कि मैं भी किसी दूसरे के नाम से फार्म भर कर सम्मिलित क्यों न हो जाऊं? मुझे तो प्रथम पुरस्कार मिल ही जाने वाला है। खुद ही चार्ली चैपलीन हूं मेरा धोखा और कौन दे सकेगा। और जब बात भी खुलेगी तो एक मजाक हो जाएगी, मैं तो हंसोड़ अभिनेता हूं ही। लोग कहेंगे खूब मजाक की इस आदमी ने।

वह एक छोटे से गांव में जाकर फार्म भर कर सम्मिलित हो गया। अंतिम प्रतियोगिता हुई उसमें वह सम्मिलित था। सौ लोगों में वह भी एक था, किसी को पता नहीं। वहां तो सौ चार्ली चैपलीन एक से मालूम होते थे, एक सी मूंछ, एक सी चाल, एक सी ढाल, वे सब चार्ली चैपलीन थे। प्रतियोगिता हुई, पुरस्कार बंटे, मजाक भी खूब हुई, लेकिन चार्ली चैपलीन ने जो सोची थी वह मजाक नहीं हुई, मजाक उलटी हो गई। चार्ली चैपलीन को द्वितीय पुरस्कार मिल गया। कोई अभिनेता उसके ही पार्ट करने में नंबर एक आ गया। और जब पता चला दुनिया को, तो दुनिया हैरान रह गई कि हद्द हो गई यह बात तो! कि चार्ली चैपलीन खुद मौजूद था प्रतियोगिता में और नंबर दो का पुरस्कार मिला! तो हो सकता है महावीर के अनुयायी महावीर को हरा दें नकल करने में। बिलकुल हरा सकते हैं। चूंकि अनुयायी एक नकल होता है, असल नहीं। लेकिन नकली आदमी हरा भी दे तो भी नकली आदमी नकली आदमी है, उसके भीतर कोई आनंद, कोई प्रफुल्लता, कोई विकास, कोई

पूर्णता उपलब्ध नहीं हो सकती। और इन नकली आदमियों का एक ज्वार चलता है सारी दुनिया में।

अभी गांधी हमारे मुल्क में थे, गांधी के साथ हजारों नकली गांधी इस मुल्क में पैदा हो गए थे। उन्होंने मुल्क को डूबा दिया, उन नकली गांधीयों ने मुल्क को डूबा दिया। गांधी जैसी खादी पहनने लगे, गांधी जैसा चरखा चलाने लगे। उन्होंने डूबा दिया इस मुल्क को। जो नकली गांधी पैदा हो गए थे इस मुल्क हत्यारे साबित हुए हैं, मर्डरर्स साबित हुए। डूबा दिया इस मुल्क को। डुबाए जा रहे हैं रोज। डुबाएंगे ही, क्योंकि नकली आदमी भीतर कुछ और होता है, बाहर कुछ और। असली आदमी जो भीतर होता है वही बाहर होता है।

असली आदमी बनना है तो किसी आदर्श को थोपने की कोशिश भूल कर भी मत करना। अन्यथा आप एक नकली आदमी बन जाएंगे। और आपका जीवन तो गलत हो ही जाएगा, आपके जीवन की गलती दूसरों तक को नुकसान पहुंचाएगी। समाज तब एक धोखा, एक प्रवंचना हो जाता। पूरा समाज एक फ्राड हो जाता है। क्योंकि जब सभी नकली आदमी होते हैं तो फिर बड़ी मुश्किल हो जाती है।

इसलिए मैंने कहा, आदर्श नहीं। लेकिन आपको डर लगता है यह--यह पूछा है प्रश्नों में--यह डर लगता है कि अगर आदर्श छोड़ दिया तो फिर हम बनें क्या? यह आदर्श वालों ने यह सिखा दिया है आपको कि बनने के लिए कोई पैटर्न, कोई ढांचा, कोई तस्वीर, कोई लक्ष्य होना चाहिए। नहीं, बनने के लिए लक्ष्य नहीं होता, न ढांचा होता है, न पैटर्न होता है। बनने के लिए तो जो भीतर छिपा है उसे जगाने की चेष्टा होती है। आगे ढांचा नहीं होता, भीतर जो छिपा है...

एक आदमी को कुआं खोदना है, क्या करता है वह? मिट्टी खोदता है, पत्थर निकालता है। पानी तो भीतर छिपा है। बाधाएं अलग कर देता है। सारी मिट्टी-पत्थर को निकाल कर बाहर फेंक देता है, भीतर से पानी के झरने फूट आते हैं।

आपको क्या बनना है यह खयाल ही गलत है। आपके भीतर क्या छिपा है उसकी जितनी बाधाएं हैं उनको आप अलग कर दें, वह प्रकट हो जाए। आदमी की जीवन की साधना किसी लक्ष्य को उपलब्ध करने की साधना नहीं, किन्हीं बाधाओं को दूर करने की साधना है। आदमी के जीवन की साधना हिंडरेंसेस को, जो बीच में रुकावटें हैं उनको दूर करने की साधना है, किसी लक्ष्य को पाने की साधना नहीं। लक्ष्य को पाने की बात ही गलत है। आपके भीतर मौजूद है लक्ष्य, अगर आप सब तरह से खुद के निखार लें, साफ कर लें, तो आप पाएंगे कि आपके भीतर से रोशनी आनी शुरू हो गई, आपके भीतर व्यक्तित्व का जन्म होना शुरू हो गया।

तो कौनसी बाधाएं हैं जिनको हम अलग कर दें? तो ये बाधाएं हैं जो मैं गिना रहा हूं। विश्वास बाधा है। आदर्श बाधा है। अनुकरण बाधा है। ये बाधाएं हटा दें। इनके हटते ही आपके भीतर जीवन के झरने फूटने शुरू हो जाएंगे। लेकिन हम अपने जीवन के कुआं बनाते ही नहीं, हम तो हौज बना लेते हैं। दीवाल उठा कर एक हौज बना लेते हैं, उधार दूसरों के कुएं

से पानी लाकर भर लेते हैं और निश्चिंत हो जाते हैं। हौज भी कोई कुआं है? ऊपर से धोखा पैदा हो जाता है। इसमें भी पानी भरा हुआ है और कुएं में भी पानी भरा हुआ है। हौज का पानी उधार है। हौज के पानी में कोई झरें नहीं हैं, कोई झरने नहीं हैं, हौज का पानी किसी समुद्र से जुड़ा हुआ नहीं है। कुआं? कुएं के पास अपने जल-स्रोत हैं, खुद का पानी है, उधार नहीं है। कुएं की अपनी आत्मा है। हौज की अपनी कोई आत्मा नहीं है, सब उधार है हौज। कुएं के पास अपना व्यक्तित्व है, अपनी आत्मा है, अपनी निजता है, अपनी इंडीविजुअलिटी है और उसके झरने सागर से जुड़े हैं, दूर सागरों से, कुएं के पानी को उलीचते चले जाएं तो कुआं चिल्लाएगा नहीं कि बस बंद करो मैं खाली हो जाऊंगा, कुएं का पानी जितना उलीचिए कुआं और नये ताजे पानी से भर जाता है, और जवान, युवा हो जाता है। इसलिए कुआं लुटाता है। हौज? हौज संग्रह करती है। क्योंकि हौज अगर लुटाएगी तो खाली हो जाएगी, रिक्त हो जाएगी।

बस हौज और कुएं के तरह के, दो तरह के आदमी होते हैं दुनिया में। जिनको आप कहते हैं, त्याग किया, उसका और कोई मतलब नहीं है, आप कहते हैं महावीर ने इतना त्याग किया, उसका मतलब महावीर एक कुआं हैं, जितना लुटाते हैं उतनी नई ताजगी भीतर भरती चली आती है। त्याग का और क्या मतलब होता है? त्याग का मतलब होता है, जितना यह आदमी छोड़ता है उतना ही भीतर उपलब्ध होता है। इसलिए तो छोड़ता है। छोड़ने से पाता है भीतर। और दूसरे तरह के वे आदमी जो हर चीज को संग्रह करते हैं, कुछ भी छोड़ते नहीं--मकान, धन, ज्ञान, सब संग्रह करते चले जाते हैं। लाओ, लाओ, लाओ, उनकी एक भाषा होती है, आओ, सब आ जाए, सब इकट्ठा हो जाए। क्यों? क्योंकि उनके पास अपना तो कुछ भी नहीं है, जितना इकट्ठा हो जाएगा उतने ही मालूम पड़ेंगे कि वे कुछ हैं। हौज बन गए हैं वे, कुआं नहीं बन पाए। हौज का पानी सड़ जाता है। संग्रह करने वाला व्यक्तित्व भी सड़ जाता है। हौज के पानी में थोड़े दिन में कीड़े दिखाई पड़ने लगेंगे, बदबू निकलने लगेगी। संग्रह करने वाले व्यक्ति में भी थोड़े दिन में दुर्गंध, थोड़े दिन में कुरूपता पैदा हो जाती है। लेकिन जो कुआं बनता है, जो उलीचता है स्वयं को, बांटता है स्वयं को, संग्रह नहीं करता लुटा देता है स्वयं को, उसको व्यक्तित्व में निरंतर-निरंतर सौंदर्य के नये-नये तल प्रकट होने लगते हैं। उसके व्यक्तित्व से नई-नई सुगंध रोज जन्म पाने लगती है। उसके भीतर से रोशनी के और नये-नये स्रोत उपलब्ध होने लगते हैं। क्योंकि उतनी ही फेंकने में बाधाएं दूर हो जाती हैं। और उतना ही जो भीतर छिपा है वह प्रकट होने लगता है।

जीवन की साधना स्वयं के ऊपर आए हुए आवरण, बाधाएं, पर्दे, धूल, इस सबको हटा देने की साधना है, स्वयं को पाने की साधना, लक्ष्य पाने की साधना नहीं है। जीवन खुद है अपना लक्ष्य। कहीं कोई इतर, अलग, कोई लक्ष्य नहीं है जीवन के सामने जिसको आपको पाना है।

अकबर के दरबार में तानसेन बहुत दिन रहा था। एक दिन अकबर ने तानसेन को रात में विदा करते वक्त कहा, तेरे गीत सुन कर, तेरे संगीत में डूब कर अनेक बार मुझे ऐसा लगता है, तू बेजोड़ है, शायद ही पृथ्वी पर कभी किसी ने ऐसा बजाया हो जैसा तू बजाता है। लेकिन आज तुझे सुनते वक्त मुझे एक खयाल आ गया, तूने भी शायद किसी से सीखा होगा? तेरा भी कोई गुरु होगा? हो सकता है तेरा गुरु तुझसे भी अदभुत बजाता हो? तेरा गुरु जीवित हो, तो मैं उसे सुनना चाहता हूं।

तानसेन ने कहा, गुरु मेरे जीवित हैं, लेकिन उन्हें सुनना तो, वे तो जब बजाते हैं तभी आपको पहुंच कर सुनना पड़ेगा। इसलिए बड़ा मुश्किल है मामला।

अकबर ने कहा, कितना ही मुश्किल हो, तुमने जो कहा उससे मेरी आकांक्षा और भी बढ़ गई। मैं उन्हें सुनना ही चाहूंगा। कोई व्यवस्था करो।

तानसेन ने पता लगाया तो पता चला--उसके गुरु थे, हरिदास, वे एक फकीर थे और यमुना के किनारे रहते थे--उसने पता चलाया, चौबीस घंटे आदमी वहां लगा कर रखे कि वे कब बजाते हैं, किन घड़ियों में, तो पता चला, रात चार बजे वे रोज सितार बजाते हैं।

अकबर और तानसेन चोरी से जाकर अंधेरी रात में झोपड़े के बाहर छिप गए। दुनिया के किसी सम्राट ने शायद किसी कलाकार को इतना आदर न दिया होगा कि चोरी से उसे सुनने गए। रात अंधेरे में झोपड़े के बाहर छुप रहे। चार बजे वीणा बजनी शुरू हुई। अकबर के आंसू, थामता है नहीं थमते, जब तक वीणा बजती रही वह रोता ही रहा। जैसे किसी और ही लोक में पहुंच गया। वापस लौटने लगा तो जैसे किसी तंद्रा में, जैसे किसी स्वप्न में। महल तक तानसेन से कुछ बोला नहीं। महल में विदा करते वक्त तानसेन से कहा, तानसेन, मैं सोचता था तुम्हारा कोई मुकाबला नहीं। लेकिन देखता हूं, तुम्हारे गुरु के सामने तो तुम कुछ भी नहीं हो। इतना फर्क कैसे? तुम ऐसी दिव्य दशा में, तुम ऐसे दिव्य संगीत को उपलब्ध नहीं हो पाते, क्या है कारण? कौनसी बाधा बन रही है?

तानसेन सिर झुका कर खड़ा हो गया और कहा, बाधा को मैं भलीभांति जानता हूं। सबसे बड़ी बाधा यही है कि मैं किसी लक्ष्य को लेकर बजाता हूं। बजाता हूं, ध्यान लगा रहता है क्या मिलेगा बजाने के बाद पुरस्कार? क्या होगा? पुरस्कार मेरा लक्ष्य है, उसको ध्यान में रख कर बजाता हूं। इसलिए कितनी ही मेहनत करता हूं मुक्त नहीं हो पाता मेरा बजाना, पुरस्कार से बंधा रहता है। मेरे गुरु किसी आकांक्षा से नहीं बजाते। बजाने के आगे कुछ भी नहीं, जो कुछ है बजाने के पीछे है। मैं बजाता हूं ताकि मुझे कुछ मिल सके। वे बजाते हैं क्योंकि उन्हें कुछ मिल गया है। कोई आनंद उपलब्ध हुआ है, वह आनंद के कारण बजता है। वह आनंद बजने में फैलता है और प्रकट होता है। वह आनंद अभिव्यक्त होता है बजने में। बजने के आगे कोई भी लक्ष्य नहीं है। बजने के पीछे जरूर प्राण हैं, लेकिन आगे कोई लक्ष्य नहीं है। मेरे बजने के पीछे कोई प्राण नहीं हैं, बजने के आगे लक्ष्य है।

ऐसे ही दो तरह के जीवन होते हैं। जो आदर्श को आगे बांध कर जीवित होने की कोशिश करता है उसका जीवन वैसे ही है जैसे कोई गाय के सामने घास रख ले और चलने लगे, तो

गाय उस घास की लालच में पीछे-पीछे चलती चली जाती है। चलती तो जरूर है, लेकिन यह चलता बिलकुल बंधन का चलना है। घास की आकांक्षा में बंधी-बंधी चलती है। इससे मुक्ति कभी नहीं आती। हम भी लक्ष्य बना कर जीवन को चलते हैं इसलिए बंध जाते हैं कभी मुक्त नहीं होते। अगर मुक्त होना है तो जीवन में आगे लक्ष्य रखने की जरूरत नहीं, पीछे जो छिपा है उसे प्रकट करने की जरूरत है। तब उसकी अभिव्यक्ति से जीवन निकलता है। तब उस आनंद से जो संगीत पैदा होता है वह संगीत ही मुक्ति और मोक्ष बन जाती है।
इसलिए मैंने कहा, अनुकरण नहीं, आदर्श नहीं।

अंतिम एक प्रश्न पूछा है, उसकी चर्चा करके मैं अपनी बात पूरी करूंगा।
एक प्रश्न पूछा है कि हम शांत कैसे हो जाएं? आप कहते हैं, शांति द्वार है; आप कहते हैं, शून्य द्वार है, तो हम शांत कैसे हो जाएं? शून्य कैसे हो जाएं? निर्विकल्प दशा को कैसे उपलब्ध हो जाएं? समाधि कैसे मिले? ऐसे दो-चार प्रश्न पूछे हैं।

बहुत सरल है निर्विकल्प दशा को उपलब्ध करना। अत्यंत सरल, उससे सरल कोई बात ही नहीं है। लेकिन ये जो तीन बातें मैंने पहली कहीं, ये बड़ी कठिन हैं। और इन तीन को जो नहीं कर पाता वह उस अत्यंत सरल बात को भी नहीं कर पाता। वह चौथी सीढ़ी है। इन तीन को पार करके ही उसे पार किया जा सकता है। वह तो बहुत सरल है। कठिनाई है इन तीन बातों की--विश्वास को, अनुकरण को, आदर्श को त्यागने में बड़ी कठिन, बड़ा आर्डुअस, बड़ा श्रम है। लेकिन चौथी बात बहुत सरल है। जो इन तीन बातों को कर ले, चौथी बात करनी ही नहीं पड़ती, बड़ी सरलता से हो जाती है। उस सूत्र के संबंध में अंत में थोड़ी सी बात आपको समझाऊं। लेकिन इन तीन को किए बिना वह नहीं हो सकेगा।
जैसे कोई हमसे पूछे कि हम फूल कैसे पैदा करें? मैं कहूंगा, फूल पैदा करना बड़ी सरल बात है। फूल पैदा करने में कुछ करना ही नहीं पड़ता। लेकिन बीज लगाने में बड़ी मदद करनी पड़ती है। पानी सींचने में, खाद डालने में बड़ी मेहनत करनी पड़ती है। पौधे की सम्हाल करने में, बागुड़ लगाने में बहुत श्रम उठाना पड़ता है। फिर जब सब सम्हल जाती है बात, बीज अंकुर बन जाता, खाद मिल जाती, पानी मिल जाता, चारों तरफ सुरक्षा हो जाती है पौधे की, तो फूल तो अपने आप आ जाते हैं, फूल का आना कोई कठिन है? कुछ भी करना पड़ता है फूल को लाने में? फूल तो अपने आप आटोमेटिक, पौधा सम्हल जाए, फूल आ जाते हैं। लेकिन आप कहें कि पौधे की तो बाकी बातचीत छोड़िए, हमको तो सिर्फ फूल लाना है, तब मामला बहुत कठिन हो जाता है। आप कहें कि यह तो सब ठीक है, विश्वास हमें करने दो, आदर्श हमें मानने दो, अनुकरण हमें करने दो, जैन, हिंदू, मुसलमान हमें बना रहने दो, बाकी चित्त शांत करने का, शून्य करने का कोई रास्ता हो तो बता दें। तो आप ऐसी बात कर रहे हैं कि पौधा तो हम लगाएंगे नहीं, बीज हम डालेंगे नहीं, पानी हम सींचेंगे नहीं, यह तो छोड़ो, ये बातें छोड़ दो, हमें दो इतना बता दो कि फूल कैसे आते हैं? फिर फूल नहीं आते।

चित्त की निर्विकल्प दशा, शून्य दशा, ध्यान दशा बहुत सरल है। लेकिन सीढ़ियां जो उस तक पहुंचाती हैं वे बड़ी कठिन मालूम होती हैं। और वे भी कठिन इसलिए नहीं हैं कि वे कठिन हैं, आप में साहस नहीं है जरा सा भी, इसलिए वे कठिन हो गई हैं। साहस हो, एक क्षण की देर नहीं है।

मैं एक नगर में था। उस नगर के कलेक्टर ने मुझे फोन किया और कहा कि मैं अपनी मां को भी चाहता हूं कि आपके सुनने के लिए लाऊं, लेकिन मेरी मां की उम्र नब्बे के करीब पहुंच गई, और आपकी बातों से मैं परिचित हूं, तो मैं डरता हूं कि इस बुढ़िया को लाना कि नहीं लाना? क्योंकि वह तो चौबीस घंटे माला जपती रहती है, राम-राम जपती रहती है। सोती है तो भी हाथ में माला लिए ही सोती है। तीस वर्ष से यह क्रम चलता है, तो मैं डरता हूं इस बुढापे में आपकी बातें सुन कर कहीं उसको आघात और चोट न लग जाए, कहीं वह विचलित न हो जाए व्यर्थ ही और अशांत न हो जाए, तो मैं लाऊं या न लाऊं? उसकी उम्र नब्बे वर्ष।

मैंने उनसे कहा, अगर उम्र कुछ कम होती तो मैं कहता, दुबारा आऊंगा तब ले आना। उम्र नब्बे वर्ष है इसलिए ले ही आना, क्योंकि दुबारा मिलना हो सके इसका कोई पक्का भरोसा नहीं।

वे अपनी मां को लेकर आए। मैंने देखा उनकी मां माला लिए ही आई हुई थी। हाथ में माला वह चलती ही रहती है। बात सुनने के बाद वे चले गए, दूसरे दिन आए और मुझसे कहने लगे, मैं बहुत हैरान हो गया हूं। आपने तो ऐसी बातें कहीं कि मुझे लगा कि जैसे मेरी मां को जान कर ही आप कह रहे हैं। मुझे लगा मुझसे गलती हो गई जो मैं आपको बता कर अपनी मां को लाया। आप तो जैसे मेरी मां को ही सारी बातें कह रहे हों, ऐसा मुझे लगने लगा। और मैं बहुत डरा हुआ रहा। लौटते में कार में मैंने अपनी मां को पूछा कि तुम्हें चोट तो नहीं लगी, कुछ बुरा तो नहीं लगा? मेरी मां कहने लगी, बुरा? चोट? उन्होंने कहा, माला से कुछ भी नहीं होगा, मुझे बात बिलकुल ठीक लगी, तीस साल का मेरा अनुभव भी कहता है कि कुछ भी नहीं हुआ, मैं माला वहीं छोड़ आई।

इतना साहस। तो मैंने उनसे कहा, तुम्हारी मां तुमसे ज्यादा जवान है। साहस व्यक्ति को युवा बनाता है। छोड़ने का हममें जरा भी साहस नहीं है। इसलिए हम अटके खड़े रह जाते हैं। और व्यर्थ बातें भी छोड़ने का साहस नहीं है, तब तो बहुत कठिनाई हो जाती है।

शून्यता पा लेनी बहुत सरल है, साहस चाहिए।

क्या करें शून्यता पाने को?

इन तीन सीढ़ियों के पहले कुछ भी नहीं किया जा सकता, एक बात। इन तीन सीढ़ियों के बाद बहुत कुछ किया जा सकता है। और बहुत सरल सी बात है, अगर चित्त के प्रति चित्त में चलती हुई जो विचार की धारा है, दिन-रात चल रही है, विचार और विचार और विचार, चित्त में विचारों की शृंखला चल रही है। जैसे रास्ते पर लोग चलते हैं, ऐसा ही चित्त में विचार चलते हैं। यह विचारों की भीड़ चल रही है चित्त में। इसके प्रति अगर कोई चुपचाप

जागरूक हो जाए, साक्षी बन जाए, बस और कुछ भी न करे। लड़ने की जरूरत नहीं है, राम-राम जपने की जरूरत नहीं है। क्योंकि राम-राम जपना खुद ही अशांति का एक रूप है। एक आदमी राम-राम, राम-राम कर रहा है, यह आदमी बहुत अशांत है, और कुछ भी नहीं। क्योंकि शांत आदमी इस तरह की बकवास करता है, एक ही शब्द को लेकर दोहराता है बार-बार? यह आदमी अशांत ही नहीं है, पागल होने के करीब है। चूंकि हम निरंतर इस बात को मान बैठे हैं कि राम-राम जपना बड़ा अच्छा है। हम फिकर नहीं कर रहे। यही आदमी अगर एक कोने में बैठ कर कुर्सी, कुर्सी, कुर्सी, कुर्सी कहने लगे, तो हम चिंतित हो जाएंगे। यही आदमी अगर कुर्सी, कुर्सी, कुर्सी कहने लगे, तो हम चिंतित हो जाएंगे। भागेंगे, कहेंगे कि चिकित्सा करवानी है, हमारे घर में एक व्यक्ति कुर्सी, कुर्सी, कुर्सी घंटे भर तक बैठ कर कहता रहता है। लेकिन राम-राम कहने में कोई फर्क है? एक ही बात कोई शब्द को लेकर दोहराना विक्षिप्त होने की शुरुआत है, स्वस्थ होने की नहीं। चित्त रुग्ण हो रहा है। न तो राम-राम की जरूरत है, जिसको आप जप कहते हैं, न मंत्रों की जरूरत है। चित्त को शांत करना है। और आप व्यर्थ की बातें दोहरा कर उसको अशांत कर रहे हैं शांत नहीं।

कुछ मत दोहराइए, कोई भगवान का नाम नहीं है। कोई शब्द-मंत्र नहीं है। कुछ दोहराने की जरूरत नहीं है। फिर चुपचाप बैठ कर मन में जो अपने आप चल रहा है कृपा करके उसको ही देखिए, अपनी तरफ से और मत चलाइए। वैसे ही काफी चल रहा है अब आप और काहे को चलाने की कोशिश कर रहे हैं। जो मन में चल रहा है अपने आप, आप उसके किनारे बैठ कर चुपचाप देखते रहिए, बस साक्षी हो जाइए, जस्ट ए विटनेस, सिर्फ एक देखने वाले। बुरा चले तो भी निकालने की कोशिश मत करिए, क्योंकि निकालने की कोशिश में आप सक्रिय हो गए, फिर साक्षी न रहे। हटाने की कोशिश मत करिए किसी विचार को। किसी विचार को लाने की कोशिश भी मत करिए। क्योंकि दोनों हालत में आप कूद पड़े धारा में, बाहर खड़े न रहे। मन की धारा के किनारे तटस्थ तट पर बैठ जाइए और देखते रहिए, मन को चलने दीजिए, चुपचाप देखते रहिए। और कुछ भी मत करिए, सिर्फ देखना, सिर्फ दर्शन पर्याप्त है। आप थोड़े ही दिनों में पाएंगे कि देखते ही देखते मन की धारा क्षीण होने लगी, मन की नदी का पानी सूखने लगा। जैसा आपकी गांव की नदी का सूखा रह जाता है, वैसे ही मन का पानी धीरे-धीरे सूखने लगेगा। आप देखते रहिए, धीरे-धीरे अनुभव होने लगेगा आपको कि देखते ही देखते बिना कुछ किए मन की धारा क्षीण होने लगी है, और एक दिन आप चकित हो जाएंगे कि आप बैठे हैं और मन की धारा में कहीं कोई विचार नहीं है। जिस दिन भी यह अनुभव आपको हो जाएगा, उसी दिन आपको पता चल जाएगा कि दर्शन विचार की धारा को तोड़ने की विधि है। अ-दर्शन मर्ूच्छित भाव से विचार में पड़े रहना विचार को बढ़ाने की विधि है। हम मर्ूच्छित भाव से विचार में पड़े रहते हैं, विचार को देखते नहीं। बस इसके अतिरिक्त और कोई बंधन नहीं है विचार के।

जिस दिन भी आप द्रष्टा होने में समर्थ हो जाते हैं उसी दिन विचार विलीन हो जाते हैं। और तब जो शेष रह जाता है वह है शांति, वह है निर्विकल्प दशा, वह है समाधि, वह है ध्यान, और भी कोई नाम, जिसको जो मर्जी हो दे सकता है। वह है चित्त की निर्विकार स्थिति। उस दशा में ही जाना जाता है जीवन, उस दशा में ही पहचाना जाता है सत्य, उस दशा में ही मिलन हो जाता है उससे जिसे भक्त भगवान कहते हैं, ज्ञानी आत्मा कहते हैं, विचारशील लोग सत्य कहते हैं। सत्य की उपलब्धि ही मुक्ति है। उसको जानते ही व्यक्ति के जीवन में फिर कोई बंधन, कोई दुख, कोई मृत्यु नहीं रह जाती।
इस दिशा में थोड़ा प्रयोग करें और देखें। क्योंकि इस दिशा में तो प्रयोग करके देखा ही जा सकता है। यह दिशा तो सिर्फ अनुभव की दिशा है। इसमें कोई और आपके साथ कोई सहयोग नहीं कर सकता। कोई आपको पकड़ कर समाधि में नहीं ले जा सकता। आपको ही श्रम करना होगा।
और मैं कहता हूं, अत्यंत सरल है समाधि को उपलब्ध करना, अगर पहले की सीढ़ियां चढ़ने का साहस आपमें हो।

मेरी इन बातों को इतनी शांति, इतने प्रेम से सुना, उससे बहुत-बहुत आनंदित और अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे, छिपे हुए परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।